महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

वंगभाषा के प्रसिद्ध लेखक

बाबू रमेशचन्द्र दत्त-लिखित बँगला-पुस्तक
का हिन्दी-अनुवाद

अनुवादक
सलटौश्रा-गोपालपुर (बस्ती) निवासी
रुद्रनारायण

प्रकाशक
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

तृतीय संस्करण] १९२९ [मूल्य १॥

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

पहला परिच्छेद

जीवन-उषा

देव करताली जय जय कहि। पुष्पांजलि ले, प्रेम उमहि॥
चहत उदय अब भानु-प्रतापी। सहित उषा श्रम-सैन्य-प्रकाशी॥

—सर्वेरीश

ईसा की बारहवीं शताब्दी के अन्त में ही मुहम्मद गोरी ने आर्य्यावर्त को विजय कर लिया था और ऐसा विपुल और समृद्धिशाली राज्य पाकर भी मुसलमान लोग केवल १०० वर्ष तक शान्त रह सके। उन्होंने विन्ध्याचल और नर्म्मदा जैसी विशाल दीवाल और खाई के पार करने का सहसा कभी प्रयत्न नहीं किया। यही कारण है कि दक्षिण-भारत उनके हस्तगत होने से बचा रहा। परन्तु तेरहवीं शताब्दी के शेष भाग में दिल्ली का युवराज अलाउद्दीन खिलजी आठ हज़ार फ़ौज साथ लेकर एकबारगी हिन्दू राजधानी, देवगढ़ पर टूट पड़ा। यद्यपि देवगढ़ के राजपुत्र ने बड़ी लड़ाई की, परन्तु उसे हार माननी पड़ी और

हिन्दुओं को उसे बहुत धनदौलत और इलिचपुर का इलाका नज़रें में देकर सुलह करनी पड़ी। अलाउद्दीन जब दिल्ली का बादशाह हुआ तब उसके प्रधान सेनापति मलिक काफूर ने तीन बार दक्षिण के प्रदेशों पर आक्रमण करके नर्म्मदा के तट से लेकर कुमारिका अंतरीप तक, सब देशों को तहस-नहस कर दिया। देवगढ़ प्रभृति दाक्षिणात्य हिन्दू-राज्य ने दिल्ली के मुसलमान की अधीनता स्वीकार कर ली।

चौदहवीं शताब्दी में जब मुहम्मद तुग़लक दिल्ली के तख़्त पर बैठा तब उसने देवगढ़ का नाम बदल कर दौलताबाद रक्खा और दिल्ली के रहनेवालों को हुक्म दिया कि वह तुरन्त "दिल्ली छोड़कर दौलताबाद जाकर बस जायँ।" परन्तु इस अनिवार्य आज्ञा का विरोध प्रजागण ने एक-स्वर से किया। यद्यपि दौलताबाद आबाद न हुआ परन्तु दिल्ली उजड़ गई और मुसलमानों के प्रति हिन्दुओं का वैमनस्य बढ़ता ही गया। इसलिए हिन्दुओं ने विजयनगर नामक एक नवीन राजधानी बनाकर एक विशाल साम्राज्य का संस्करण किया। उधर मुसलमानों ने भी दिल्ली से अलग दौलताबाद को स्वतंत्र कर लिया। समय आने पर दक्षिण में विजयनगर और दौलताबाद प्रधान राज्य बन गये। प्रायः तीन सौ वर्ष तक दिल्ली के बादशाहों ने दक्षिण के देशों को हस्तगत करने का कोई विशेष उद्योग नहीं किया। किन्तु इस विपद् से बचते हुए भी दक्षिण में हिन्दूराज्य निरापद नहीं था, क्योंकि हिन्दुओं ने अपने घर के भीतर दौलताबाद जैसे मुसलमान राज्य को स्थान दिया था। उस समय विजयी मुसलमान जाति के समक्ष हिन्दुओं का जातीय जीवन क्षीण और अवनतिशील था। बस इन्हीं कारणों से एक दूसरे में अनबन थी।

समय के हेरफेर से दौलताबाद का विशाल राज्य कई खण्डों में विभक्त हो गया और उस एक के स्थान पर विजयपुर, गोलकुण्डा और अहमदनगर नामक तीन मुसलमानी-राज्य स्थापित हो गये। अतः मुसलमान राजगण एकत्र हो गये और सन् १५६४ ई० में तिलीकोट की लड़ाई में विजयनगर के हिन्दूसैन्य को परास्त कर दिया। इस प्रकार विजयनगर का हिन्दूराज्य अथवा भारतवर्ष की हिन्दू-स्वाधीनता विलुप्त हो गई तथा विजयपुर गोलकुण्डा और अहमदनगर के तीनों मुसलमानी राज्य बड़े प्रबल और प्रभावशाली हो गये। सन् १५८० ई० में अकबर बादशाह ने सारे दक्षिण देश को दिल्ली के अधीन करना चाहा जिसका परिणाम यह हुआ कि उसके जीवनकाल ही में सारा ख़ानदेश और कुछ अहमदनगर का अंश दिल्ली की सेना के अधिकार में आ गया। अकबर के पोते शाहजहाँ बादशाह ने सन् १६३६ ई० के निकट अहमदनगर का शेष अंश भी अपने अधिकार में कर लिया। बस, जिस समय का वृत्तान्त हम लिखने बैठे हैं, उस समय दक्षिण देश में केवल विजयपुर और गोलकुण्डा यही दो स्वाधीन और पराक्रमी मुसलमानी रियासतें थीं।

इस सारे राज्यविप्लव के समय देशियों अर्थात् महाराष्ट्रियों की अवस्था कैसी थी? उसका जानना हमारे देशवासियों के निकट अत्यावश्यक है। मुसलमानीराज्य के अधीन रहते हुए भी हिन्दुओं की दशा नितान्त मन्द नहीं थी, किन्तु मुसलमानों का राज्यशासन तथा प्रवन्ध अधिकांश में महाराष्ट्रों के ही बुद्धि-बल पर निर्भर था। प्रत्येक सरकार कई परगनों में विभक्त थी। इन सारी सरकारों और परगनों पर शायद ही कभी कोई मुसलमान कर्म्मचारी नियुक्त होता था; अधिकांश

महाराष्ट्र कर्म्मचारी ही लगान वसूल करके सरकारी रुपया खज़ाने में जमा किया करते थे। महाराष्ट्र-देश में पर्वतों की अधिकता होने के कारण उन पर बने हुए किलों की संख्या भी अधिक थी। यद्यपि उन दुर्गों के मालिक मुसलमान थे तथापि मुसलमान अधिकारी लोग उन किलों को महाराष्ट्रों के आधिपत्य में करने से ज़रा भी नहीं झिझकते थे। यही कारण है कि महाराष्ट्र किलेदार बहुधा जागीरदार हुआ करते थे और उसी जागीर की आमदनी से किले और सैन्य का खर्च चलाते थे। इस प्रकार राज-दरबार में अनेक हिन्दूगण मनसबदारी वगैरह पदों पर नियोजित थे और उनमें से कोई सौ, कोई दो सौ, पाँच सौ, हज़ार अथवा इससे भी अधिक सवारों को लड़ाई के समय हाज़िर करने के उत्तरदाता थे। इस अश्वारोही सैन्य के वेतन व आवश्यकीय व्यय के लिए भी वह एक एक जागीर के स्वामी थे।

विजयपुर के सुलतान के अधीन चन्द्रराव मोर १२ हज़ार पैदल फ़ौज का सेनापति था। सुलतान के आदेशानुसार चन्द्रराव मोर ने नीरा और वर्णा नदी के बीचवाले सब देशों को विजय किया था। अतः सुलतान ने प्रसन्न होकर वह देश उसे नाम मात्र के कर पर जागीर की सूरत में दे दिया था। इस प्रकार चन्द्रराव मोर की सन्तान ने उस पर सात पीढ़ी तक राज्य किया और उन्हें लोग राजा के स्वरूप में समझते थे। वास्तव में वह स्वच्छन्द राजा थे भी। कुछ दिनों के बाद यह देश "निबालकर" वंश के प्रधान वंशज रावनायक के अधीन हो गया और उन्होंने उस पर देशमुख की उपाधि से राज किया। इसी प्रकार मलाबार देश में घाटगीवंश, मुश्वर देश में मनयवंश, चसी और मुधोलदेश में घरपुरीवंश का

राज्य था और यह सब पुरुषानुक्रम से विजयपुराधीश सुलतान के कार्य्यसाधन में तत्पर रहा करते थे और कभी कभी आपस में भी घोर संग्राम कर बैठते थे। जातीय विरोध की भाँति और कोई भी विरोध नहीं है। सुतराम् पर्वतसंकुल कोंकण और महाराष्ट्र प्रदेश के प्रत्येक स्थान में आत्मरोध की ज्वाला धधक रही थी। बहुत रुधिर प्रवाह होने पर भी उनके लिए कुलक्षण नहीं किन्तु सुलक्षण ही था, क्योंकि जिस तरह चलने फिरने से हमारा शरीर कठिन और दृढ़ हो जाता है उसी प्रकार कार्य्य और उपद्रवों के द्वारा जातीय बल और जातीय जीवन सर्वदा रक्षित और परिपुष्ट होता रहता है। महाराष्ट्रों की जीवन-उषा की प्रथम रक्तिमच्छटा ने महाराज शिवाजी के आगमन होने के कुछ पूर्व ही भारतवर्ष के आकाश को रंजित कर दिया था; यह हमारे कथन की पुष्टि का उज्ज्वल उदाहरण है।

अहमदनगर के सुलतान के अधीन यादवराव और भोंसला नामक महाराष्ट्रवंश के दो प्रधान नायक थे। समस्त महाराष्ट्र देश में सिन्धुक्षीर के यादवराव के समान पराक्रमी और कोई नहीं था। यदि सूक्ष्मविवेचना की जाय तो यादव-राव देवगढ़ के प्राचीन राजघराने का वंशज ठहरता है। यद्यपि भोंसलावंश यादवराव की भाँति उन्नत नहीं था तथापि उसकी गणना एक प्रधान और क्षमताशाली वंश में थी। इस स्थान पर यह प्रकट कर देना अनावश्यक नहीं प्रतीत होता कि यादवराव के घराने में शिवाजी की माता उत्पन्न हुई थीं और भोंसला राजपरिवार में शिवाजी के पिता थे।

दूसरा परिच्छेद

रघुनाथ जी हवलदार

मुख मंडल अतिशान्त कान्तिमय चितवन सोहै ।
भरे अनेकन भाव व्यग्र चारिहुँ दिशि जोहै ॥

× × × ×

—राधाकृष्णदास

कोकन देश में वर्षाकाल के समय प्रकृति की दशा बड़ी भयानक हो जाती है। सन् १६६३ ई० में एक दिन संध्या-समय घनघोर घटा छा गई। यद्यपि अभी सूर्य्यदेव अस्ताचल के निकट भी नहीं पहुँच पाये थे तथापि काले काले बादल के दलों से सारा आकाशमण्डल इस भाँति घोरतम अँधेरे से छा गया कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था। आस पास के पहाड़ और जङ्गल भादों की अँधियारी का दृश्य दिखा रहे थे। सारे मैदान, नदी, वन, पर्वत और तराइयों में महा अन्धकार छाया हुआ था। आकाश और भूमि सबके सब निस्तब्ध और शब्दशून्य थे, परन्तु फिर भी पर्वत से बहती हुई छोटी छोटी नदियाँ कहीं तो चाँदी के गुच्छों के समान दीख पड़ती थीं और कहीं कहीं अन्धकार में लीन होकर केवल शब्दमात्र से अपना परिचय दे रही थीं।

उसी पर्वत के ऊपरवाले मार्ग से केवल एक सवार अपने घोड़े को वेग से चलाये हुए जा रहा था। घोड़े का सारा बदन

पसीने से तर बतर हो रहा था। सवार भी धूल और कीचड़ से परिपूर्ण था और देखने से मालूम होता था कि वह कहीं दूर से आ रहा है। उसके दाहने हाथ में बर्छा, कमर में तलवार, बायें हाथ में बल्लम और घोड़े की लगाम थी। पीठ पर ढाल पड़ी हुई थी और सिर से पैर तक जिरहबख़्तर में डूबा हुआ था। सवार के सिर पर लाल रङ्ग की गोल पगड़ी बँधी हुई थी, इससे यह भले प्रकार प्रकट होता था कि वह कोई महाराष्ट्र योद्धा है। उसकी आयु अभी १८ वर्ष से अधिक नहीं मालूम होती और शरीर का गठन भी सुदृढ़ है। ललाट ऊँचा, दोनों नेत्र ज्योति-पूर्ण, मुख-मण्डल बड़ा ही गम्भीर और भाव-पूर्ण था। परन्तु श्रम से विह्वल होकर वह घोड़े से नीचे कूद पड़ा, लगाम वृक्ष पर फेंक दी, बर्छी पेड़ की शाखा में टेक दी और हाथ से माथे का पसीना पोंछ अपने काले काले बाल उन्नत ललाट के पीछे डाल थोड़ी देर तक आकाश की ओर देखने लगा। आकाश की दशा बड़ी भयानक हो उठी थी और यह भली प्रकार विदित हो रहा था कि अभी कोई बड़ी भारी आँधी आवेगी। मन्द मन्द वायु का चलना आरम्भ हुआ, अनन्तर पर्वत और वृक्ष लताओं से गम्भीर शब्द होने लगा। रह रह कर मेघों की गर्जना भी सुनाई देने लगी और हठात् युवक के सूखे होठों पर दो एक बूँद वर्षा का जल भी पड़ गया। अब कहीं जाने का समय नहीं है। जब तक आकाश अच्छी तरह निर्मल न हो जाय; तब तक कहीं ठहरना ही उचित है। परन्तु युवक को इसके विचारने का अवसर नहीं था। वह जिस प्रभु के यहाँ काम करता है वह विलम्ब अथवा आपत्ति का बहाना नहीं सुनता और यही कारण है कि युवक को भी आपत्ति और विलम्ब करने का अभ्यास नहीं है।

अथच तुरन्त ही वह फलाँग मार घोड़े पर जा बैठा। फिर थोड़ी देर आकाश को देख तीर के समान घोड़े को दौड़ाना प्रारम्भ कर दिया। चलते समय उसके शस्त्रों की झङ्कार से ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वह सोते हुए पर्वत-प्रदेश को अपनी प्रतिध्वनि से जगाना चाहता है।

थोड़े ही समय के बाद वायु का वेग बढ़ गया। आकाश के एक ओर से दूसरी ओर तक विद्युल्लता कौंदने लगी। मेघों के गर्जन से पर्वत-समूह तरजने लगे। हठात् वायु का वेग प्रचण्ड हो उठा, और ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो पर्वत समूल उखड़ जायँगे। वायु के चलने के कारण पर्वत से जङ्गलों में भयानक शब्द होने लगे। झरना का प्रपात भीष्मरूप से उफना पड़ा। नदियों में कर्ण-भेदी गुञ्जार से जलतरङ्ग बढ़ने लगी। क्षण-क्षण में बिजुली के चमकने से बहुत दूर तक स्वाभाविक घोर विप्लव दिखाई देने लगा और बीच बीच में बादलों का गर्जन जगत् को कम्पित और खलबलाने लगा। वर्षा के रौद्र रूप धारण करने के कारण झरने और नदियों का जल उमड़ पड़ा।

अश्वारोही इन आपदाओं को तृण के समान समझता हुआ आगे बढ़ने लगा, परन्तु कभी कभी ऐसा मालूम होता था कि घोड़ा और सवार वायु के वेग से अभी अभी पर्वत से नीचे गिरा चाहते हैं। अकस्मात् वायुपीड़ित एक वृक्ष की शाखा से अश्वारोही टकरा गया। उसकी पगड़ी छिन्न भिन्न हो गई और उसके सिर से दो एक बूँद रुधिर भी टपक पड़ा, तथापि अश्वारोही जिस कार्य्य का व्रती था उसकी अपेक्षा यह दुःख साध्य था। इस कारण युवक को मुहूर्तमात्र भी विश्राम लेने का अवकाश न मिला और वह सतर्कता के साथ

आगे बढ़ता चला गया। दो तीन घड़ी मूसलाधार वृष्टि होने के पश्चात् धीरे धीरे आकाश मेघावच्छिन्न होने लगा और तत्काल ही वर्षा थम गई। सुतराम् युवक की दृष्टि अस्ताचल-चूड़ावलम्बी सूर्य्य के प्रकाश से उन पर्वतों और नवस्नात वृक्ष समूहों की चमत्कारित शोभा पर पड़ गई। युवक दुर्ग के पास पहुँच, एक बार अपने घोड़े को रोक अपने सुंदर मुखमण्डल पर बिखरे हुए बालों को हटा कर नीचे की ओर देखने लगा, जहाँ तक वह अपनी निगाह उठा कर देख सकता है वह सभी स्थान असंख्य पर्वतमालाओं से आच्छादित पाता है। उन पर्वत-शिखरों के नवस्नात वृक्ष अपनी शोभा और ही चमका रहे हैं। बीच बीच में झरने शतगुने बढ़ कर मानों एक एक श्रृंग पर नृत्य कर रहे हैं। सूर्य्यदेव की किरणों से उनकी शोभा और भी अधिक बढ़ गई है। पर्वत-शिखरों पर सूर्य्य की किरणों ने अनेक रङ्ग धारण कर लिये हैं। स्थान स्थान पर इन्द्र-धनुष का दृश्य है। बड़े बड़े इन्द्र-धनुष नाना प्रकार के रङ्गों से रञ्जित हो लाल-पीले हो रहे हैं। मेघों में अब धीरता नहीं, पवनदेव की ताड़ना से विह्वल हो गले जा रहे हैं। परन्तु यह प्रकृति की सारी शोभा युवक को केवल क्षण-मात्र मुग्ध करने में समर्थ हुई। युवक ने सूर्य्य की ओर देख फिर दुर्ग का रास्ता लिया और थोड़ी देर में क़िले के पास पहुँच अपना परिचय दे दुर्ग में प्रवेश किया। उसी समय सूर्य अस्त हो गया और झनझनाहट के साथ क़िले का दरवाज़ा बंद कर लिया गया।

द्वारपालों ने जब द्वार बंद कर लिया तब युवक का सम्बोधन करके वे कहने लगे, "यदि आप क्षणमात्र भी विलंब करके आते तो आज की रात कोट के बाहर ही बितानी पड़ती।"

युवक ने कहा, भला हुआ कि एक मुहूर्त का भी विलम्ब नहीं हुआ क्योंकि मैंने चलते समय अपने प्रभु से ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी। भवानी की असीम कृपा है, अब चलकर मैं क़िलेदार के पास अपने प्रभु की आज्ञा सुनाता हूँ।

द्वार-रक्षक ने कहा, क़िलेदार भी आपही की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

युवक उसी समय क़िलेदार के मकान को चल खड़ा हुआ और वहाँ पहुँच कर अभिवादन कर अपने फेंट को खोला, और कई एक पत्रों को निकाल क़िलेदार के हवाले किया। क़िलेदार मौली जाति का शिवाजी का एक विश्वस्त योद्धा था। वह भी समाचार पाने की उत्कण्ठा में ही था। यही कारण है कि वह दूत की परवाह न करके तुरन्त ही पत्रों के पढ़ने में निमग्न हो गया।

पत्रों के पढ़ने से दिल्ली के बादशाह के साथ युद्ध का प्रारम्भ होना, युवक की आधुनिक अवस्था, किन किन उपयोगों से क़िलेदार शिवाजी को सहायता पहुँचा सकता है, और अन्यान्य विषयों के प्रति उनका क्या क्या परामर्श है—ये सब बातें उन पत्रों के पढ़ने से प्रकट हो गईं। फिर क़िलेदार ने पत्रवाहक की ओर देखा कि वह एक अठारह वर्ष का नवयुवक बालक के समान सरल और उदार है। अभी उसके शुभ्र मुखमण्डल पर घूँघरवाले बाल लटक रहे हैं, परन्तु शरीर उसका दृढ़ और सुडौल है। ललाट और वक्ष चौड़े हैं। क़िलेदार एकबार ही चकित हो गया और पत्र की ओर देखकर एकबारगी युवा की ओर मर्मभेदी तीक्ष्ण नयनों से निहार कर उसने कहा, "हवलदार, तुम्हारा नाम रघुनाथजी है? और तुम राजपूत हो न?"

रघुनाथजी ने विनीत भाव से सिर झुका कर कहा—"हाँ"। क़िलेदार—तुम आकृति और आयु में तो बालक के समान हो, किन्तु कार्य्यक्षेत्र में बड़े दक्ष प्रतीत होते हो।

रघुनाथजी—यत्न और चेष्टामात्र तो मनुष्य के अधीन है, परन्तु उसका प्रतिफल जय या पराजय तो दुर्गा के अधीन है।

क़िलेदार—"तुम सिंहगढ़ से यहाँ (तोरण दुर्ग में) इतने शीघ्र कैसे पहुँच गये ?"

रघुनाथजी—"प्रभु के समक्ष मैंने ऐसी ही प्रतिज्ञा की थी।"

क़िलेदार इस उत्तर को सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि तुम्हारा यह कहना सत्य है। तुम्हारे आकार से ही ज्ञात है कि तुम दृढ़ हो। फिर क़िलेदार ने सिंहगढ़ और पूना की समस्त अवस्था और महाराष्ट्रों तथा मुग़ल-सैन्य का विवरण एक एक करके पूछा। रघुनाथजी जहाँ तक जानते थे उत्तर देते गये।

क़िलेदार ने फिर कहा—"कल प्रातःकाल ही मेरे पास आ जाना, मैं पत्रादि लिख रक्खूँगा और शिवाजी से मेरा नाम लेकर कहना कि आपने जिस तरुण हवलदार को इस कठिन कार्य्य में नियत किया है वह हवलदारी के काम में बड़ा दक्ष है।" इन प्रशंसा के वाक्यों को सुनकर रघुनाथजी ने मस्तक नवा कृतज्ञता को स्वीकार किया।

रघुनाथजी बिदा होकर चले गये। क़िलेदार की इस प्रकार से परीक्षा करने का तात्पर्य्य यह था कि वह महाराज शिवाजी को अति गूढ़ राजकीय संवाद और कुछ गुप्त मंत्रणा भेजनेवाला था, जिसका कि पत्रद्वारा प्रकाश करना

नीतिविरुद्ध था। यही कारण है कि उसने रघुनाथजी को इस क़दर ठोक बजा लिया कि कहीं वह धन-बल अथवा छल-कपट के वश होकर शत्रु के हाथ में न पड़ जाय। परन्तु आनन्द की बात है कि शिवाजी का दूत इन बातों में पक्का निकला। रघुनाथ के आँख-ओट होते ही क़िलेदार ने हँसकर आप ही आप कहा, "महाराज शिवाजी इस विषय में असाधारण पंडित हैं, क्योंकि उन्होंने जैसा कार्य्य किया था उसी के उपयुक्त मनुष्य भी भेजा है।"

तीसरा परिच्छेद

सरयूबाला

भाल-भाग दमकत सरयू के कुम कुम टीको नीको।
अक्षत सहित बुन्दिका सोहत मानो पति रजनी को ॥
भौंहैं कुटिल कमान अग्रसी श्याम रेख रुचि पैनी।
ता अध बरुनी की छबि देखे को अस है मृग-नैनी ॥

—बख्शी हंसराज

किलेदार से बिदा लेकर रघुनाथ, भवानी देवी के मन्दिर की ओर चले। शिवाजी ने जब इस दुर्ग को जय किया था तब उसके थोड़े ही दिनों बाद उसमें एक देवी की प्रतिमा स्थापित कर दी थी और अम्बर देश के एक कुलीन ब्राह्मण को बुलाकर देवी की सेवा के लिए नियुक्त कर दिया था। यही कारण है कि युद्ध के दिनों में बिना देवी की पूजा किये हुए शिवाजी कोई कार्य्य आरम्भ नहीं करते थे।

रघुनाथ जवानी की उमंगों से परिपूर्ण ही आनन्द के साथ अपने कृष्णकेशों को सुधारते हुए आ रहा था और साथ ही युद्ध का एक भावपूर्ण गीत भी गाता जाता था। ज्यों ही वह मंदिर के पास पहुँचा कि अचानक उसकी दृष्टि मंदिर की निकटवर्ती छत पर पड़ गई। सूर्य्य भगवान् अस्ता-चल पार कर चुके थे, परन्तु पश्चिम दिशा के आकाशमण्डल में अभी आपकी आभा झिलमिला रही थी। पक्षिगण अपने

बसेरे ढूँढ़ रहे थे। रघुनाथजी आज बहुत ही थक गया था इसी लिए वह उस छत की ओर देखता हुआ पास के एक चबूतरे पर बैठ गया।

ज़रा और अँधेरा हो जाने पर उस उद्यान में पुष्पविनिन्दित एक बालिका आकर खड़ी हो गई। रघुनाथ उसको देख विस्मित हो गया। यहाँ तो और कोई नहीं है। हो न हो यह बालिका इन्द्रलोक से आ गई है। परन्तु यह राजपूत-कन्या मालूम होती है। बहुत दिनों के बाद स्वदेशीया रमणी को देख कर रघुनाथ का हृदय बल्लियों उछलने लगा। इच्छा तो हुई कि निकट में जाकर राजकन्या का परिचय लें किन्तु रघुनाथ ने अपनी इस लालसा का दमन कर डाला और चुपचाप एकटक लगाकर उसी चबूतरे पर बैठ गया। ज्यों ज्यों उस रमणी की ओर अधिक निगाह जमती गई त्यों त्यों रघुनाथ का हृदय और भी आकृष्ट होने लगा।

बालिका अनुमान से त्रयोदशवर्षीया मालूम होती है। उसके अतिकृष्ण केशपास रेशम को भी लजाते हुए गर्दन से नीचे कमर तक लटके हुए हैं। उसने अपने उज्ज्वल मुखमंडल तथा भ्रमरविनिन्दित दोनों नेत्रों को कुछ कुछ ढक लिया है। भ्रूयुगल, ऐसा मालूम होता है कि मानों ब्रह्मा ने अपनी लेखनी ही से ऐसा बनाया है कि जिससे ललाट की शोभा द्विगुणित हो गई है। दोनों अधर पतले और रक्तवर्ण हैं। दोनों हाथ और बाहें सुगोल और अतिशय गौर हैं, मानों सुवर्ण के खड़ुवे और कङ्कण अपनी शोभा बढ़ाने के लिए उसमें आप लिपटे हुए हैं। कण्ठ और कुछेक ऊँचे वक्षःस्थल पर एक हार बहार ले रहा है। कन्या के ललाट में आकाश की रक्तिमच्छटा गिर कर उस तपे हुए सोने के वर्ण को और

भी उज्ज्वल करती है। यौवन के प्रारम्भ में प्रथम प्रेम के असह्य वेग से रघुनाथ का शरीर कम्पित हो रहा है। जब तक देखा गया पत्थर के समान अचल होकर वे उस सुन्दर मूर्ति का निरीक्षण करते रहे। वैकालिक आकाश की शोभा क्रमशः लीन होती गई, तथापि रघुनाथ को अभी चेतनता प्राप्त नहीं हुई। परन्तु धीरे धीरे मन्दिर के पुजारीजी से मिलने का विचार चिन्तित करने लगे और कुछ ही देर बाद वह मन्दिर में आकर पुजारीजी की अपेक्षा करने लगे। इस समय हम अपने पाठकगणों से पुजारीजी का परिचय कराना आवश्यकीय समझते हैं।

जैसा कि हम पहले ही कह आये हैं, पुजारीजी अम्बर देश के रहनेवाले हैं। वे उच्चकुलोद्भव रजवाड़ी ब्राह्मण हैं। नाम उनका जनार्दनदेव है। जनार्दनदेव अम्बर देश के राजा जयसिंह के एक माननीय सभासद् थे। शिवाजी के बड़े आग्रह से राजा जयसिंह ने उन्हें अपनी अनुमति से शिवाजी के सर्व-प्रथम विजित तोरन दुर्ग में जाने दिया था, परन्तु स्वदेश त्यागने के पहले ही जनार्दनदेव ने एक क्षत्रिय-कन्या के लालन-पालन का भार अपने सिर पर ले लिया था। कन्या का पिता जनार्दनदेव का बचपन का मित्र था, और उसकी माता भी जनार्दन की स्त्री को बहन कहकर सम्बोधन किया करती थी। बहुत दिनों से जनार्दनदेव के निःसन्तान होने के कारण उनकी स्त्री ने बालिका को निज सन्तान की भाँति उसके लालन-पालन का भार अपने सिर ले लिया था और यही कारण है कि अम्बर के त्यागने पर भी बालिका अभी साथ ही है।

कुछ दिनों के बाद जनार्दनदेव की स्त्री का स्वर्गवास हो गया। अब उनके सरयूबाला के अतिरिक्त और कोई दूसरा

आत्मीय नहीं था। सरयूबाला भी जनार्दनदेव के प्रति बड़ा प्रेम रखती थी और उनको पिता से भी अधिक समझती थी। ज्यों ज्यों आयु अधिक होती गई सरयूबाला रूप-लावण्य में विशेष उन्नति करती गई। दुर्ग के सभी शास्त्रज्ञ ब्राह्मण जनार्दनदेव को कण्वमुनि और लावण्यमयी क्षत्रिय-बालिका को शकुन्तला कहकर मज़ाक़ उड़ाया करते थे। जनार्दनदेव भी कन्या के सौंदर्य और स्नेह से परिपुष्ट होकर राजस्थान के निर्वासन का दुःख भूल गये थे।

देवालय में पहुँचने पर रघुनाथ को कुछ देर अपेक्षा करनी पड़ी, परन्तु थोड़ी ही देर के बाद जनार्दनदेव भी मन्दिर में पहुँच गये। जनार्दनदेव का वयस ५० वर्ष का हो गया है, परन्तु अवयव दीर्घ और अभी भले प्रकार बलिष्ठ हैं। दोनों आँखें शान्तिरस से परिपूर्ण हैं, वक्षस्थल विशाल है। बाहु दोनों लम्बे तथा बलिष्ठ, और रङ्ग गौर वर्ण है, स्कन्ध पर जनेऊ पड़ा है। जनार्दनदेव का मुख-मण्डल देखते ही विश्वास हो जाता था कि मानों पूजा के साक्षात् अवतार हैं। रघुनाथ उनको देखते ही आसन को छोड़ कर अलग खड़ा हो गया। प्रणाम-आशीर्वाद के पश्चात् दोनों जन आसन पर बैठ गये। रघुनाथजी ने मीठी भाषा से शिवाजी की वन्दना देवी के प्रति कह सुनाई और कई एक अशरफ़ियाँ जनार्दनदेव को भेंट दी। तत्पश्चात् जनार्दनदेव ने शिवाजी का कुशल-क्षेम पूछा और जहाँ तक ज्ञात था रघुनाथ ने सब बातों को समझा दिया, और अन्त में कहा कि भगवन्! इस समय महाराज शिवाजी मुग़लों से लड़ रहे हैं, आप भी उनकी जय के लिए प्रार्थना कीजिए, क्योंकि देवी की कृपा के बिना मानुषी चेष्टा वृथा है।

जनार्दनदेव गम्भीर स्वर से उत्तर देने लगे, "सनातन हिन्दू धर्म की रक्षा के अर्थ इस प्रकार के मनुष्यों को सदा ही यत्न करना उचित है। मैं शिवाजी के विजय के लिए अवश्य पूजा करूँगा। आप महाराज से कह दीजिएगा कि इस विषय में कोई त्रुटि न होगी।"

रघुनाथ—"प्रभु ने देवी के चरणों में एक और निवेदन किया है कि 'हम वीरतर युद्ध में सम्मिलित होने का फलाफल प्रथम ही जानना चाहते हैं।' आपके समान दूरदर्शी दैवज्ञ इस विषय में अवश्य ही उनकी मनोकामना पूरी कर सकते हैं।"

जनार्दनदेव ने क्षण भर के लिए नेत्र बंद कर लिये, फिर गम्भीर स्वर से बोले—"रात के समय भवानी के चरणों में महाराज की प्रार्थना का निवेदन करूँगा और कल उसका उत्तर दूँगा।"

रघुनाथ धन्यवाद देकर विदा ही होना चाहते थे कि इतने में जनार्दनदेव बोले—"तुम्हें इससे पहले इस दुर्ग में कभी नहीं देखा, क्या आज पहली ही बार तुम्हारा यहाँ आगमन हुआ है?"

रघुनाथ—हाँ आजही आया हूँ।

जनार्दनदेव—दुर्ग में किसी से जान पहचान है? ठहरने का प्रबन्ध हो सकता है?

रघुनाथ—पहिचान तो नहीं है, परन्तु किसी प्रकार रात काट लूँगा क्योंकि तड़के ही तो चला जाना है।

जनार्दनदेव—क्यों मुफ़्त में क्लेश उठाओगे?

रघुनाथ—महाराज की कृपा से कोई क्लेश नहीं होगा। हमें तो सदा ही इसी प्रकार रात काटनी पड़ती है।

जनार्दनदेव—वत्स ! युद्ध के समय का क्लेश तो अनिवार्य्य है, किन्तु अब क्लेश सहन करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारे इसी देवालय में ठहर जाइए। मेरी पौष्य पुत्री राजपूतबाला तुम्हारे खाने पीने का प्रबन्ध कर देगी। फिर रजनी में विश्राम पाकर कल देवी की आज्ञा महाराज शिवाजी के निकट ले जाना।

रघुनाथ की छाती सहसा धड़कने लगी। उनके हृदय में एकबारगी किसी ने आघात किया। यह पीड़ा है! नहीं आनन्द का उद्वेग? यह राजबाला कौन! यह क्या वही पम्पोद्यान की देखी हुई लावण्यमयी राजपूतबाला है?

चौथा परिच्छेद

कण्ठमाला

"कार्य्यं साधयति वा शरीरं पातयति।"

पिता के आदेशानुसार प्रायः एक पहर भी रात नहीं जाने पाई थी कि सरयूबाला ने अतिथि-सत्कार के लिए भोजन का पूरा प्रबन्ध कर लिया। रघुनाथ आसन पर बैठ गये। सरयूबाला पीछे खड़ी रही। महाराष्ट्र देश में अब तक यह प्रथा चली आती है कि जब किसी के घर कोई अतिथि आजाता है तब उसको भोजन परिवार की कोई रमणी ही कराती है।

रघुनाथ भोजन करने को तो बैठ गये, परन्तु उनका चित्त स्थिर नहीं रहा, आँखें भी डाँवाडोल होने लगीं। सरयूबाला अनुग्रहपूर्वक भोजन के पदार्थ रखती गई, परन्तु रघुनाथ को यह सुधबुध नहीं कि मैं क्या खा रहा हूँ। जनार्दनदेव भी बड़े चाव से राजपूताने का इतिहास सुनाने लगे, परन्तु रघुनाथ कभी उत्तर में "हाँ" कह दिया करते और कभी यह कहना भी भूल जाते थे।

रघुनाथ ने आहार करना बन्द किया। सरयू ने एक सफ़ेद पत्थर के गिलास में शरबत भर कर रघुनाथ को दिया। रघुनाथ ने पात्रधारिणी की ओर उत्कण्ठित चित्त से देखा, मानो उनका जीवनप्राण दृष्टि में खुलकर उस कन्या की ओर

चलने लगा। चारों आँखों के मिलते ही सरयू का मुख-मण्डल लाज से रक्तवर्ण होगया। लज्जावती आँख मूँद मुख नीचे करके धीरे धीरे चली गई। रघुनाथ भी लज्जित होकर मौन रह गया। परन्तु थोड़ी देर के बाद वह हाथ मुँह धोने के लिए पानी लेकर फिर आगई। रघुनाथ निर्लज्ज नहीं है। उसने अपने सिर को नीचा कर लिया है। वह केवल सरयू के सुगोल हाथों में सुवर्ण के पड़े हुए खडुओं को देख सका और एक दीर्घश्वास त्याग करके रह गया।

रघुनाथ के लिए चारपाई बिछाई गई, परन्तु उस पर वह सो न सका, वरन् घर के द्वार को धीरे धीरे खोल पास के बाग़ीचे में चला गया, और इधर-उधर घूम घामकर तारे गिनने लगा।

उस गम्भीर अन्धकार में तारागण-विभूषित आकाश की ओर स्थिर दृष्टि करके वह अल्पवयस्क योद्धा क्या सोच रहा है? निशा की छाया धीरे धीरे गम्भीर और प्रगाढ़ होती जाती है। उस समय मनुष्य, जीवजन्तु, सारा संसार शयन कर रहा है। क़िले में भी सन्नाटा छाया हुआ है, हाँ कभी कभी चौकीदारों का शब्द "जागते रहो—जागते" सुनाई पड़ जाता है और पहर पहर के बाद घंटों की घन्नाहट उस निस्तब्ध दुर्ग और चारों ओर के पर्वतों में प्रतिध्वनित होती है। इस अन्धकार से परिपूर्ण रजनी में रघुनाथ भला क्या चिन्ता करता है? इस उद्यान के बीच में किसी के चलने की आहट मालूम होती है। परन्तु वह कौन है? रघुनाथ इसे नहीं जानते। अब तक रघुनाथ बालक थे अतएव उनके शान्त और शुद्ध हृदय पर प्रेम का यह पहला ही आघात है। अतः मानो उनके नील जीवन-आकाश में विद्युत्‌रूपी एक शुभ्र

प्रतिमूर्त्ति स्थापित होगई। सैकड़ों, हज़ारों बार वही आनन्दमयी मूर्त्ति मन-मन्दिर में फिरने लगी। वह चित्र-लिखित भ्रूयुगल, वह कृष्ण उज्ज्वल नेत्र, पुष्पविनिन्दित मधु-मय दोनों अधर, निविड़ केशपाश, सुगोल बाहु, वही स्नेहपूर्ण विशाल नयन, और वही चिरस्थायी अतुल लावण्य! रघु-नाथ! क्या, यह सुन्दरी तुम्हारी हो सकती है? तुम तो एक साधारण हवलदार हो। जनार्दनदेव बड़ा कुलीन राज्यपूज्य ब्राह्मण है। उसकी पालित कन्या को राजा लोग भी चाहते हैं, क्यों इस प्रकार की मृगाशा से वृथा हृदय को जलाते हो? रघुनाथ हम फिर कहते हैं, क्यों वृथा जले जा रहे हो?

किन्तु जवानी के दिनों में आशा ही बलवती होती है। हमें शीघ्र निराश नहीं होना चाहिए। हम असाध्य को साध्य, और असम्भव को सम्भव समझते हैं। रघुनाथ आकाश की ओर देख देख कर क्या विचार रहे हैं? हठात् खड़े होकर अपने हाथों को हृदय पर रख गर्वसहित दिल में सोचने लगे—भगवन्! आपकी सहायता से मैं अवश्यमेव कृत-कार्य्य हूँगा। यश, मान, ख्याति सभी कुछ मनुष्य के वश में हैं, फिर मुझे यह क्यों न प्राप्त होगी? क्या मैं औरों से कम-ज़ोर हूँ? क्या मेरी भुजायें निर्बल हैं? देवगण मेरी सहायता करें। मैं युद्ध में क्षात्रधर्म का भले प्रकार से निर्वाह करूँगा और अपने पिता के नाम और मान को बढ़ाऊँगा। यदि मैं अपने इस प्रण में कृतकार्य हुआ तो क्या सरयू! मैं तुम्हारे अयोग्य हूँगा? कदापि नहीं? तुम्हारे सुन्दर हाथ हमारे इस कम्पित हृदय को स्थिर करेंगे। प्यारी, तुम्हें पाकर फिर और ··· विश्वविनिन्दित दोनों होठों को—रघुनाथ! रघुनाथ! उन्मत्त मत हो जाओ।"

रघुनाथ थोड़ी देर के बाद चित्त को कुछ स्थिर करके मन्दिर की ओर सोने को चला। सहसा देखता क्या है कि जहाँ सरयूबाला कल बैठी थी वहाँ एक मोतियों का कण्ठहार पड़ा हुआ है। उस हार में दो दो मोतियों के बाद एक एक मूँगा पिरोया हुआ है। रघुनाथ ने समझ लिया कि इसी हार को तो कल सरयूबाला अपने कण्ठ में डाले हुए थी। कदाचित् असावधानता के कारण यह यहीं छूट गया है। फिर रघुनाथ आकाश की ओर देख कर कहने लगा—"भगवन्! यह क्या मेरी आशा के पूर्ण होने का प्रथम लक्षण दिखाया?" फिर इन्होंने सहस्रों बार उस माला को चूमा, फिर वस्त्रों के नीचे छाती पर पहन लिया, फिर शीघ्र ही उसी स्थान पर आशा की नींद में सो गये। दूसरे दिन रघुनाथ की आँख खुली। जनार्दनदेव के पास जाकर देवी की आज्ञा सुनी, "म्लेच्छों के साथ लड़ाई करने में जय, परन्तु स्वधर्म्मियों के युद्ध में पराजय होगी।"

दुर्ग के छोड़ने के प्रथम रघुनाथ ने एक बार फिर सरयूबाला को देखा कि वह फिर उद्यान में फूल तोड़ने आई है। धीरे धीरे रघुनाथ भी वहीं पहुँच गया। हृदय को कुछ क़ाबू में करके कम्पित स्वर से रघुनाथ ने कहा—"भद्रे, कल रात के समय यह हार मैंने इसी स्थान पर पड़ा पाया था, वही आपको देने आया हूँ, सो अपरिचित की यह धृष्टता क्षमा कर देना।"

इस विनीत वचन को सुनकर सरयूबाला ने फिरकर जो देखा तो वही कमनीय उदार मुख-मण्डल, वही केशावृत उन्नत ललाट, वही उज्ज्वल दोनों नेत्र और वही तरुण योद्धा! रमणी का गौर मुख-मण्डल फिर रक्तवर्ण हो आया।

रघुनाथ फिर धीरे धीरे बोलने लगा—"यदि अनुमति हो तो इस सुन्दर हार को तुम्हें पिन्हाकर अपना जीवन सफल करूँ।"

सरयूबाला ने लज्जावती आँखों से एक बार फिर रघुनाथ को निहारा। निहारते ही विशाल आयत नयनों के प्रेममद ने रघुनाथ के हृदय को उन्मत्त कर दिया। इस प्रकार सम्मति के लक्षण को जानकर रघुनाथ ने धीरे धीरे उसी कण्ठमाला को सरयूबाला के गले में डाल दिया, परन्तु कन्या का पवित्र शरीर स्पर्श नहीं किया।

थोड़ी देर के बाद रघुनाथ ने धीरे से कहा, "अब अतिथि को जाने की आज्ञा हो।"

इस बार सरयूबाला ने लज्जा और उद्वेग को रोका और धीरे धीरे रघुनाथ की ओर देख कर वह फिर पृथ्वी की ओर देखने लगी, फिर हौले हौले पृथ्वी से आँख उठाकर बहुत मधुर परन्तु स्पष्ट स्वर से कहने लगी—"तुमने मेरे ऊपर बड़ी कृपा की है। कभी कभी फिर इस कोट में आते जाते रहना?"

ओह! प्यासे पपीहे के लिए प्रथम-वृष्टि की बूँद की तरह, और रात भर मार्ग भूले हुए थके पथिक के लिए उषा की प्रथम ललाई की भाँति, सरयूबाला के मुख से प्रथम ही प्रथम निकले हुए इन मधुर शब्दों ने रघुनाथ के हृदय-सागर को तरङ्गों से लहरा दिया। उन्होंने उत्तर दिया—"भद्रे! मैं दूसरे का नौकर हूँ। युद्ध करना मेरा काम है। मैं नहीं कह सकता कि आ सकता हूँ कि नहीं; परन्तु जब तक

शाइस्ताखाँ ख़ुद उस घर में रहता था जो दादाजी कन्ह-देव के नाम से प्रसिद्ध था और जिसमें शिवाजी लड़कपन में रहते और खेला करते थे। शाइस्ताखाँ शिवाजी की चतुरता को भले प्रकार से जानता था। इसलिए उसने प्रबन्ध कर लिया था कि बिना परवाने के कोई महाराष्ट्र-देशीय पूना में न आने पावे। पास ही के सिंहगढ़ नामक दुर्ग में शिवाजी भी अपने सैन्य के साथ रहते थे। उस समय तक मरहठे युद्ध करने में चतुर नहीं हुए थे, फिर दिल्ली की पुरानी सेना के सङ्ग सम्मुख युद्ध करना किसी प्रकार सम्भव भी नहीं था। इसलिए शिवाजी ने एक चतुरता के सिवाय स्वाधीन-रक्षित हिन्दूराज्य का विस्तार करने का दूसरा कोई उपाय नहीं देखा।

चैत्र महीने के अन्त में एक दिन सन्ध्या के समय शाइस्ताखाँ ने अपने इष्टमित्रों और मंत्रियों को बुला भेजा। सब इकट्ठे होकर दादाजी कन्हाई के मन्दिर में सभा कर रहे हैं और उसमें इस बात पर विचार हो रहा है कि शिवाजी को किस हिकमत से पराजय करना चाहिए? चारों ओर उज्वल दीपावली जल रही है। जंगलों के भीतर से वाटिका की सुगन्ध में सनी हुई मन्द मन्द वायु चल रही है। सब लोग पुलकित हो रहे हैं। आकाश में अन्धकार छा रहा है किन्तु वहाँ भी दो एक तारे जल रहे हैं।

शाइस्ताखाँ के अनवरी नामक एक ख़ुशामदी ने कहा— "जहाँपनाह! वल्ला, मैं रास्त कहता हूँ कि दिल्ली की फ़ौज के मुक़ाबिल मरहठों की क्या हक़ीक़त है। भला तूफ़ान तिनके की क्या बिसात समझता है? वह तो फ़ौरन परागन्दा हो जायँगे, इन्शाँअल्लाताला—मरहठे तो पैवन्दे ज़मीन हो जायँगे।"

चाँदखाँ नामक एक पुराना बहादुर सिपाही भी इन बातों को सुन रहा था। उसके जीवन का अधिकांश महाराष्ट्रों के सम्मुख लड़ाई करने में ही व्यतीत हुआ है। उसे महाराष्ट्रों के बल-विक्रम का भली प्रकार अनुभव प्राप्त है। उसने धीरे से कहा—"मैं ख़ूब जानता हूँ, उनमें ज़ोर और हिकमत के अलावा अक़्लमन्दी भी है।"

शाइस्ताखाँ—किसमें ?

चाँदखाँ—"जहाँपनाह; मरहठों में। हुज़ूर को ख़ूब याद होगा कि गुज़श्ता साल जब कुछ कोहस्तानी मरहठे चाकन के क़िले में घुस गये थे तब हमारी फ़ौज को कैसी मुसीबत के साथ उनको बाहर करना पड़ा था। एक ही क़िले के फ़तह करने में हज़ारों मुग़ल शहीद हुए। इससाल जब कि हर चहार तरफ़ हमारी फ़ौज का जाल बिछा हुआ है, मगर फिर भी मरहठों ने निताईजी, अहमदनगर और औरङ्गाबाद को बराबर बरबाद कर डाला तो क्या उन्हें हम तिनके से मुशाबेहत दे सकते हैं ?.."

शाइस्ताखाँ—चाँदखाँ ज़ईफ़ होगये हैं, बस यही सबब है कि वह पहाड़ी चूहों से इस क़दर ख़ौफ़ खाते हैं; वरना पहले तो ऐसी दहशत न थी।

चाँदखाँ का मुख-मण्डल आरक्त होगया, परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया।

महाराष्ट्रों के विषय में अनेक प्रकार का रहस्य हुआ: फिर किस प्रकार से युद्ध करना चाहिए—यही विषय स्थिर होने लगा। शाइस्ताखाँ ने चाकनदुर्ग के हस्तगत करते समय यह निश्चय कर लिया था कि बस और क़िलों का फ़तह करना बहुत ही कठिन है। यहाँ तो पहाड़ी पहाड़ी

पर क़िले हैं, भला इनको कब तक फ़तह करते रहेंगे? इस प्रकार नहीं मालूम कितना समय लगेगा और बादशाह के हुक्म की तामील भी महाल है। इसका क्या क़याम? मुमकिन है कि क़िले धीरे धीरे हाथ आते रहें, ख़्वाह न भी आ सकें।

चाँदख़ाँ—जहाँपनाह, दुर्गही महाराष्ट्रों की ताक़त है। लड़ाई करना ख़्वाह उनको लड़ाई में हरा देना महाराष्ट्रों के नज़दीक कोई बात नहीं है, क्योंकि यह मुल्क पहाड़ी है। वह मुक़ाम के बाज़ ख़ाम से वाक़िफ़ हैं, एक जगह हार खाकर भाग जायँगे, दूसरी जगह पर इकट्ठे होकर फिर ऊधम करने लगेंगे। क्या इसकी ख़बर हमें मिल सकती है? लेकिन एक एक करके क़िला अपने क़ब्ज़े में करने से लाचार होकर उन्हें हार माननी पड़ेगी और वह दिल्ली की इताअत क़बूल करेंगे।

शाइस्ताख़ाँ—क्या मरहठों के लड़ाई से भाग जाने पर हम उनका पीछा नहीं कर सकते? क्या हमारे पास सवार नहीं हैं कि जो धावा करके उनको ख़ाक में मिला दें?

चाँदख़ाँ ने फिर निवेदन किया, "जहाँपनाह! अगर बफ़र्ज़ कर लिया जाय कि मुग़लों को फतह नसीब हो जाय तो ज़रूर हम मरहठों पर हमला करके उनको पकड़ लेंगे और उन्हें क़तल भी करेंगे। मगर इन पहाड़ी मरहठे सवारों को खदेड़ कर पकड़नेवाले सवार हमारे हिन्दुस्तान में तो नहीं हैं। यह हम मानते हैं कि हमारे घोड़े बहुत बड़े बड़े हैं। सवार भी मुसल्लह और बड़े जवाँमर्द हैं और उनकी तेज़ी को महाराष्ट्रगण बर्दाश्त नहीं कर सकते, मगर, पीरमुर्शिद! यह पहाड़ी ज़मीन हमारे सवारों के रास्ते में रोड़े अटकाती है।

यहाँ के छोटे छोटे घोड़ों के सवार मेंढ़ों की तरह उछलते और हिरनों के मुआफ़िक़ छलांगें भरते हैं। दम के दम में नौ दो ग्यारह हो जाते हैं। जहाँपनाह, मेरी बात मानिए, शिवाजी सिंहगढ़ में है, एक बारगी वहाँ की चढ़ाई कर दीजिए, एक महीने ख़्वाह दो महीने में क़िला फ़तह हो जायगा, और शिवाजी क़ैद में आजायगा। फिर दिल्ली के बादशाह की फ़तह होगी। नहीं तो उनकी इन्तज़ारी करने से क्या होगा? बिल्फ़र्ज़ अगर उनका तअक़्क़ुब भी किया गया, तो इससे कौन सा मक़सद हल होगा? ख़्याल फ़रमाइए, निताईजी को तो मुफ़्त ही में हम लोगों को दे दिया, लेकिन अहमदनगर, औरङ्गाबाद को उसने किस तरह बिद्अत की, रुस्तमेज़मान ने भी तअक़्क़ुब करके क्या बना लिया?

शाइस्ताख़ाँ क्रोधित होकर बोला—"रुस्तमेज़मान ने बग़ावत की है। उसने दीदा-दानिस्ता निताईजी से उनको भागने दिया है। मैं उसको मुनासिब सज़ा दूँगा। चाँदख़ाँ! तुम भी मुक़ाबिल की लड़ाई के ख़िलाफ़ हो? क्या दिल्ली के बादशाह की फ़ौज में कोई जवाँमर्द सिपाही नहीं है?

प्राचीन योद्धा चाँदख़ाँ का मुख-मण्डल और भी आरक्त-वर्ण होगया। पीछे की ओर मुख फेरकर एक दो बूँद जो आँसू आँखों में आ गया था पोंछ डाला। फिर सेनापति की ओर दृष्टि करके कहने लगा—"मुझमें सलाह-मशविरा देने की तमीज़ नहीं। हुज़ूर लड़ाई की तद्बीर सोचें, फिर जैसी इजाज़त होगी बन्दा तामील में दरेग़ न करेगा।"

इसी समय एक प्रतिहारी ने आकर समाचार दिया कि सिंहगढ़ का दूत महादेवजी न्यायशास्त्री नामक ब्राह्मण आया है और वह नीचे खड़ा है। शाइस्ताख़ाँ उसकी प्रतीक्षा कर

रहा था। इसी कारण उसे सभा में लाने की आज्ञा दी। समस्त सभासद्गण इस दूत के देखने को उत्कण्ठित हो गये।

क्षणभर के उपरान्त ही महादेवजी न्यायशास्त्री सभा में आ पहुँचे। शास्त्रीजी की अवस्था अभी ४० वर्ष से अधिक नहीं है। आकार महाराष्ट्रों की भाँति कुछ नाटा और रङ्ग साँवला है। ब्राह्मण का मुखमण्डल सुन्दर है, वक्षःस्थल विशाल, बाहु युगल, दीर्घ नयन, गम्भीर विचारशक्ति है। शिर में चन्दन का तिलक है, कन्धे में जनेऊ पड़ा है, शरीर मोटी अमेद कुरती से ढका हुआ होने से गठन स्पष्ट नहीं देखी जाती। शाइस्ताख़ाँ ने आदरपूर्वक इस आये हुए दूत को बैठाया।

शाइस्ताख़ाँ ने पूछा—"सिंहगढ़ की क्या हालत है?"

महादेवजी ने एक श्लोक पढ़कर उसका उत्तर दिया—

"सन्ति नद्यो दण्डकेषु तथा पञ्चवटीवने।
सरयूविच्छेदजं शोकं राघवस्तु कथं सहेत॥"

अर्थात् "दण्डकराज्य और पञ्चवटीवन में शत शत नदियाँ हैं, किन्तु उन्हें देखकर क्या रघुनाथ को सरयू नदी के विच्छेद का दुःख भूल सकता है? सिंहगढ़ इत्यादि सैकड़ों दुर्ग अब भी शिवाजी के अधीन हैं किन्तु पूना आपके हाथ में है क्या इस सन्ताप को वे भूल सकते हैं?"

शाइस्ताख़ाँ परितुष्ट होकर बोला—"हाँ, तुम अपने स्वामी से कह देना कि जब प्रधान क़िला हमारे क़ाबू में है तो लड़ना बेफ़ायदा है। मगर बादशाह की इताअत क़बूल कर लेने से अब भी उम्मीद है।"

ब्राह्मण ने कुछ हँस कर फिर एक श्लोक का पाठ किया—

"न शक्तो हि स्वाभिलाषं गिरा वक्तुञ्च चातकः ।
ज्ञाता दयालुर्मेघस्तु सन्तोषयति याचकम् ॥"

अर्थात् "चातक वचनों द्वारा अपनी अभिलाषा मेघों को नहीं ज्ञात करा सकता, परन्तु मेघ अपनी दया ही के वश हो वह अभिलाषा पूर्ण करते हैं। याचकों को देने के लिए बड़ों की यही रीति है। महाराज शिवाजी पूना और चाकन के दुर्गों के निकल जाने से सन्धि करते हुए भी लजाते हैं, परन्तु आप जैसे सज्जन के अनुग्रह से जो कुछ दान हो जायगा वही शिवाजी को शिरोधार्य है।"

अब शाइस्ताखाँ अपने आनन्द को नहीं रोक सका; बोला, पण्डितजी ! तुम्हारी पण्डिताई से मैं अज़हद ख़ुश हुआ हूँ, तुम्हारी यह संसकीरत ज़बान बड़ी मीठी और मतलबख़ेज़ होती है, क्या वाक़ई शिवाजी सुलह करना चाहता है ?"

महादेवजी ने कहा—

"केशरिणः प्रतापेन भयसन्दग्धचेतसः ।
त्राहि देव ! त्राहि राजन् ! इति शृण्वन्ति भूचराः ॥

अर्थात् "दिल्लीश्वर के सैन्य के दोर्दण्ड प्रताप से भयभीत होकर केवल त्राहि त्राहि के शब्द हम लोग उच्चारण करते हैं।"

अब की बार तो शाइस्ताखाँ मारे आनन्द के आपे से बाहर होगया और ब्राह्मण से कहने लगा—"पण्डितजी ! आपके शासतर से तो मैं बड़ा ख़ुश हुआ, अगर आप सुलह ही का पयाम लेकर आये हैं तो वाक़ई शिवाजी ने आपको इस जगह के लायक़ बहुत अच्छा इन्तिख़ाब किया। मगर इसका सबूत क्या है ?

ब्राह्मण ने गम्भीर भाव धारण कर वस्त्र के भीतर से एक निदर्शन पत्र निकाला। बहुत देर तक शाइस्ताख़ाँ उसको देखकर बोला—"हाँ, मैंने इस परवाने को देख लिया, और वाक़ई मुझे बड़ी ख़ुशी हुई। मगर क्या क्या अहदो पैमान करने की ज़रूरत है?"

महादेव—"हमारे प्रभु ने कहा है कि जब पहले ही आप लोगों की जीत हुई है तो अब युद्ध करना वृथा है।"

शाइस्ताख़ाँ—बेहतर, ख़ूब।

महादेव—"अब महाराज सन्धि करना चाहते हैं परन्तु यह जानना चाहते हैं कि क्या दिल्लीश्वर भी सन्धि के इच्छुक हैं! यदि हैं, तो किन नियमों का पालन शिवाजी से कराना चाहते हैं?"

शाइस्ताख़ाँ—"अव्वल बादशाह की मातहती। क्या इसके लिए तुम्हारे महाराज तैयार हैं?"

महादेव—"उनकी सम्मति वा असम्मति जताने का मुझको अधिकार नहीं है। आप जो जो मुझसे कहेंगे मैं उन बातों को शिवाजी से निवेदन कर दूँगा।"

शाइस्ताख़ाँ—"ख़ैर, अव्वल शर्त तो यही कि दिल्ली के बादशाह की इतायत करनी पड़ेगी। दोयम यह कि जिन जिन क़िलों को बादशाह की फ़ौज ने फ़तह किया है, बादशाह के क़ब्ज़े में रहें। सोयम यह कि सिंहगढ़ वग़ैरह और दूसरे क़िले भी छोड़ देने पड़ेंगे।"

महादेवजी—"वह कौन कौन?"

शाइस्ताख़ाँ—"वह दो एक दिन बाद ख़त के ज़रिये मालूम हो जायगा। चहारम यह कि और दीगर क़िले जो शिवाजी अपने क़ब्ज़े में रक्खेंगे वे बतौर जागीर के होंगे और

उन पर ख़िराज़ देना होगा। यही सब बातें तुम अपने महाराज से जाकर रज़ामन्दी व नारज़ामन्दी से हमें बहुत जल्द इत्तला करो।"

महादेवजी—"जो आपकी आज्ञा है वही मैं करूँगा, परन्तु जब तक सन्धि के प्रस्ताव निश्चित न हो जायँ तब तक लड़ाई बन्द रहे?"

शाइस्ताख़ाँ—"हरगिज़ नहीं, दग़ाबाज़ और फ़रेबी मरहठों का मैं कभी यक़ीन नहीं कर सकता, ऐसी कोई दग़ाबाज़ी नहीं जिसे मरहठे न कर सकें। जब तक अच्छी तरह सुलह मज़बूत न हो जायगी, यह नामुमकिन है कि लड़ाई बन्द कर दी जाय और तुम्हें हम नुक़सान न पहुँचावें।"

"एवमस्तु" कह कर ब्राह्मण ने विदा माँगी। परन्तु उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। वह धीरे धीरे दरबार से बाहर हुआ। प्रत्येक द्वार, घर, भली प्रकार से देखता हुआ चला।

एक मुग़ल पहरेदार ने कुछ विस्मित होकर पूछा—"जनाब! आप देखते क्या हैं?"

दूत ने उत्तर दिया—"शिवाजी जब बालक थे, यहाँ खेला करते थे। वही मुझे स्मरण हो आया है। परन्तु वही अब तुम्हारे अधीन है और ऐसा मालूम होता है कि इसी तरह एक एक करके सभी दुर्ग तुम्हारे हस्तगत होते जायँगे। हा, भगवन्!"

पहरेदार ने हँसकर कहा—"ठीक है, मुफ़्त में रञ्ज मत करो। अपने काम पर जाओ।" ब्राह्मण शीघ्र ही मनुष्यों की भीड़ से होता हुआ पूना के बाज़ार के मनुष्यों में मिल गया।

छठा परिच्छेद

शुभकार्य्य का पुरोहित

पालसी के बाग़ में झूले उम्मीदों के बहुत ।
जिसका जी चाहे बरसों बेतकल्लुफ़ झूल जाय ॥

—अकबर ।

ब्राह्मण ने एक एक करके पूना के बहुत से रास्ते देख लिये। जिन स्थानों से वह होकर जाता था उसको भली प्रकार समझ लेता था। सौदा खरीदने के बहाने बहुत सी बातें दूकानदारों से जान लीं। फिर बाज़ार से बाहर होकर चौड़ी सड़कों से आगे बढ़ने लगा। रात होने के कारण यहाँ लोग अपने अपने दरवाज़े बन्द करके घर में सो रहे थे, परन्तु दीपक जल रहे थे।

ब्राह्मण एकाएकी बहुत दूर आगे बढ़ गया। आकाश अन्धकारमय था। केवल दो-एक तारे दिखाई देते थे। नगर-निवासी सब सो रहे थे और जगत् सुनसान प्रतीत होता था। यहाँ ब्राह्मण को किसी के पग की आहट मालूम हुई और तुरन्त ही वह खड़ा होगया। परन्तु अब वह आहट थम गई।

ब्राह्मण फिर चलने लगा, परन्तु फिर मालूम हुआ कि पीछे कोई आता है। अबकी बार ब्राह्मण का हृदय चञ्चल हो उठा और वह सोचने लगा कि "भगवन्! रात्रि के समय

कौन मेरे पीछे लगा हुआ है? न जाने मित्र है अथवा शत्रु? क्या शत्रु ने मुझे जान लिया?" इस प्रकार की उधेड़बुन में कुछ देर तक वह खड़ा हुआ सोच रहा था, परन्तु निश्चय करके कि "यदि शत्रु है तो अभी इसका काम तमाम करता हूँ" और आस्तीन से एक तेज़ छुरी निकाल कर रास्ते के बगल में खड़ा होगया। दम रोके बहुत देर होगयी। परन्तु शब्द-मात्र भी नहीं सुनाई पड़ता है! चारों ओर मार्ग, घटा, कुटी, अट्टालिका किसी से कोई शब्द नहीं आता है, आकाश अभेद अन्धकार से जगत् को आच्छादित किये हुए है। सहसा एक चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया, ब्राह्मण का हृदय काँप उठा और वह चुपचाप खड़ा होगया।

क्षणभर पर फिर वही चिल्लाहट सुन पड़ी परन्तु अब महादेव की शङ्का दूर होगई क्योंकि वह चौकीदारों की आवाज़ थी। दुर्भाग्यवश महादेव जिस गली में छिपा था पहरेदार उसी में आगया। वह गली बड़ी सँकरी थी। महादेव फिर उसी छूरी को हाथ में लेकर खड़ा होगया।

पहरेदार धीरे धीरे इधर-उधर देखता हुआ उसी जगह पर आगया जहाँ महादेव खड़ा था, परन्तु पहरेदार को अन्धकार के कारण कुछ दीख नहीं पड़ा और वह धीरे धीरे आगे को बढ़ता गया। महादेव ने भी वहाँ से खसक कर माथे के आये हुए पसीने को पोंछा, फिर पास ही के एक द्वार को खटखटाया, दरवाज़े से शाइस्ताखाँ का एक दक्षिणी सिपाही बाहर आया। अब दोनों साथ साथ बड़े गुप्त भाव से नगर के बीच में होकर चलने लगे और थोड़ी देर बाद एक अगम्य स्थान में जा पहुँचे।

ब्राह्मण—"सब ठीक है?"

सिपाही—"हाँ, सब ठीक है।"

ब्राह्मण—"परवाना मिल गया ?"

सिपाही—"मिल गया।"

अब फिर ज़रा ज़रा सी पैरों की आहट होने लगी। इस बार महादेवजी को बड़ा क्रोध आया। दोनों आँखें लाल होगईं; फिर उसी छूरे को निकाल कर सँभाला। बहुत देर तक प्रतीक्षा करते रहे, परन्तु कुछ भी दिखाई नहीं दिया और लौट कर सिपाही से कहा—"ख़ाली हाथ तो नहीं आये हो ?"

सिपाही ने छाती के नीचे से छुरी निकाल कर दिखाई।

ब्राह्मण ने कहा—"ख़ैर सावधान रहना। विवाह कब है ?"

सिपाही—"कल।"

ब्राह्मण—"आज्ञा मिल गई है ?"

सिपाही—"हाँ।"

ब्राह्मण—"कितने आदमियों की ?"

सिपाही—"बाजावाले १०, और अस्त्रधारी ३०। बस इससे अधिक की आज्ञा नहीं है।"

ब्राह्मण—"यही बहुत है, परन्तु समय कौन सा है ?"

सिपाही—"एक पहर रात बीते"

ब्राह्मण—"अच्छा, तो बरात इधर ही से निकलेगी ?"

सिपाही—"याद है।"

ब्राह्मण—"बजानेवाले ज़ोर ज़ोर से बाजा बजावें।"

सिपाही—"अच्छा।"

ब्राह्मण—"जहाँ तक सम्भव हो जाति-कुटुम्बियों को इकट्ठा करना!"

सिपाही—"समझ लिया है !"

तब ब्राह्मण कुछ हँसकर बोला—"हम उसी शुभकार्य्य के पुरोहित !" उस शुभकार्य्य की छटा सारे भारतवर्ष में छा जायगी।

सहसा एक तीर तीव्र वेग से आकर ब्राह्मण की छाती में लगा। तीर से निश्चय ही प्राण-नाश सम्भव था, परन्तु ब्राह्मण की कुर्ती के नीचे के बख़्तर से लगकर तीर उलट गया। फिर एक बर्छे का आघात हुआ, जिसके वेग को ब्राह्मण सहन न करके भूमि पर गिर पड़ा, परन्तु वह दुर्भेद बख़्तर टूटा नहीं। किन्तु क्षणभर के बाद महादेव फिर उठ बैठा। परन्तु सामने अब क्या देखता है कि मुग़लों के फ़ौज का एक योद्धा सशस्त्र खड़ा है। ओह ! यह तो चाँदख़ाँ है !

जब शाइस्ताख़ाँ ने चाँदख़ाँ को सभा के अन्दर भीरु इत्यादि वचनों से उसे रुष्ट कर दिया था तभी चाँदख़ाँ ने यह संकल्प कर लिया था कि "या तो अपने भीरुपने को दिखाऊँगा नहीं तो इसी समर में लड़कर प्राण दूँगा।"

ब्राह्मण का आचरण देखकर चाँदख़ाँ को सन्देह हुआ था। वह शिवाजी को भले प्रकार जानता था। शिवाजी की असाधारण क्षमता, बहु-संख्यक दुर्ग, अपूर्व और द्रुत-गामी अश्वारोही सैन्य, उसका हिन्दूधर्म्म से प्रेम, हिन्दू-राज्य के स्थापन की अभिलाषा, हिन्दू-स्वाधीनता में उसकी प्रतिज्ञा यह सब विषय चाँदख़ाँ से छिपा हुआ नहीं था। चाँदख़ाँ ने दिल में सोचा कि यह असम्भव है कि मुग़लों से लड़ाई शुरू होते ही शिवाजी हार मानकर सन्धि कर ले। परन्तु इस ब्राह्मण ने शिवाजी का परवाना

दिखाया है। यह कौन ब्राह्मण है? इसका छिपकर हाल जानना चाहिए?'

ब्राह्मण की बातों ही से चाँदखाँ को सन्देह हुआ था। जब महाराष्ट्रों की निन्दा होते हुए ब्राह्मण का मुख-मण्डल आरक्तवर्ण होगया था तब भी उसे चाँदखाँ ने देखा था। परन्तु इन तमाम बातों को उसने शाइस्ताखाँ से नहीं कहा था। क्योंकि सत्य बोल कर कौन विपत्ति मोल ले? किन्तु उसने दिल ही दिल में स्थिर कर लिया था कि इस दूत को अवश्य पकड़ूँगा। बस, यही कारण है कि चाँदखाँ दूत के पीछे पीछे छिपा हुआ फिर रहा था। एक सिकण्ड के लिए भी ब्राह्मण उसकी नज़रों से ओझल नहीं होने पाता था। उस सिपाही के साथ ब्राह्मण का जो वार्तालाप हुआ था उसे भी चाँदखाँ ने सुना था और बुद्धिमान् चाँदखाँ ने उसी समय समझ लिया था कि इस दूत का विनाश करना ही मेरे लिए सर्वोत्तम है। फिर शाइस्ताखाँ से जब इन बातों को कहूँगा तब वह अपनी भूलों को स्वीकार करेगा कि "चाँदखाँ भीरु नहीं है और न वह दिल्लीश्वर का अनिष्टकारी"। जब इस षड्यन्त्र को पकड़ा दूँ तब यह जीवन सफल होगा। फिर शाइस्ताखाँ समझेगा कि चाँदखाँ की बातें इस प्रकार अवहेलना के योग्य नहीं हैं।" परन्तु यह आशा दुराशा थी, स्वप्नवत् राज्य-प्राप्ति के तुल्य थी। महादेव को भूमि से उठते देख चाँदखाँ ने समझ लिया कि तीर और बर्छी का आघात निष्फल गया इसी कारण उसने तुरन्त ही छलाँग मार कर बड़े ज़ोर से महादेव पर तलवार चलाई परन्तु आश्चर्य की बात है कि बख़्तर में लगकर तलवार खण्ड खण्ड होगई।

"बुरे क्षण में मेरा अनुसरण किया था"—यह कह महादेव ने अपने आस्तीन के भीतर से छुरे को निकाला, फिर आकाश की ओर उठाया और पलमात्र में उसे चाँदखाँ के शरीर में भोंक दिया। चाँदखाँ का मृतक देह धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ा।

ब्राह्मण ने दाँत से होठों को दबा लिया। उसके नेत्रों से चिनगारियाँ निकलती थीं। फिर धीरे धीरे महादेव वह छुरी छिपा कर बोला—"शाइस्ताखाँ! महाराष्ट्रों की निन्दा करने का यह प्रथम फल है। भवानी की कृपा से दूसरा फल कल मिलेगा।"

वीरोचित कार्य्य करते हुए चाँदखाँ ने जीवन-दान किया। परन्तु शाइस्ताखाँ उस समय बड़ी सुखनिद्रा ले रहा था, और स्वप्न ही में देख रहा था—"शिवाजी, वह बन्दी होकर आ रहा है। इत्यादि।"

महाराष्ट्रीय सैनिक ने इन तमाम व्यापारों को देखा और कहने लगा, "महाराज, अब क्या करना होगा? कल तो इस बात के प्रकट होने से हमारा सब किया-धरा नष्ट हो जायगा।"

ब्राह्मण—"नहीं, कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। मैं जानता हूँ, चाँदखाँ आज सभा में अपमानित हुआ था। अब कई दिन तक उसके सभा में न जाने से कोई सन्देह न करेगा। यह मृतकदेह इस गम्भीर कुएँ में डाल दो, और याद रक्खो कि कल एक पहर रात गये।

सिपाही—"हाँ, एक पहर रात गये।"

ब्राह्मण चुपचाप पूना नगर से चल दिया। तीन चार स्थानों में पहरेवालों ने उसे पकड़ा, परन्तु उसने शाइस्ताखां का दस्तख़ती परवाना दिखा दिया और सकुशल पूना के बाहर होगया।

सातवाँ परिच्छेद

राजा यशवन्तसिंह

धन्य राज प्रिय प्रजा, प्रजा प्रिय राज सुखारी।
धनि पुनीति नृप नीति, प्रीतपथ पोषनहारी॥
धन्य भिन्न मत प्रजा मध्य यह भेद अभावा।
विमल न्याय, नय, सुमति, शील, बल, बुद्धि प्रभावा॥

—श्रीधर पाठक

आधी रात होगई है। राजा यशवन्तसिंह अकेले किले में बैठे हैं। हाथ पर गाल रखकर इस निशाकाल में नहीं मालूम क्या विचार रहे हैं। सामने एक दीपक जलता है परन्तु डेरे में दूसरा कोई नहीं है। सन्देशा आया, "महाराष्ट्रीय दूत" आपसे मिलना चाहता है। महाराज ने आज्ञा दी, "आने दो, हम उन्हीं की तो प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

महादेव न्यायशास्त्री डेरे में आया। महाराज यशवन्तसिंह ने उठकर उनको आदर-सत्कार के साथ बैठने को कहा। फिर दोनों जने बैठ गये।

कुछ देर तक यशवन्तसिंह चुप रहे। शायद कोई बात सोच रहे थे, परन्तु इसी दशा में महादेव यशवन्तसिंह की

और बड़ी सावधानी से देख रहा था। फिर यशवन्तसिंह ने कहा, "हमने तुम्हारे स्वामी का पत्र पढ़ा था। उसको भले प्रकार समझ भी लिया है। क्या उसके अतिरिक्त और कुछ कहना है?"

महादेव—"हमारे स्वामी ने किसी प्रस्ताव को लेकर नहीं भेजा है। हाँ, केवल खेद-प्रकाश करने के लिए अवश्य भेजा है।"

यशवन्तसिंह—"केवल पूना और चाकनदुर्ग हमारे हस्तगत हो जाने से ही तुम्हारे महाराज ने खेद प्रकट करने को तुम्हें भेजा है?"

महादेव—"वे केवल दुर्गों के निकल जाने से खिन्न नहीं हैं, उनके पास तो असंख्य दुर्ग हैं?"

यशवन्त—"तो फिर क्या मुग़लों के युद्धरूपी विपद् में फँस कर खेद कर रहे हैं?"

महादेव—"विपद् में पड़कर उनको खेद करने का अभ्यास नहीं?"

यशवन्तसिंह—"फिर किसलिए खेद है?"

महादेव—"वह हिन्दूराज-तिलक, जो क्षत्रिय-कुलावतंस, सनातन-धर्म-रक्षक है उसको इस समय म्लेच्छों का दास देखकर हमारे प्रभु शोकाकुल हो रहे हैं।"

यशवन्तसिंह का मुखमंडल लाल हो आया। महादेव ने उसे देखकर भी अनदेखा कर दिया और गम्भीर स्वर से कहने लगा—

"जिसने उदयपुराधीश राना प्रतापसिंह के वंश में विवाह किया हो, जिसकी सुख्याति से राज्यस्थान परिपूर्ण हो रहा हो, माड़वार राजछत्र जिसके सिर पर विराजमान हो, सिप्रा नदी

के तौर पर जिनका पराक्रम देख औरङ्गज़ेब भी भयभीत हुआ हो, ऐसे हिन्दूधर्म के स्तम्भ को, जिसके लिए ग्राम ग्राम, मंदिर मंदिर में जय मनाया जाता हो, मुसलमानों की ओर से हिन्दुओं से लड़ना क्या अभिप्राय रखता है? क्षत्रियकुल-र्षभ! मैं एक साधारण ब्राह्मण हूँ, फिर दूतों का काम करता हूँ। मुझे अधिक ज्ञान नहीं है। यदि मुझसे असभ्य वचन निकलते हों तो आप क्षमा करें। परन्तु क्या आपका यह उद्योग हिन्दुओं को स्वतन्त्र करने के लिए है? यह समस्त विजयपताका क्या हिन्दुओं के स्वराज्य की उड़ी है? महाराज, आप ही विवेचना करें। मैं कुछ नहीं जानता।"

यशवन्तसिंह सिर नीचा ही किये रह गये। महादेव फिर बोलने लगा, "आप राजपूत हैं। महाराष्ट्रगण भी राजपूत-पुत्र हैं। पिता-पुत्र का युद्ध सम्भव नहीं। स्वयं भवानी ने इस युद्ध का निषेध किया है। राजपूतों का गौरव एक-मात्र अनाथ भारतवर्ष का गौरव है। राजपूत-यशोगीत हमारे यहाँ की स्त्रियाँ अभी तक गाती हैं। राजपूतों ही के आदर्श पर हम लोग अपने लड़कों को शिक्षा देते हैं। क्षत्रिय-कुलतिलक! राजपूतों के शोणित से हमारे खड्ग रञ्जित होने के प्रथम ही महाराष्ट्रों का नाम लुप्त हो जायगा। राज्य को छोड़ छाड़ कर हम लोग फिर वही हल चलाना सीखेंगे। महाराज! परन्तु हमसे आपसे युद्ध न होगा।"

यशवन्तसिंह ने आँख उठाकर धीरे धीरे कहा—"प्रधान-दूत! तुम्हारी कथन-प्रणाली बड़ी रोचक है, किन्तु मैं दिल्ली-श्वर के अधीन हूँ। महाराष्ट्रों से युद्ध करूँगा, ऐसा कह-कर वहाँ से चला हूँ। अतएव उनसे युद्ध करूँगा।"

महादेव—"फिर, इस प्रकार तो शत शत स्वधर्मियों का नाश होगा। हिन्दू हिन्दुओं के सिर काटेंगे। ब्राह्मण ब्राह्मणों के हृदय में तलवार भोंकेंगे और क्षत्रिय क्षत्रियों के शरीर से रक्तपात करके म्लेछों की विजय-कीर्ति विस्तारित करेंगे!"

यशवन्तसिंह का मुखमण्डल आरक्त होगया, किन्तु उद्वेग को रोक कर उसने कर्कश शब्दों में कहा, "केवल दिल्लीश्वर की जय के हेतु युद्ध नहीं। मैं तुम्हारे महाराज से किस प्रकार मित्रता करूँ? शिवाजी विद्रोहाचारी हैं। वे जिस विषय को आज स्वीकार करते हैं कल ही उसको भङ्ग कर देते हैं।"

इस बार ब्राह्मण के नेत्र प्रज्वलित हो उठे। उसने धीरे धीरे कहा—"महाराज! सावधान, अलीकनिन्दा आपको शोभा नहीं देती। शिवाजी कब हिन्दुओं के साथ वाक्यदान करके पलट गया? उसने कब क्षत्रियों के सम्मुख प्रण करके उसको भुला दिया? उसने कब ब्राह्मणों से शपथ खाकर उसका प्रतिपालन नहीं किया? देश में सैकड़ों गाँव हैं और वहाँ हज़ारों देवालय हैं, आप अनुसन्धान करके देख लें, शिवाजी सत्यपालन करता है अथवा नहीं। वह ब्राह्मण को आश्रय देता है अथवा नहीं। गोवत्सादि की रक्षा में वह तत्पर है कि नहीं और क्या वह देव-देवियों की पूजा देने में पराङ्मुख तो नहीं है? फिर मुसलमानों के साथ युद्ध क्यों? जेता और विजितों में परस्पर का प्रेम किस देश में है? क्या सिंह अपने वज्र-तुल्य नखों से साँप पर आक्रमण करके उसे यदि मृतवत् समझ छोड़ दे तो सर्प को अवसर मिलने पर उसे डँस लेना विद्रोहाचरण है? कदापि नहीं। यह तो स्वाभाविक

रीति है। यदि कुत्ता खरगोश को पकड़ना चाहे और वह जीवित रक्षा के लिए इधर-उधर भाँति भाँति की चतुरता करके भागने में समर्थ हो जाय तो क्या खरगोश अराजक है? कदापि नहीं। यह आत्मगौरव और आत्मरक्षा मात्र है। जिस जगदीश्वर ने प्राणिमात्र को आत्मरक्षा की शिक्षा दी है क्या उससे मनुष्य वञ्चित किया जा सकता है? हमारे निकट प्राणों का प्राणेश्वर जीवनाधार तो स्वाधीनता ही है। जिसको मुसलमानों ने सैकड़ों वर्षों के प्रयत्न से नष्ट किया है उसे हम क्या सहन कर सकते हैं? आप हिन्दुओं के जीवन की रक्षावाले केवल एक मात्र उपाय की निन्दा न करें, विशेषतः शिवाजी की निन्दा न करें"—यह कह महादेव के ज्वलन्त नयनों में आँसू भर आये।

ब्राह्मण के नेत्रों में जल भरा हुआ देखकर यशवन्तसिंह के हृदय में वेदना हो उठी। उन्होंने कहा, "दूतप्रवर! यदि मेरे कुछ वाक्य कटु निकल गये हों कि जिससे आपको कष्ट हुआ हो तो कृपया क्षमा कीजिए। हमारे कहने का भी तात्पर्य्य यही है कि राजपूतगण भी स्वाधीनता की अभिलाषा रखते हुए रण के सिवाय और कुछ नहीं जानते। महाराष्ट्रीयगण भी उसी पथ का अवलम्बन करके सम्मुख रणक्षेत्र में जयलाभ कर
।"

महादेव—"महाराज! राजपूतों में पुरातन स्वाधीनता है। वे बहुत धन रखते हैं। उनके पास दुर्गम पर्वतों और मरुस्थलों की कमी नहीं है। राजधानी भी उनकी सुन्दर और सुदृढ़ है। उनमें सहस्त्रों वर्ष की अपूर्व रणचातुरी है, परन्तु महाराष्ट्रीयों में इनमें से क्या है? ये तो दरिद्र और चिरपराधीनस्थ हैं। इनके निकट तो यह पहली ही रणशिक्षा

है। आपका देश आक्रमण करने पर पुरातन रीति के अनुसार युद्ध करता है और स्मरणीय पुरातन दुर्द्धर तेज व विक्रम का प्रकाश करता है। असंख्य राजपूतसैनिक दिल्लीश्वर की सेना को सामने से परे भगा देते हैं। परन्तु हमारे देश पर आक्रमण होने पर हम क्या कर सकते हैं? न तो हमारी पूर्वरीति की रणशिक्षा है, और न सैनिकों की अधिकता है। जो कुछ भी महाराष्ट्रीय सैन्य है उसने युद्ध कभी देखा ही नहीं, फिर उनमें युद्ध का अनुभव कहाँ से हो? परन्तु दिल्ली की सेना, काबुल, पञ्जाब, अयोध्या, बिहार, मालवा, वीरप्रसविनी राजस्थान भूमि इत्यादि सहस्रों स्थानों के पुरातन रणदर्शी योद्धाओं से अनुभव प्राप्त कर चुकी है। उसके सम्मुख दरिद्र महाराष्ट्र सैन्य क्या कर सकती है? न तो हमारे पास असंख्य सेना है और न अश्वारोहियों की अधिकता है। फिर हम उनके भेजे हुए, धनुष-बाण, शतघ्नी, बारूद-गोले, रुपयों और अशर्फियों की तुलना में है ही क्या? जब हमारे पास वैसे हाथी घोड़े इत्यादि कुछ भी नहीं हैं तब पृथ्वीनाथ! जीवन के प्रारम्भ में दरिद्र जाति ऐसे आचरण के अतिरिक्त और कर ही क्या सकती है। जगदीश्वर! आप कृपा करें, महाराष्ट्रीय जाति दीर्घजीवित हो। जब वह दो तीन सौ वर्षों के पश्चात् अपनी रणकुशलता और असाधारण योग्यता का प्रकाश करेंगे तब इन दिनों के दुःखों का प्रतिफल होगा।"

यह समस्त वार्तालाप सुनकर यशवन्तसिंह चिन्तायुक्त होगये। हाथों पर सिर टेककर कुछ विचारने लगे। महादेव ने देखा कि, मेरे शब्द नितान्त निष्फल नहीं गये हैं, इसलिए धीरे धीरे वह फिर कहने लगा—"आप हिन्दुओं में

श्रेष्ठ हैं। क्या हिन्दू-गौरव साधन में आपको सन्देह होना चाहिए? हिन्दू-धर्म की जय-प्राप्ति के लिए अवश्य आप इच्छा करते हैं। शिवाजी की भी आकांक्षा कुछ दूसरी नहीं है। मुसलमानों के शासन का ध्वंस, स्थान स्थान पर देवालय स्थापन, हिन्दू-शास्त्रों की आलोचना, ब्राह्मणों को आश्रय-दान, और गौवत्सादि की रक्षा करना ही हिन्दू-जाति का गौरव-साधन है। यदि इन विषयों में आप शिवाजी को सहायता देने से विमुख हैं तो अपने ही हाथों से इन कार्य्यों का सम्पादन कीजिए। आप इस देश का राजत्व स्वीकार कीजिए, मुसलमानों को परास्त कर डालिए और हिन्दू-स्वाधीनता पुनः स्थापित कीजिए। आप अङ्गीकार करें तो अभी दुर्गद्वार खोल दिये जायँ। प्रजा कर देगी और शिवाजी की अपेक्षा आपको वह सहस्रगुण बलवान्, दूरदर्शी और उपयुक्त समझेगी और शिवाजी भी सन्तुष्ट चित्त से आपका एक सैनिक बन कर मुसलमानों के ध्वंस-साधन में दत्तचित्त होगा।"

इन प्रस्तावों को सुनकर उच्चाभिलाषी यशवन्तसिंह के नयन आनन्द से परिपूर्ण होगये। अनेक क्षण चिन्ता करने के पश्चात् उसने धीरे से कहा—"परन्तु मारवाड़ और महाराष्ट्र पास पास नहीं हैं इसलिए इनका एक राजा के अधीन होना असम्भव प्रतीत होता है।"

महादेव—"फिर आप अपने सुयोग्य पुत्र के अधीन यह राज्य कर दीजिए अथवा अपने किसी अन्य आत्मीय को सौंप दीजिए। शिवाजी क्षत्रिय राजा के अधीन कार्य्य कर सकते हैं परन्तु किसी क्षत्रिय से कदापि युद्ध न करेंगे।"

यशवन्तसिंह—"इस विपद्काल के अवसर पर कोई ऐसा आत्मीय नहीं दीख पड़ता जो औरङ्गज़ेब से लड़कर देश की रक्षा कर सके।"

महादेव—"फिर किसी क्षत्रिय सेनापति को ही नियुक्त कीजिए। हिन्दूधर्म और स्वाधीनता की रक्षा होते हुए शिवाजी की मनोकामना पूर्ण होगी और वह सानन्द-चित्त राज्य परित्याग करके संन्यास ग्रहण कर लेंगे।"

यशवन्तसिंह—"इस प्रकार का कोई सेनापति भी नहीं है।

महादेव—"फिर जो ऐसे महान् कार्य्य का सम्पादन कर रहा है उसे आप मदद दें। आपकी मदद और आशीर्वाद से शिवाजी अवश्य ही स्वदेश और स्वधर्म के गौरव-साधन में कृतकार्य्य होगा। क्षत्रियराज! क्षत्रिय योद्धा को सहायता दीजिए। भूमण्डल में ऐसा कोई हिन्दू नहीं, आकाश में ऐसा कोई देवता नहीं जो आपकी प्रशंसा न करता हो।"

यशवन्तसिंह—"द्विजवर, तुम्हारी तर्कना अलंघनीय है परन्तु दिल्लीश्वर मुझसे स्नेह रखता है, और यही कारण है कि उसने मुझे इस कार्य्य के साधन में नियुक्त किया है फिर उसके साथ विश्वासघात कैसे करूँ? क्या यह भद्रोचित है?"

महादेव—"जिस दिल्लीश्वर ने हिन्दूगण का नाम काफ़िर रख छोड़ा है और जज़िया जारी किया है क्या उसके ये कार्य भद्रोचित हैं? देश देश में जो वह हिन्दू-मन्दिरों और देवालयों का अपमान करता है, क्या यह भद्रोचित है? काशी जैसी पवित्र नगरी में विश्वनाथ के मन्दिर को भग्न करके उसके पलस्तर से मस्जिद बनवाना क्या भद्रोचित है?"

क्रोध और कम्पित स्वर से यशवन्तसिंह कहने लगे "द्विजश्रेष्ठ अब और मत कहिए। आज से शिवाजी हमारे मित्र हैं। हम शिवाजी के मित्र हुए। इस समय हमारा प्रण शिवाजी के प्रण के सदृश है। हमारी और उनकी चेष्टा अभिन्न नहीं। इस समय तक हिन्दू-विरोधी दिल्लीश्वर के विरुद्ध जिसने युद्ध किया है वह महाशय कहाँ हैं? एक वार उन्हें आलिङ्गन करके हृदय के सन्ताप को दूर करूँ?"

ब्राह्मण-वेशधारी दूत ने ब्राह्मण के वेष को परित्याग कर दिया। अब दूत एक हृष्टपुष्ट योद्धा के आकार में दीख पड़ा। कुर्ते के नीचे से छिपा हुआ छुरा दीख पड़ने लगा और महाराष्ट्र वीर धीरे धीरे कहने लगा—"राजन्! छद्म वेष धारण करके आपके पास आने का अपराध मेरा क्षमा कीजिए। यह दास ब्राह्मण नहीं, महाराष्ट्रीय क्षत्रिय है। नाम भी महादेवजी नहीं किन्तु शिवाजी है!

राजा यशवन्तसिंह विस्मय और हर्षोत्फुल्ल लोचन से प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय योद्धा की ओर देखने लगे। हाय! क्या दिल्लीश्वर का प्रतिद्वन्द्वी यही वीर है! फिर कुछ देर के बाद गद्गद हृदय से यशवन्तसिंह ने ख्यातनामा वीर शिवाजी का आलिङ्गन किया।

सारी रात वार्तालाप में व्यतीत हुई। युद्ध की सभी बात निश्चित हुई। इसके पश्चात् शिवाजी वहाँ से बिदा हुए। परन्तु चलते समय शिवाजी ने कहा—"महाराज! अनुग्रह कीजिए। कल पूना से दो चार कोस दूर ही रहने में भला है।"

यशवन्तसिंह—"क्यों, क्या कल तुम पूना को हस्तगत करने की चेष्टा करोगे?"

महाराष्ट्रीय योद्धा ने हँस कर कहा—"नहीं, एक विवाह के कार्य्य का सम्पादन करना है। आपके रहते हुए कुछ व्याघात हो जाने की सम्भावना है।"

यशवन्तसिंह—अच्छा, दूर ही रहूँगा। विवाह-कार्य्य के मंत्रादि क्या न्यायशास्त्री महाशय को इस समय स्मरण हैं?

शिवाजी—याद है क्या! मेरी शास्त्रविद्या देखकर दिल्ली का सेनापति शाइस्ताखाँ विस्मित होगया था। कल तो विदा होना भी भले प्रकार से जान लेंगे।

विदा करते समय राजा यशवन्तसिंह न्यायशास्त्री को दरवाज़े तक पहुँचाने चले आये और फिर विदा करते समय कहा—"युद्ध के विषय में जैसा वार्तालाप हुआ, कार्य्य करते समय उसी का अनुसरण कीजिएगा।"

शिवाजी—हाँ, उसी प्रकार अपने स्वामी शिवाजी से निवेदन करूँगा।

यशवन्तसिंह—हाँ, मैं भूल गया था। 'उसी प्रकार कार्य्य करने का अपने प्रभु से अनुमोदन कीजिएगा'—इतना कह कर हँसते हँसते यशवन्तसिंह दुर्ग में चले गये।

आठवाँ परिच्छेद

शिवाजी

वीर समर जिन पीठ न दीना। सिंह-पुरुष असि-कला प्रवीना।
सुघट शरीर भानु मुख जासू। अरिन तुरुक निरखत सह त्रासू॥
सोई शिवराज हिन्द सिरताजू। थाप्यों निजकर धर्म समाजू॥

देवल गिरावते फिरावते निशान अली,
ऐसे डूबे राव राने सबे आप लव की।
गौरा गणपति आप और न को देत ताप,
आपके मकान सब मारिगए देवकी॥
पीर और पैगम्बर ना दिखाई देत,
सिद्ध की सिधाई गई रही बात रब की।
काशी ते कला जाती मथुरा मसीद होती,
शिवा जी न होते तो सुनति होती सब की॥

—भूषण।

पूर्व की दिशा में रक्तिम छटा शोभित हो रही है इसी समय ब्राह्मण-वेषधारी शिवाजी ने सिंहगढ़ में प्रवेश किया। छद्म के वस्त्रों को परे फेंक दिया। प्रातःकाल के सूर्य्य की किरणों के पड़ने से शिवाजी का शरीर चमकने लगा। वक्षःस्थल में तीक्ष्ण छुरी थी, भवानी नामक प्रसिद्ध तलवार भी बग़ल में पड़ी थी। वक्षःस्थल विशाल, शरीर की पेशियाँ दृढ़ और सुबद्ध झलक रही थीं। पेशवा मूरेश्वर त्रिमूल ने शिवाजी को देखते ही आनन्द में मग्न

होकर कहा—भवानी [illegible] जय हो ! आप इतनी देर [illegible] बाद सकुशल तो लौटे।

शिवाजी—भला आपके पुण्यप्रताप से किस विपद् से उद्धार न होगा ?

मूरेश्वर—सब ठीक होगया ?

शिवाजी—हाँ; सब।

मूरेश्वर—आज ही रात को विवाह है न ?

शिवाजी—हाँ आज ही।

मूरेश्वर—शाइस्ताख़ाँ ने कुछ जान तो नहीं लिया ? तीक्ष्णबुद्धि चाँदख़ाँ कुछ समझा तो नहीं !

शिवाजी—शाइस्ताख़ाँ; भयभीत शिवाजी से सन्धि करने की प्रतीक्षा कर रहा था।

योद्धा चाँदख़ाँ चिरनिद्रा-निद्रित है। अब वह और लड़ाई नहीं कर सकता।

मूरेश्वर—राजा यशवंतसिंह ?

शिवाजी—आपने जिन युक्तियों को मुझे बताया था उन्हीं युक्तियों से यशवतसिंह विचलित होगये। मैंने जाकर देखा तो वे वास्तव में किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे। सुतराम् अनायास ही हमारा कार्य्य सिद्ध होगा।

मूरेश्वर—भवानी की जय हो। आपने एक ही रात में अकेले जितने कार्य्य-साधन किये वह सहस्रों से असाध्य थे। जब मैं इन असीम साहसी कार्य्यों पर ध्यान देता हूँ तब हृदय काँप जाता है। प्रभो ! यह दुस्साध्य कार्य्य औरों के मान का नहीं था।

शिवाजी—मूरेश्वर ! विपदों से यदि अब तक भय करता तो वही साधारण जागीरदार बना रहता। विपद् में भय करने

से यह महत्कार्य्य किस प्रकार सिद्ध होगा? चिरजीवन विपदाच्छन्न है, परन्तु करना वही है जिसमें महाराष्ट्र-देश स्वाधीन हो जाय।

मूरेश्वर—वीरश्रेष्ठ! आपका जय अनिवार्य्य है। स्वयं भवानी आपकी सहायता करेंगी, परन्तु आधी रात के समय शत्रु के शिविर में अकेले छद्मवेशधारण करना।

शिवाजी—यह तो शिवाजी का अभ्यस्त कार्य्य है। परन्तु वास्तव में आज एक बड़े विपद् में फँस गया था।

मूरेश्वर—किसमें?

शिवाजी—भला ऐसे मूर्ख को आपने संस्कृत के श्लोक सिखा दिये थे। फिर जो कि अपना नाम तक लिखना नहीं जानता उसे संस्कृत के श्लोक कब स्मरण रह सकते हैं?

मूरेश्वर—क्यों, क्या हुआ?

शिवाजी—और कुछ नहीं, शाइश्ताखाँ की सभा में न्याय-शास्त्री महाशय प्रायः समस्त श्लोक भूल गये थे।

शिवाजी—परन्तु दो एक याद थे। उन्हीं से कार्य्य सिद्ध

शिवाजी के साथ हमारा यह प्रथम परिचय है। इसलिए यहाँ हम उनका कुछ हाल लिखना चाहते हैं। इतिहासज्ञ पाठकगण यदि चाहें तो उसे छोड़ सकते हैं।

शिवाजी ने सन् १६२७ ई० में जन्म लिया था। इस आख्यायिका के समय उनकी अवस्था ३६ वर्ष की थी। उनके पिता का नाम शाहजी और पितामह का मालोजी था। हम पहले ही परिच्छेद में फुलतन देश के देशमुख प्रसिद्ध निम्बालकर वंश की कथा कह आये हैं। उसी वंश के योगपाल नायक की वहिन दीपाबाई से मल्लजी का विवाह

हुआ था। बहुत दिनों तक मल्लजी के कोई सन्तान नहीं हुई। अहमदनगर-निवासी शाह शरीफ़ नामक एक मुसलमान फ़क़ीर से मल्लजी की बड़ी मैत्री थी। शाह साहिब ने भी अपने मित्र के सुखसाधन-हेतु ईश्वर से वन्दना की। कुछ दिनों बाद भगवान् की कृपा से दीपाबाई के गर्भ से एक लड़का उत्पन्न हुआ और उस लड़के का नाम मल्लजी ने शाहजी रक्खा।

यादवराव अहमदनगर के एक प्रसिद्ध सेनापति थे। यादवराव १० हज़ार सवारों के नायक और एक बड़ी जागीर के स्वामी थे। सन् १५९९ ई० में होली के दिन मल्लजी अपने पुत्र शाहजी को लेकर यादवराव के यहाँ गये थे। उस समय शाहजी ५ वर्ष के थे और यादवराव की कन्या जीजीबाई भी तीन अथवा चार ही वर्ष की थी। यही कारण है कि शाहजी और जीजीबाई कुछ बालक्रीड़ा करने लगे। इसे देखकर यादवराव ने मज़ाक के तौर पर अपनी कन्या जीजीबाई को सम्बोधन करके कहा, "क्या तू इस बालक से विवाह किया चाहती है?" फिर दूसरों को सम्बोधन करके कहा; "भाई! देखो तो क्या मनोहर जोड़ी है!" उसी समय शाहजी और जीजीबाई ने परस्पर फाग खेल कर लोगों को हँसा दिया, किन्तु मल्लजी ने जल्दी से खड़े होकर कहा, "बन्धुगण! साक्षी रहिए, हम और यादवराव सम्बन्धी होना चाहते हैं।" सबों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। यादवराव उच्चवंशज थे। इसलिए उन्होंने अपनी कन्या का विवाह मल्लजी के घर में करने का कभी विचार भी नहीं किया परन्तु मल्लजी की इस चतुरता को देख कर वह विस्मित होगये।

दूसरे दिन यादवराव ने मल्लजी को निमन्त्रण किया, परन्तु मल्लजी ने कहला भेजा कि "जब तक विवाह का विषय स्थिर न हो जाय, हम तुम्हारे यहाँ भोजन नहीं कर सकते।" परन्तु इस प्रस्ताव को यादवराव ने स्वीकार नहीं किया। मल्लजी निमन्त्रण में नहीं आये। यादवराव की स्त्री अपने पति से भी बढ़कर वंशमर्य्यादा की अभिमानिनी थी। एक दिन यादवराव ने हँसी हँसी में यह कह दिया कि शाहजी से मैं जीजीबाई का विवाह करना चाहता हूँ। इस विषय पर उनकी स्त्री ने बड़ा क्रोध किया और दो चार खरी भी सुना दीं। मल्लजी इन बातों से रुष्ट होकर एक गाँव में चले गये और वहाँ जाकर उन्होंने प्रकट किया कि भवानी ने स्वयं प्रकट होकर हमको बहुत सा धन प्रदान किया है। महाराष्ट्र-देश में अभी तक यह बात प्रसिद्ध है कि भवानी ने मल्लजी से कहा था कि "तुम्हारे वंश में एक ऐसा पुत्र होगा जो शिवजी की भाँति प्रभावशाली और शत्रुओं के दलन करने में बड़ा वीर होगा। वह महाराजा होकर महाराष्ट्र-देश में पुनः स्वराज्य स्थापित करेगा एवं ब्राह्मणों और देवालयों का पुनरुद्धार करने में फलीभूत होगा। उसके वंश में २७ पीढ़ियों तक लोग राज्य करेंगे और वह अपने नाम का संवत् जारी करेगा।"

सो वास्तव में वही हुआ। मल्लजी ने विपुल अर्थ पाकर अपने को कृतकार्य समझा और उसी धन की बदौलत आत्मोन्नति की चेष्टा करने लगे। इस महान् कार्य के साधन में उनके साले भोगपाल ने बड़ी सहायता की। इस प्रकार मल्लजी अहमदनगर के मुसलमान राजा की अधीनता में पाँच हज़ार सवारों के सेनापति बन गये और राजा

की उपाधि से विभूषित किये गये। कुछ दिनों के बाद सुवर्णा और चाकनदुर्ग तथा उसके आस पास के प्रदेश के मालिक भी होगये। पूना और सोपा नगर उन्हें जागीर के उपलक्ष में मिले। अब यादवराव को कोई भी भय नहीं रहा इससे सन् १६०४ ई० में बड़े समारोह से शाहजी का जीजीबाई के साथ विवाह होगया।

इस विवाहोत्सव में अहमदनगर के मुसलमान शासक स्वयं उपस्थित थे। इस समय शाहजी की अवस्था केवल १० वर्ष की थी। संसार के नियमानुसार मल्लजी की मृत्यु के पश्चात् शाहजी को पैतृक जागीर और पद प्राप्त हुआ।

इस समय दिल्लीश्वर अकबरशाह, अहमदनगर के राज्य को दिल्ली के अधीन करने के लिए, युद्ध कर रहा था और बहुत कुछ विजय भी प्राप्त कर चुका था, परन्तु इसी बीच में उसकी मृत्यु होगई। फिर भी जहाँगीर ने लड़ाई को जारी रक्खा। इस युद्धकाल में शाहजी सोये हुए नहीं थे। सन् १६२० ई० में अहमदनगर के प्रधान सेनापति मलिक अम्बर के अधीन शाहजी ने बड़ा नाम पैदा किया और इस महायुद्ध में वह अपने बल-विक्रम का प्रकाश करके सबके सम्मान-भाजन बन गये। जहाँगीर की मृत्यु के पश्चात् सम्राट् शाहजहाँ ने शाहजी को पाँच हज़ार सवारों का सेनापति करके बहुत कुछ जागीरें प्रदान कीं। परन्तु यह अनुग्रह चिरस्थायी नहीं था। तीन ही वर्षों के पश्चात् शाहजहाँ ने बहुत सी जागीरें निकाल लीं। अब शाहजी ने विस्मित होकर मुग़लों का साथ छोड़ दिया और अहमदनगर के मुसलमानों के पक्ष में हो गये और आजन्म उन्हीं की ओर से कार्य्य करते रहे।

दिन दिन पतन की ओर बढ़ते हुए अहमदनगर-राज्य की स्वाधीनता के लिए भी शाहजी ने दिल्ली की सेना के साथ लड़ाई की। सुलतान शत्रु के हाथों मारा गया परन्तु शाहजी ने उसी वंश के एक दूसरे व्यक्ति को सुलतान बनाकर सिंहासनारूढ़ कराया और अनेक विज्ञ ब्राह्मणों-द्वारा देश के शासन का सुदृढ़ प्रबन्ध किया। सुलतान की ओर से बहुत से दुर्गों को विजय किया और मुसलमानों के नाम के लिए बहुत बड़ी सेना इकट्ठी करने लगे।

शाहजहाँ ने इन समस्त कार्रवाइयों को देख कर बड़ा क्रोध किया और शाहजी के तथा उनके प्रभु के दमनार्थ बहुत सी फ़ौजें रवाना कीं। दिल्लीश्वर के सम्मुख युद्ध करना सुलतान अथवा शाहजी के वित्त के बाहर था। कई वर्षों के पश्चात् परस्पर सन्धि स्थापित हुई और अहमदनगर के राज्य का दीपक बुझ गया (सन् १६३१ ई०) शाहजी विजयपुर के अधीन भी जागीरदार व सेनापति थे। सुलतान के आदेशानुसार उन्होंने कर्नाटक देश के अनेक भागों को जय किया। विजयपुर के उत्तर, पूना के निकट, जिस प्रकार जागीर थी उसी प्रकार कर्नाटक-देश के दक्षिण ओर भी शाहजी ने बहुत सी जागीरें प्राप्त कीं।

जीजीबाई के गर्भ से शम्भुजी और शिवाजी दो पुत्र हुए। लिखा हुआ तो ऐसा है कि जीजीबाई के पिता के पुरुषागण देवगढ़ के हिन्दूराज्यवंश से थे। यदि यह बात सच्ची है, तो इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि शिवाजी उसी पुरातन राज-वंशोद्भूत हैं। सन् १६३० ई० में शाहजी ने टुकाबाई नाम्नी एक और कन्या का पाणिग्रहण किया। अभिमानिनी जीजीबाई को शाहजी के इस कार्य्य से बड़ा क्रोध हुआ, इसलिए उन्होंने

शाहजी का संसर्ग छोड़ दिया और अपने पुत्र शिवाजी को साथ लेकर पूना की जागीर में आकर रहने लगीं। शाहजी टुकाबाई को लेकर कर्नाटक की जागीर में रहने लगे और वहाँ टुकाबाई के गर्भ से वेङ्काजी नामक एक पुत्र हुआ।

दो ब्राह्मण शाहजी के बड़े विश्वस्त मन्त्री और कर्मचारी थे। उनमें दादाजी कोंड़देव खास करके पूना की जागीर और जीजीबाई के शिशु शिवाजी का रक्षणावेक्षण करते थे

सन् १६२७ ई० में, सुवर्णी दुर्ग में, शिवाजी का जन्म हुआ था। यह स्थान पूना से लगभग २५ कोस उत्तर की ओर है। शिवाजी की अवस्था जब ३ वर्ष की थी, तब शाहजी ने टुकाबाई के साथ विवाह किया था। जीजीबाई के साथ ही शिवाजी भी अपने बाप से अलग हुए। जीजीबाई अपने पुत्र के साथ दादाजी कोंड़देव की देखरेख में पूना के दुर्ग में रहने लगीं। शिवाजी के रहने के लिए दादाजी ने पूना नगर में एक विशाल भवन निर्माण कराया था। हमारे पाठकगण शाइस्ताखाँ को उसी भवन में देख चुके हैं।

माता-पुत्र उसी स्थान में रहने लगे। लड़कपन ही से शिवाजी, दादाजी से शिक्षा ग्रहण करने लगे। परन्तु लिखने-पढ़ने के नाम से भागते थे। यहाँ तक कि उन्होंने अपना नाम लिखना भी नहीं सीखा, किन्तु बचपन से ही तीर-कमान चलाने, बर्छी फेंकने, भाँति भाँति के खड्ग और छुरियों के चलाने; और अश्वारोहण में विशेष क्षमता प्राप्त की। वैसे तो सभी महाराष्ट्रगण घोड़े की सवारी करने में बड़े निपुण होते हैं, परन्तु शिवाजी ने जो सुख्याति लाभ की वह औरों को प्राप्त करना ज़रा कठिन है। इस प्रकार व्यायाम

और युद्धशिक्षा के कारण बालक शिवाजी का शरीर शीघ्र ही सुदृढ़ और बलिष्ठ हो गया।

किन्तु केवल अस्त्र-विद्या ही में शिवाजी अपना समय नहीं बिताते थे। जब कभी अवसर मिलता था तब वे दादाजी के पैताने बैठकर महाभारत और अन्यान्य पुस्तकों के महान् पुरुषों और वीरों के उद्योगों को भी सुना करते थे। यही कारण है कि बालक का हृदय साहसी होगया और उसने अपने जी में स्थिर कर लिया कि हिन्दू-धर्म को फिर से स्थापित करूँगा। यही कारण है कि उसने मुसलमानों से द्वेष करना निश्चय कर लिया था। शिवाजी ने शीघ्र ही शास्त्रानुसार सब क्रिया-कर्म सीख लिये। कथा-श्रवण करने की उन्हें ऐसी इच्छा रहती थी कि जब कुछ काल के पीछे उन्होंने राज्य और प्रतिष्ठा प्राप्त की तब भी जहाँ कहीं कथा होती, वह बहुत कष्ट और विपद् सहन कर भी वहाँ जाने की चेष्टा करते थे।

इस प्रकार दादाजी के प्रयत्न से शिवाजी अल्पकाल ही में स्वधर्मानुरक्त और मुसलमानों के अतिशय विद्वेषी हो गये। वह केवल सोलह वर्ष की ही अवस्था में स्वाधीन होने के लिए तरह तरह के उपाय सोचने लगे। अपने समान उत्साही लड़कों से मित्रता करने लगे, और उन्हें चारों ओर से एकत्रित करने लगे। पहाड़ों से घिरे हुए कोङ्कणदेश में उन्हीं साथियों के साथ बराबर आने जाने लगे। वे यह भी विचारने लगे कि इन पहाड़ों को कैसे पार करना चाहिए, कहाँ से होकर रास्ता गया है, किस रास्ते पर कौन दुर्ग है, कौन कौन से दुर्ग अतिशय दुर्गम हैं, किस प्रकार दुर्गों पर आक्रमण किया जाता है और किस प्रकार उनकी रक्षा

की जाती है। ज्यों ज्यों बालक की अवस्था बढ़ती गई, वह इन विचारों में अतिवाहित होता गया। कभी कभी शिवाजी यों ही उन दुर्गों पर जाकर उनका निरीक्षण किया करता। अन्त में उसने निश्चय किया कि किसी प्रकार एक दो दुर्गों को हस्तगत करना ही चाहिए।

बालक की इन चेष्टाओं को सुनकर वृद्ध दादाजी को भय होने लगा और उन्होंने अनेक प्रबोध-वाक्यों-द्वारा शिवाजी को समझाना प्रारम्भ किया। दादाजी के इस प्रकार समझाने का अभिप्राय यह था कि जिसमें जागीर भले प्रकार रक्षित रहे, परन्तु शिवाजी के हृदय में वीरत्व का बीज अंकुरित होगया था; इसलिए इस समझाने-बुझाने का कुछ भी फल न निकला। शिवाजी यद्यपि दादाजी को पिता के समान जानते थे, तथापि जिस पथ के वे पथिक थे उसे परित्याग करना उन्होंने उचित न समझा।

मावली जाति की कष्ट-सहिष्णुता और विश्वास-योग्यता से शिवाजी बड़ा आह्लादित होगया था और उनमें से यशाजी कंक, तानाजी मालश्री और बाजी फसलकर उसके परम मित्र और अग्रगण्य होगये थे। अन्त में इन्हीं की सहायता से (सन् १६४६ ई० में) किसी प्रकार तोरण दुर्ग के किलेदार को अपने वश में करके शिवाजी ने उस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रथम विजय के समय शिवाजी का वयःक्रम केवल १६ वर्ष का था। अगले वर्ष शिवाजी ने इस क़िले के डेढ़ कोस दक्षिण-पूर्व, तुङ्गगिरि-शृङ्ग के ऊपर, राजगढ़ नामक एक कोट बनवाया।

विजयपुर के सुलतान ने जब इन समाचारों को सुना तब उसने शिवाजी के पिता शाहजी को बुला कर उनका

तिरस्कार किया और इन तमाम उपद्रवों का कारण पूछने के लिए उन्हें शिवाजी के पास भेजा। विजयपुर के विश्वस्त कर्मचारी शाहजी को इन बातों की कुछ भी खबर न थी इसलिए उन्होंने दादाजी से इसका कारण पूछा। दादाजी कोंड़देव ने शिवाजी को फिर बुलाकर समझाया कि इन आचरणों का परित्याग कर दो नहीं तो इनसे सर्वनाश हो जायगा। उन्होंने यह भी समझाया कि "तुम्हारे पिता ने विजयपुर के अधीन रह कर किस प्रकार से जय लाभ किया है, कितनी जागीरें और ख्याति प्राप्त की है।" शिवाजी ने पितृ-सदृश दादाजी से और कुछ न कहकर केवल मिष्ट वाक्य-द्वारा उत्तर दिया, परन्तु अपने संकल्प से विमुख नहीं हुए। इसके कुछ ही दिनों बाद दादाजी का परलोक-गमन हुआ। मृत्यु होने के पहले ही दादाजी ने शिवाजी को एक बार और बुला भेजा था। शिवाजी यह समझ कर कि बस एक बार और डाँट फटकार सुनेंगे, उनके पास चले आये परन्तु अब की बार उनके वाक्यों को सुन कर शिवाजी को विस्मित होना पड़ा। मृत्युशय्या पर पड़े हुए दादाजी ने एक बार फिर अपने विद्याभण्डार के द्वार को शिवाजी के प्रति खोल दिया और प्रेमपूर्वक उनको उपदेश करने लगे—"वत्स! तुम जिस चेष्टा के उपासक हो उससे बड़ी चेष्टा अन्य कोई नहीं है। इस उन्नत-पथ का अनुसरण करके देश की रक्षा करो। ब्राह्मण, गोवत्सादि एवं कृषक-गणों की रक्षा में तत्पर हो जाओ। देवालयों के कलुषित-कारियों को उचित दण्ड दो। ईशानी ने तुम्हें जिस स्वराज्य-स्थापन की आज्ञा दी है उसमें तुम तत्पर हो जाओ"। इन शब्दों को सुनाकर वृद्ध चिरनिद्रा से निद्रित होगया।

चढ़ाई की और उसने बड़े गर्व से प्रकट किया कि बहुत जल्दी शिवाजी को पकड़ कर उसे बेड़ियों से जकड़ दूँगा और सुलतान के पायेतख़्त के सामने पेश करूँगा।

इतनी बड़ी सेना से लड़ाई करना शिवाजी ने ठीक नहीं समझा और सन्धि करने के लिए प्रस्तुत होगये। अफ़ज़लखाँ ने गोपीनाथ नामक एक ब्राह्मण को शिवाजी के पास भेजा। प्रतापगढ़ क़िले में भरी सभा के बीच शिवाजी गोपीनाथ से मिले, परस्पर बहुत सी बातें हुईं, पश्चात् रात बिताने के लिए शिवाजी ने उन्हें एक मकान में ठहरा दिया।

रात के समय शिवाजी गोपीनाथ से मिलने आये। बातचीत करने में शिवाजी बड़े निपुण थे। उन्होंने गोपीनाथ को समझाने-बुझाने के लिए इस प्रकार कहा, "आप ब्राह्मण हैं, हमारे श्रेष्ठ हैं, परन्तु हमारी बातों को भी ज़रा सुन लीजिए। हम जो कुछ करते हैं वह समस्त हिन्दू-जाति के हित के लिए करते हैं, स्वयं भवानी ने हमको ब्राह्मण, गोवत्सादि की रक्षा के लिए उत्तेजित किया है, हिन्दू-देवालयों के निग्रहकारियों को दण्ड देने के लिए आज्ञा दी है, और हिन्दू-धर्म के शत्रुओं के साथ विरुद्धाचरण करने के लिए आदेश किया है। आप ब्राह्मण हैं, भवानी की आज्ञाओं का समर्थन कीजिए और अपने जातीय, स्वधर्मी राज्य में रह कर स्वच्छन्द होकर विचरण कीजिए।"

गोपीनाथ ने इस कथनोपकथन से तुष्ट होकर शिवाजी को सहायता देना स्वीकार कर लिया। कार्य्य सिद्ध होने के लिए यह निश्चय होगया कि अफ़ज़लखाँ को किसी न किसी जगह शिवाजी से अवश्य मिल जाना चाहिए।

कई दिनों के बाद प्रतापगढ़ दुर्ग के निकट मुलाक़ात हो गई। अफ़ज़लखाँ ने १,५०० सवारों को क़िले के पास खड़ा

कर दिया, और खुद पीनस में चढ़ कर केवल एक नौकर के साथ शिवाजी से मिलने चला आया। शिवाजी उस दिन बड़ी पूजा और अर्चना के पश्चात निश्चित घर में अफ़ज़लखाँ से मिलने आया। चलते समय स्नेहमयी माता के चरणों पर सिर रखकर शिवाजी ने आशीर्वाद प्राप्त कर लिया था। कुर्ती और मिर्ज़ई पहन ली और उसके नीचे तीक्ष्ण बघनखा भी छिपा लिया। कुछ देर के बाद शिवाजी किले से बाहर हुए और अपने बाल्यकाल के मित्र तानाजी मालश्री को साथ लेकर अफ़ज़लखाँ से मिलने चले। सहसा आलिंगन के बहाने तेज़ बघनखे द्वारा मुसलमान सरदार अफ़ज़ल को ज़मीन पर गिरा दिया। तत्पश्चात् शिवाजी की सेना ने अफ़ज़लखाँ की सेना को मार भगाया और बहुत से क़िलों को शिवाजी ने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। शिवाजी की फ़ौज विजयपुर के राज-महलों के सामने तक लूटमार करती चली गई।

विजयपुर के साथ इस प्रकार तीन वर्ष तक और लड़ाई ठनी रही, परन्तु किसी पक्ष को विजयलाभ नहीं हुआ। सन् १६६२ ई० के अन्त में शाहजी ने मध्यस्थ बन कर शिवाजी और विजयपुर में परस्पर सन्धि-स्थापन करा दिया। शाहजी जब शिवाजी को देखने आये थे, उस समय शिवाजी ने पितृ-भक्ति की पराकाष्ठा कर दिखाई थी। अपने घोड़े से उतर कर राजा के तुल्य उनका अभिवादन किया था। पिता के पीनस के साथ साथ पैदल दौड़ते चले आते थे और उनके कहने पर भी उनके सम्मुख आसन पर नहीं बैठ सके। पुत्र के पास कई दिन रह कर शाहजी बड़े आनन्दित हुए और तत्पश्चात् विजयपुर जाकर दोनों में सन्धि करा दी। शिवाजी ने पिता की स्थापित सन्धि के विरुद्ध कभी आचरण नहीं किया, और

उनके जीवनपर्य्यंत फिर विजयपुर से कोई लड़ाई नहीं हुई। परन्तु शाहजी की मृत्यु के पश्चात् जो लड़ाई विजयपुर से हुई उसमें शिवाजी आक्रमणकारी नहीं थे।

सन् १६६२ में यह सन्धि स्थापित हुई थी। पहले ही कह आये हैं कि उसी साल मुग़लों से भी लड़ाई प्रारम्भ होगई थी। अब हमारी आख्यायिका भी उसी समय से प्रारम्भ हो रही है। मुग़लों की लड़ाई के आरम्भकाल में शिवाजी के अधीन समस्त कोङ्कण-देश था और उनके पास ७ हज़ार सवार और ५ हज़ार पैदल सेना थी। शिवाजी उस समय २५ वर्ष के थे।

नवाँ परिच्छेद

शुभकार्य्य-संपादन

"चुप रहता हूँ पर मैं निश्चेष्ट नहीं हूँ।
तलवार की कमी है, बल-वीर्य्य की नहीं॥"

सूर्य्य भगवान् अस्ताचलचूड़ावलम्बी हुए हैं। सिंहगढ़ के दुर्ग के भीतर चुपचाप सेना सज्जित हो रही है। दुर्ग के बाहर के मनुष्य यह नहीं जान सकते कि किले में क्या हो रहा है।

किले के एक ऊँचे टीले पर कई एक बड़े योद्धा खड़े हैं। इस टीले से बड़ा मनोहर दृश्य देखा जाता है। पूर्व की ओर सुन्दर-नीरा नदी बह रही है। उसके तटस्थ जंगली वृक्ष वसंत-ऋतु की कृपा से फूले नहीं समाते। चारों ओर नये खिले हुए पुष्पों और दूर्वादलों की शोभा प्रकाशमान है। उत्तर की ओर विस्तृत भूमि पड़ी है और उसकी हरियाली सूर्य्य की किरणों से सोने के समुद्र सी प्रतीत हो रही है। बहुत लम्बा-चौड़ा बसा हुआ पूना शहर भी अपना गौरव जता रहा है, और योद्धागण प्रायः उसी ओर देख रहे हैं और दिल में यह विचार कर रहे हैं "देखना है कि आज इस शहर के भीतर कौन सी घटना घटित होती है।" दक्षिण की ओर जहाँ तक नज़र उठा कर देखते हैं पहाड़ ही पहाड़ दीख पड़ता है। पहाड़ की चोटियाँ छिपते हुए सूर्य्यभगवान् की किरणों से बड़ी अपूर्व शोभा प्राप्त कर रही हैं। परन्तु हमारा विश्वास है कि

योद्धागण पर्वत के इस मनोहर दृश्य को नहीं देख रहे हैं, किन्तु उन्हें कुछ और ही चिन्ता है।

जिस बड़े साहस अथवा युद्ध की तैयारी हो रही है वह कोई महान् कार्य्य है। जब मनुष्य किसी ऐसे कार्य्य में तत्पर होनेवाला होता है कि कार्य्य-सिद्धि होने पर वह आजन्म स्वच्छन्दता से रहेगा अथवा निहत होने पर उसकी जीवन-आशा समूल नष्ट होने की सम्भावना होती है, तब धैर्य्यवान् मनुष्य का साहस रुक जाता है। आज या तो शाइस्ताखाँ मारा जायगा और मुग़लों की सेना पराजित होकर महाराष्ट्र-देश से निकल भागेगी, अथवा महाराष्ट्र-जीवन-सूर्य्य सर्वदा के लिए अस्त हो जायगा और भारतवर्ष में स्वराज्य की आशा जड़मूल से विनष्ट हो जायगी। इसी प्रकार की चिन्ता से आज शिवाजी भी चिंतित हैं। जब योद्धा योद्धा की ओर देखता है तब उसकी आन्तरिक भावना छिपी नहीं रहती। केवल बीस अथवा पचीस सैनिक लेकर शिवाजी शत्रु की सेना में प्रवेश करेंगे, यह एक भीषण कार्य्य है। इसमें सन्देह है कि इसके पहले शिवाजी ने ऐसा कार्य्य किया हो। किसी योद्धा के मस्तक और ललाट से क्षण भर के लिए भी चिन्ता-मेघ विच्छिन्न नहीं हुआ।

उस वीर मावली सेना के मध्य में दूरदर्शी मोरेश्वर त्रिमूल पेशवा थे। मोरेश्वर ने अल्पवयस ही से शिवाजी के पिता शाहजी की अध्यक्षता में युद्ध का कार्य्य संपादन किया था। उसके पश्चात् शिवाजी के अधीन रह कर प्रतापगढ़ जैसे चमत्कारी दुर्ग को बनवाया और चार ही वर्ष के भीतर भीतर पेशवा का पद प्राप्त कर लिया, तत्पश्चात् अपने पद के कार्य्य-साधन में बड़ी क्षमता प्रकट की। शिवाजी ने जब

अफ़ज़ल को मारा था तब मोरेश्वर ही ने उसकी सेना पर आक्रमण करके उसे मार भगाया था। मुसलमानों से युद्ध आरम्भ होने के अवसर से वही पैदल-सेना के सेनापति थे। मोरेश्वरजी युद्ध के समय साहसी, विपद्‌काल में स्थिर और अविचलित, परामर्श देने में बुद्धिमान, और दूरदर्शी थे। उनसे बढ़ कर कार्य्यदक्ष और प्रकृत बन्धु शिवाजी का और कोई नहीं था।

आवाजी स्वर्णदेव शिवाजी के एक दूरदर्शी और युद्धकुशल ब्राह्मण थे। उनका प्रकृत नाम नीलपन्त स्वर्णदेव था, परन्तु वे आवाजी के नाम से विख्यात थे। उन्होंने सन् १६४८ ई० में कल्याण दुर्ग और कल्याणी प्रदेश को हस्तगत किया था और सम्प्रति रायगढ़ के प्रसिद्ध दुर्ग का निर्माण कराना भी आरम्भ कर दिया था।

प्रसिद्ध अन्नाजी दत्त भी आज सिंहगढ़ के दुर्ग में उपस्थित थे। चार वर्ष हुए कि उन्होंने पवनगढ़ नामक दुर्ग को हस्तगत किया था। उनकी गणना शिवाजी के प्रधान अधिकारियों में है।

सवारों के सेनापति निताई आज सिंहगढ़ में नहीं थे। वे किसी प्रकार से पहुँच कर मुग़लों की उस सेना को, जो औरंगाबाद और अहमदनगर में पड़ी थी, हरा आये थे जिसको कि हमारे पाठक चाँदखाँ की ज़बानी शाइस्ताखाँ की मजलिस में सुन चुके हैं। इस समय सिंहगढ़ के एक छोटे नायक के अधीन थोड़ी सी संख्या में सवारों की एक सेना थी।

पूर्व परिच्छेद में शिवाजी के बाल्यकाल के मावली जाति के तीन सखाओं का वर्णन हो चुका है, जिनमें तीन वर्ष हुए कि

बाजी फसलकर का देहान्त होगया, परन्तु आज के दिन तानाजी मालश्री और यशाजी कान्ह सिंहगढ़ के क़िले में मौजूद हैं। इन्हें बाल्यकाल का सौहार्द, और यौवनावस्था का विपन्न साहस अभी तक विस्मृत नहीं हुआ है। सैकड़ों बार मावली सेना लेकर शिवाजी के साथ पहाड़ों पर चढ़े हुए हैं।

सूर्य्य अस्त होगया। सन्ध्या की छाया धीरे धीरे जगत् में प्रवेश कर रही है। वह वीरमंडली अब तक कोठे के ऊपर खड़ी है कि इतने में शिवाजी वहाँ आगये। उनका मुखमंडल गम्भीर और दृढ़ प्रतिज्ञा से युक्त था। भय लेश मात्र भी दृष्टि नहीं आता था। वह अपने वस्त्रों के नीचे बख़्तर और अस्त्र लगाये हुए थे और प्रतीत होता था कि आज ही की रात में वह कोई असम साहस का कार्य्य साधन किया चाहते हैं। इस वीर के नयनद्वय उज्ज्वल, और दृष्टि स्थिर और अविचलित थी।

शिवाजी ने कहा—भाई! सब ठीक है, चलो चलें।

मोरेश्वर ने कहा—क्या आपने यह निश्चय कर लिया है कि आज की रात में स्वर्णदेव, या अन्नाजी अथवा मैं आपके साथ नहीं जाने पावेंगे? महात्मन्! विपद्काल में कब हम लोगों ने साथ छोड़ दिया है?

शिवाजी—पेशवाजी! क्षमा कीजिए, और अनुरोध मत कीजिएगा। आपका साहस, विक्रम और आपकी विज्ञता मुझसे छिपी नहीं है, किन्तु आज क्षमा कीजिए। भवानी के आदेश से आज मैंने विषम प्रतिज्ञा की है। आज मैं ही उस कार्य्य का साधन करूँगा, नहीं तो इन अकिञ्चनकर प्राणों को न रक्खूँगा। आप आशीर्वाद दीजिए कि जयलाभ हो; किन्तु

यदि अमङ्गल हो अथवा कार्य्यसाधन में मेरे प्राण चले जायँ तो भी आप तीनों महाशयों के होते हुए महाराष्ट्रदेश को कोई क्षति नहीं पहुँचेगी। यदि आप लोग भी मेरे साथ प्राण दे देंगे तो देश किसके बुद्धि-बल से रहेगा, स्वाधीनता को फिर कौन स्थापित करेगा और हिन्दूगौरव की रक्षा कौन करेगा? अतः यात्रा-काल में अब और कुछ न कहिए।

पेशवा ने समझ लिया कि अब और कुछ कहना वृथा है। वे और कुछ न बोले। शिवाजी ने पेशवा को सम्बोधन करके कहा—प्रिय मोरेश्वर! आपने पिताजी के निकट काम किया है। आप मेरे पिता के तुल्य हैं। आशीर्वाद दीजिए, आपके आशीर्वाद से जय होगा। ब्राह्मण का आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं होता। आबाजी! अन्नाजी! आशीर्वाद दीजिए, मैं कार्य्य के निमित्त प्रस्थानित होता हूँ।

मोरेश्वर, आबाजी और अन्नाजी ने सजल नयनों से आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् शिवाजी ने अपने मावले सुहृद् तानाजी और यशाजी को संबोधन करके कहा—बाल्य सुहृद्! आज्ञा दीजिए।

तानाजी—प्रभो! किस अपराध के कारण मुझे आप अपने संग नहीं ले चलते हैं? वह किस रात की बात है अथवा वह कौन सा दुर्ग है कि जिसके विजय करने में मैं साथ नहीं था? पहली वार्त्ता स्मरण करके देखिए, कोंकण-देश में आपके साथ कौन भ्रमण कर रहा था? पहाड़ों की चोटियों पर, तलहटियों में, पर्वतों की कन्दराओं में, नदियों के तीर पर कौन आपके साथ रह कर शिकार कराता था? रात के समय कौन दुर्गों के विजय का परामर्श किया करता था? विचार करके देखिए; यशाजी, मृत बाजी और दास

तानाजी यहीं दोनों तो रहते थे। प्रभु के कार्य्य करने में वाजी हत हुआ था; हमारी उससे भिन्न और कोई इच्छा नहीं है। आज्ञा दीजिए, मैं भी आपके साथ चलूँ कि जिसमें जय-लाभ होने पर प्रभु के आनन्द से आनन्दित होऊँ और यदि प्रभु विनष्ट हों तो हमारा यहाँ का जीना-रहना वृथा है। मुझे यह नहीं सूझता कि जीवित रह कर राज्य का कार्य्य कैसे ठीक कर सकूँगा। आशा है कि आप अपने बाल्यकाल के सुहृद् को वञ्चित नहीं करेंगे।

शिवाजी ने देखा कि तानाजी की आँखों में जल भर आया है। अतः मुग्धभाव से शिवाजी ने तानाजी और यशाजी को आलिंगन करके कहा—भ्रातः! 'मोरे नहिं अदेय कछु तोरे' शीघ्र रण के लिए तैयारी कर दो।

तत्पश्चात् शिवाजी ने अन्तःपुर में प्रवेश किया। दुःखिनी जीजीबाई अकेली बैठी हुई चिन्ता कर रही है, और देवी से प्रार्थना कर रही है—"माता! पुत्र को आज की विपत्तियों से रक्षित रखिए।" इसी समय शिवाजी आकर बोले—माता! आशीर्वाद दीजिए, जाना चाहता हूँ।

जीजीबाई ने स्नेह-पूर्ण स्वर में कहा—वत्स! आ एक बार तुझे प्यार कर लूँ। कब तेरी विपदायें शेष होंगी और यह दुःखिनी शोक और चिन्ता से कब विमुक्त होगी?

शिवाजी—माता! आपके आशीर्वाद से कब विपदाओं से उद्धार नहीं हुआ? और किस युद्ध में जयलाभ नहीं कर सका?

जीजीबाई—"वत्स! दीर्घजीवी हो, ईशानी तुम्हारी रक्षा करें।" इतना कह कर माता ने शिवाजी के मस्तक पर स्नेहमय हाथ फेर दिया और आँखों से टप टप आँसू चूने लगे।

शिवाजी ने सबसे विदा ले ली थी; परन्तु अब तक उनकी दृष्टि स्थिर और स्वर अकंपित था। वे और अधिक न सँभाल सके, दोनों नेत्र डबडबा आये और गद्गद् स्वर में कहा—माता, आप ही हमारी ईशानी हैं, भक्तिभाव से आपही की आजन्म सेवा करूँगा, आप ही के आर्शीवाद से सारी विपदाओं से मुक्त हूँगा।

वृद्धा जीजी ने बहुत अश्रुपात करके शिवाजी को विदा किया और कहने लगी—वत्स! हिन्दूधर्म के जय का साधन करो। स्वयं देवाधिदेव महादेव तुम्हारी रक्षा करेंगे। हमारा पितृकुल देवगढ़ का अधिपति था, हिन्दू-धर्म्मावलम्बी था। वत्स! मैं आशीर्वाद देती हूँ, तुम महाराष्ट्र देश के राजा हो, और दाक्षिणात्य लोग हिन्दूधर्म अवलम्बन करें।

समस्त सेना सजी सजाई तैयार है। शिवाजी चुपचाप घोड़े पर चढ़ गये और सारी सेना क़िले के दरवाज़े की ओर चलने लगी।

क़िले से बाहर होते ही समय, एक अल्पवयस्क योद्धा ने शिवाजी के सामने आकर शिर नवाया। शिवाजी ने उसे पहचान लिया और पूछा—रघुनाथजी हवलदार! इस समय तुम्हारी क्या प्रार्थना है?

रघुनाथ—प्रभु! उस दिन जब कि मैंने तोरण दुर्ग से धनादि लाकर दिया था उससे आपने प्रसन्न होकर कुछ पुरस्कार देना स्वीकार किया था।

शिवाजी—हाँ, क्या आज इस कठिन कार्य के प्रारम्भ में पुरस्कार लेने आये हो?

रघुनाथ—मैं यही पुरस्कार चाहता हूँ कि मुझे भी अपने साथ ले चलिए, और जब २५ मावले सैनिकों के साथ आप

पूना नगर में प्रवेश करेंगे. यह दास भी साथ ही रहेगा। बस, यही इच्छा है।

शिवाजी—राजपूत-बालक! क्यों इच्छापूर्वक इस संकट में फँसते हो? तुम छोटे हो, तुम्हारा अधिकार भी प्राण देने का नहीं।

रघुनाथ—राजन्! आपके साथ रह कर प्राण दूँगा. फिर इस दशा में संसार में कोई रोनेवाला भी हमारा नहीं है और यदि समर में आपका कार्य्य तिलमात्र भी साध सका तो अपने को अमर समझूँगा। इस प्रकार चलने में उभय पक्ष का लाभ है।

रघुनाथ के वही काले काले घुँघराले भ्रमरविनिंदित केश-गुच्छ आँखों के ऊपर छिटके हैं। बालक के सरल उदार मुखमंडल पर वीरों की शोभा देनेवाली प्रतिभा विराजमान है। अल्पवयस्क योद्धा की इस कथा को सुनकर और उसके उदार मुखमंडल को देख कर शिवाजी परम सन्तुष्ट हुए। उन्होंने सेनादल में सम्मिलित होने की उसे आज्ञा दे दी। रघुनाथ सिर झुका कर तुरन्त घोड़े पर चढ़ गया।

सिंहगढ़ से लेकर पूनापर्य्यन्त समस्त मार्गों पर शिवाजी की सेना बैठ गई। ज्यों ज्यों सायंकालीन अन्धकार जगत् में प्रविष्ट होता गया त्यों त्यों शिवाजी की सेना अपना अधिकार करती गई। यदि इस अवसर पर एक भी दीपक जलता अथवा कोई शब्द होता तो तुरन्त सारी करतूत पूनावालों को प्रकाशित हो जाती, सुतरां निःशब्द अन्धकार में सैन्य सन्निवेशन करने लगी। यह कार्य्य समाप्त होगया। रजनी ने जगत में गाढ़ अन्धकार का विस्तार किया; तानाजी और यशाजी सहित २५ सैनिकों के साथ शिवाजी, पूना के निकट

एक बाग़ में छिप गये। रघुनाथ छाया की भाँति अपने प्रभु के पीछे पीछे था।

अधिक अन्धकार के कारण वह आम का बाग़ छिप गया। संध्या-समय की शीतल वायु बह बह कर बाग़ में मरमर शब्द उत्पन्न कर रही थी। रात हो जाने के कारण पूना के लोग बाग़ से होकर नगर में जा रहे थे, परन्तु उनको निबिड़ अन्धकार के अतिरिक्त कुछ नहीं सूझता था और न मरमर शब्द के सिवा और कुछ सुनाई ही पड़ता था।

क्रमानुसार पूना नगर का गोलमाल निस्तब्ध हुआ, लोगों के घरों में दीपक जलने लगा। निस्तब्ध नगर से केवल चौकीदारों की आवाज़ कभी कभी सुनाई देती थी अथवा वायु के झोकों के समान शृगालों का चिल्लाना भी सुन पड़ता था। सहसा चूँ चूँ शब्द हो उठा कि शिवाजी का हृदय भी एकबारगी उमड़ आया और वे उसी ओर देखने लगे। गली के भीतर शब्द होता था, इस कारण नगर के बाहरवालों को दिखाई नहीं पड़ता था।

चूँ, चूँ, चूँ का फिर शब्द हुआ। फिर शिवाजी उसी ओर देखने लगे। बहुत से दीपक जलाते हुए लोग इसी तरफ़ आ रहे थे। यही बरात है!

बरात पास आगई। पूना के चारों ओर खाईं अथवा प्राचीर (शहरपनाह) नहीं है इससे वह अस्पष्ट रूप से दीख पड़ता है। बरात के साथ अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। साथ ही सवार भी थे परन्तु पैदलों की संख्या अधिक थी।

शिवाजी ने चुपचाप अपने बाल्य सुहृद् तानाजी और यशाजी को गले से लगा लिया। एक दूसरे की ओर देखने लगा। यही भाव प्रत्येक के अन्तःकरण में जागृत हो आया

और नयनों में आँसू भर आये, किन्तु शब्द निकालना अनावश्यक था। उसी निःशब्दावस्था में शिवाजी और उनके साथी बरात में मिल गये।

बराती लोग शाइस्ताखाँ के महलों के पास ही से होकर जाने लगे। महल की ललनायें झरोखों से होकर बाजे गाजें का अवलोकन करने लगीं। धीरे धीरे बराती चले गये। कामिनियाँ भी महलों में सोने चली गईं, परन्तु यात्रियों में से २५ मनुष्य ख़ाँ साहिब के घर के पास ही छिप रहे जिनको कि किसी ने भी नहीं देखा। धीरे धीरे बरात का जुलूस बन्द होगया।

रजनी और भी गम्भीर होती गई। शाइस्ताख़ाँ के शयनागर में एक खिड़की थी। उसी में धीरे धीरे कुछ शब्द होने लगा। ख़ाँसाहिब के घर की अधिकांश स्त्रियाँ या तो निद्रित थीं या ऊँघ रही थीं। इसी कारण उन्होंने उस शब्द को सुनकर भी उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया।

एक ईंट, फिर दूसरी ईंट इसी प्रकार ईंटों पर ईंटें खिसकने लगीं। हठात् चोर! चोर!! कह कर स्त्रियां चिल्लाने लगीं। फिर उन्होंने जो चिराग़ लेकर देखा तो सहम गईं। एक के पीछे एक योद्धा चीटियों की भाँति घर में घुसे चले आ रहे हैं। फिर क्या था, शोर-ग़ुल मच गया। शाइस्ताख़ाँ भी जाग पड़ा। उसे लोगों ने इस आपत्ति की सूचना दी।

कहाँ तो ख़ाँसाहिब ख़्वाब देख रहे थे कि शिवाजी सामने हाथ बाँधे खड़ा सुलह का प्रार्थी है, कहाँ एक बारगी चौंक कर जागने पर क्या मालूम होता है कि शिवाजी ने पूना को अपने अधिकार में कर लिया है और अब उसके घर पर चढ़ आये हैं!

भागने के सुभीते के लिए खाँसाहिब एक दरवाज़े की ओर निकल गये, परन्तु देखते क्या हैं कि वहाँ एक योद्धा बर्छी लिये हुए खड़ा है। दूसरे दरवाज़े की भागे, वहाँ भी वही दशा देखी। जब उन्होंने देखा कि समस्त द्वार रुद्ध हैं, तब खिड़की की राह से भागना चाहा पर उसी समय उन्होंने सुना "हर हर महादेव।" पास का मकान महाराष्ट्र-योद्धाओं से भर गया।

"बाप रे बाप! खाँसाहिब का घर लुट गया" इस प्रकार का गुल मच गया। राजमहलों के रक्षक सहसा आक्रान्त होकर हतज्ञान होगये। बहुत से हताहत हुए, परन्तु फिर भी स्वामी की रक्षा के लिए बहुत लोग दौड़े दौड़े आगये और उन २५ मावलों को चारों ओर से घेर लिया।

थोड़ी ही देर में भीषण रूप से वह महल परिपूरित होगया। चिराग़ जलाये गये, परन्तु अन्धकार में मावले योद्धा चीत्कार करके युद्ध करने लगे। अन्धकार ही में हिन्दू-मुसलमान लड़ रहे हैं। दरवाज़ों से झनझनाने का शब्द हो रहा है। आक्रमण-कारियों की ओर से धीरे धीरे खिलखिलाने का शब्द हो रहा है। आहत लोग आर्तनाद कर रहे हैं। सारांश यह कि सारा प्रासाद इन्हीं शब्दों से परिपूर्ण है। इसी समय शिवाजी हाथ में बर्छी लिये हुए योद्धाओं के बीच में आ खड़े हुए। "हर हर महादेव" कहकर लोग चिल्लाने लगे। साथ ही मावले हुंकार देने लगे। मुग़लों के प्रहरी या तो भाग खड़े हुए, या सबके सब हत-आहत हुए। शिवाजी ने भीषण बर्छाघात से द्वार तोड़ डाला और स्वयम् शाइस्ताख़ाँ के शयनागार में घुस गये।

सेनापति की रक्षा के लिए कई एक मुग़ल उस कमरे में दौड़ कर पहुँच गये। शिवाजी ने देखा कि सामने मृत चाँदख़ाँ

का विक्रमशाली पुत्र शमशेरखाँ खड़ा है; यद्यपि पिता अप-मानित होकर प्राण-त्याग कर गया है तथापि पुत्र उसी स्वामी की रक्षा के लिए प्राण त्यागने को प्रस्तुत है। शिवाजी एक क्षणभर खड़े रहे, फिर खड्ग निकाल कर बोले—युवक! तुम्हारे पिता की हत्या करके इस समय मेरा हाथ कलुषित है। अतः मैं तुम्हें मारना नहीं चाहता, रास्ता छोड़ दो।

शमशेरखाँ ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। शिवाजी को आत्मरक्षा करने का भी अवकाश नहीं मिला कि शमशेरखाँ का उज्ज्वल खड्ग उनके शिर पर आगया।

शिवाजी ने मुहूर्त भर के लिए जीवन की आशा त्यागकर भवानी का नाम लिया। सहसा देखते हैं कि पीछे से एक बर्छे ने आकर खड्गधारी को भूतलशायी कर दिया। पीछे फिर कर देखा, रघुनाथजी हवलदार हैं!

"हवलदार! तुम्हारा यह कार्य्य हमें आजन्म विस्मृत नहीं होगा।" केवल इतना ही कह कर शिवाजी आगे बढ़ गये।

इसी समय झरोखे में रस्सी डाल कर शाइस्तखाँ नीचे उतर रहा था। कई एक मावले उस झरोखे की ओर बढ़े। उनमें से एक ने खड्ग का आघात किया, जिससे शाइस्ताखाँ की एक उँगली कट गई, परन्तु शाइस्ताखाँ ने फिर पीछे मुड़ कर नहीं देखा और भाग निकला, किन्तु उसका लड़का अबुलफ़तह और सारे प्रहरी निहत हुए। उस सयम शिवाजी ने देखा कि सारा घर और बरण्डा रक्त से रञ्जित हो रहा है। जगह जगह पर चौकीदार मरे पड़े हैं। स्त्रियों और बालकों के आर्तनाद से प्रासाद परिपूर्ण हो रहा है। मुग़लों का ध्वंस

करने के लिए चारों ओर मावले दौड़ रहे हैं। मशालों के प्रकाश में हताहतों की दशा साफ़ मालूम पड़ने लगी। किसी का शिर अलग पड़ा है, कोई रक्त में शराबोर है, कोई मारे आघातों के पहिचाना नहीं जाता और रक्त की नाली बह रही है। ऐसी दशा देखकर शिवाजी ने मावलों को अपने पास बुला लिया। सभी अवसरों पर शिवाजी के योद्धाओं ने जय-लाभ किया था परन्तु वृथा प्राण-नाश होते हुए देख कर शिवाजी विरक्त हो उठे। उन्होंने सबको संबोधन करके कहा—अब व्यर्थ और हत्या न की जाय। हमारा कार्य्य सिद्ध होगया। भीरु शाइस्ताख़ाँ भाग गया। अब हमारे साथ लड़ाई नहीं कर सकता। अब जल्दी से सिंहगढ़ चलना चाहिए।

अन्धकारमय रजनी में शिवाजी अनायास ही पूना से निकल कर सिंहगढ़ की ओर दौड़ने लगे। जब दो कोस निकल आये तब मशाल जलाने की आज्ञा दी। बहुतेरे लोग मशाल जलाने लगे। पूना से शाइस्ताख़ाँ ने देखा—महाराष्ट्रों की सेना निर्विघ्न सिंहगढ़ को चली जा रही है।

दूसरे दिन कुछ मुग़लों ने सिंहगढ़ पर चढ़ाई कर दी, किन्तु लड़ने की कौन कहे थोड़ी थोड़ी टुकड़ी में होकर वह भागने लगे। कर्ताजी गुज्जर और उनके अधीन महाराष्ट्रीय सेना तथा सवारों ने बहुत दूर तक मुग़लों का पीछा किया।

साहसी योद्धाओं को युद्ध की पिपासा और बढ़ गई, किन्तु शाइस्ताख़ाँ उस प्रकार का वीर नहीं था। उसने औरङ्गज़ेब के नाम एक ख़त लिखा; और अपनी सेना की उसमें यथेष्ट निन्दा की और शिवाजी की ओर यशवन्तसिंह के हो जाने का भी उल्लेख किया। औरङ्गज़ेब ने सब बातों को सोच समझ लिया। दो सेना-नायकों को अकर्म्मण्य मान कर

अपने पुत्र सुलतान मुअज़्ज़म को दक्षिण की लड़ाई पर भेजा और फिर उसकी सहायता के लिए यशवन्त को दुबारा भेजा।

इसके बाद एक साल तक कोई लड़ाई नहीं हुई। सन् १६६४ ई० के आरम्भ ही में शिवाजी के पिता का शरीरान्त होगया। श्राद्धादिकार्य्य सिंहगढ़ ही में करके वे रायगढ़ चले गये। वहाँ राजा की उपाधि ग्रहण करके अपने नाम का रुपया ढलवाया। अब हम अपने इस नये राजा से यहाँ विदा लेते हैं।

पाठकगण! बहुत दिन होगये, तोरणदुर्ग की कोई ख़बर नहीं मिली। आइए वहीं चलें और देखें कि वहाँ क्या हो रहा है।

दसवाँ परिच्छेद

आशा

"जापर जाको सत्य सनेहू। सो तेहि मिले न कछु सन्देहू॥"

—तुलसीदास

जिस दिन से रघुनाथ तोरणदुर्ग से वापस आये हैं उसी दिन से उनके हृदय में प्रेम का विकाश हो गया है। इस प्रेम का भाजन वही वालिका है। उधर सरयूबाला ने जब उद्यान में सन्ध्या के समय रघुनाथ को देखा था तभी से वह अपने देशीय युद्धभेषधारी युवक के प्रेम में तन्मयी हो गई है। अभी तक उसके हृदय-पट पर उदार वदन-मण्डल, और घूँघरवाले बाल अङ्कित हैं। वह रह रह कर पिछली बातों का ध्यान करती है।

पाठकगण! आइए, हम उस दिन की बातें सुना दें। जब उस रात को सरयूबाला अपने देशीय तरुण-योद्धा को भोजन करा रही थी तब आप भी पास ही बैठी, उसके देवविनिन्दित अँवयवों को देख रही थी। जब चार आँखें हुईं, लज्जावनत-वदना धीरे धीरे खिसक गई।

जाने को तो खिसक गई परन्तु उसके हृदय में एक नूतन भाव का आविष्कार हो गया। रघुनाथ ने क्यों मेरी ओर सोद्वेग दृष्टि की है? क्या रघुनाथ ने स्वदेशीय बालिका के ऊपर स्नेह-सहित नयनक्षेप किया है? क्या उसने वास्तव में मेरा आदर किया है?

दूसरे दिन फिर उसने तरुण-योद्धा को देखा था। फिर उसके हृदय में उद्विग्नता हो उठी थी। फिर जब उसने रघुनाथ की आनन्दमयी बातें सुनीं और रघुनाथ ने अपने हाथों से उसके गले में कण्ठमाला पिन्हा दी तब फिर बालिका का शरीर सिहरा उठा था, हृदय आनन्दित हो गया था। जब विदा होकर योद्धा घोड़े पर सवार होकर चलने लगा तब सरयूबाला उसे जँगले की राह से देखती थी।

बहुत देर तक बालिका खिड़की ही में बैठी थी। अश्व और अश्वारोही चले जा रहे थे, परन्तु बालिका उधर ही टकटकी लगाये थी। दीवारों की भाँति पर्वतों की अनेक श्रेणियाँ बहुत दूर तक फैली हुई देख पड़ती थीं, पर्वत-वृक्ष-समूह वायु के वेग से समुद्र के तुल्य लहराते थे। ऊपर पहाड़ों की चोटियों से जगह जगह पर जलप्रपात और झरने गिर रहे थे, जिनके जल से एक सुन्दर और स्वच्छ नदी बह रही थी। नीचे मनोहर जँगलों के बीच में हरियाली की अजब बहार थी। नदी के जल में सूर्य्य की किरणों से हरियाली का बिम्ब बड़ा ही शोभायमान हो रहा था। इन सब प्राकृतिक दृश्यों के होते हुए भी सरयूबाला कुछ और ही देख रही थी।

सरयूबाला उस दिन अनाहार ही रह गई थी। सन्ध्या के समय पिता को भोजन करा के और उनकी शय्या को ठीक करके वह धीरे धीरे अपने शयनागार में चली गई। निस्तब्ध रजनी में उठ कर सरयूबाला फिर उसी झरोखे में आ बैठी और वहाँ बैठे बैठे चन्द्रावलोकन करने लगी।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

चिन्ता

होहु थिर रे चपल मन, यहि ओर टुक चित देहु।
जीव की शिक्षा परम शुचि, तत्त्व दीक्षा लेहु॥
तबहिं प्राणाराम धन वह मिलहिं तोहि ललाम।
करत आकुल हृदय जाकी खोज आठों याम॥

—लोचनप्रसाद पांडेय

जनार्दनदेव स्वभाव ही से सरल मनुष्य थे। सारा दिन शास्त्र-विचार और देव-पूजा में व्यतीत होता था। प्रभात और सायंकाल के समय क़िलेदार के पास मिलने जाया करते थे और शायद ही कभी घर रह जाया करते थे। वे पालित कन्या को बड़ा प्यार करते थे। यहाँ तक कि यदि भोजन करते समय सरयूबाला वहाँ नहीं होती तो जनार्दनदेव आहार भी नहीं करते। रात के समय कभी शास्त्र की बातें कहते और सरयूबाला बैठकर उन्हें बड़े चाव से सुना करती थी। अब तक वह अपने में रत थी, परन्तु एक दिन उसके हृदय में एक नूतन भाव उत्पन्न हुआ था। भला उसे जनार्दनदेव किस प्रकार जान सकते थे?

बालिका के हृदय में सहसा एक दिन जो भाव उत्पन्न हुआ था वह अधिक काल के लिए स्थायी नहीं था, परन्तु फिर भी एक बार ही लीन भी नहीं हुआ। कभी कभी उसी तरुण, उसी योद्धा की कथा सरयूबाला के हृदय में जागृत हो जाया करती

थी। विशेष रीति पर जन्मकाल ही से सरयूबाला अकेली थी। जनार्दनदेव के अतिरिक्त उसने और किसी अपने आत्मीय को देखा ही नहीं था, और न किसी अन्य व्यक्ति को जानती ही थी। उसके बाल्यकाल की अवधि, धीर, शान्त और चिन्तनशीलता की थी। प्रथम यौवनावस्था की तरङ्गें अब उसे गुद-गुदाने लगीं। एक दिन सरयूबाला का हृदय उसी प्रेम से उमड़ आया। तब से वह सायंकाल, प्रभात और अँधेरी रात में भी उस मूर्ति के प्रेम को हृदय में छिपाने लगी।

कल्पना बड़ी मायाविनी होती है। अकेले में सरयूबाला जब कभी जँगले में बैठ जाती, अथवा रात के समय फुलवाड़ी में जाकर चन्द्रावलोकन करती, तभी उसके हृदय में कल्पना का समुद्र तरंगें लेने लगता। वही तरुण योद्धा, वही उसके युद्ध के उल्लास, दुर्ग के हस्तगत करने की लालसा, और शत्रुओं के नाश करने की इच्छा एक एक करके सामने आ जातीं। फिर सरयू यह सोचती कि क्या इन उत्साहों के होते हुए भी वह कभी मेरा ध्यान करते होंगे? पुरुष का हृदय नाना कार्य्य, अनेक चिन्तायें, भाँति भाँति के शोक और अनेक प्रकार के उल्लासों से परिपूर्ण रहता है। जीवनाधार आशा ही है। उद्योग करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। फलाफल उसके कर्मानुसार मिलता है। राजा के द्वार, युद्ध-क्षेत्र, शोक के स्थान और नाट्यशालाओं में भाँति भाँति के कार्य्य हुआ करते हैं। कई अवसरों पर चिन्ता और करुणा का पूर्ण समावेश हो जाता है। क्या चिन्ता चिरकाल स्थायिनी हो सकती है?

और चिन्ता हुई—क्या योद्धा को तोरणदुर्ग की बात अभी तक याद होगी? भला ऐसे समय में और ऐसी अवस्था में

उसका मन स्थिर होगा? हाय! नदी के प्रवाह के कारण तट-वर्ती पुष्प उसमें मिलकर बड़ा आनन्दित हो जाता है और मारे आनन्द के नाचने लगता है। फिर प्रवाह कहीं से कहीं चला जाता है और फूल पड़ा पड़ा वहीं सूख जाता है। परन्तु जल फिर वापस नहीं आता। तथापि मायाविनी आशा सरयू को कभी कभी चेता देती—मालूम है, एक दिन फिर वही तरुण योद्धा तोरणदुर्ग में वापस आवेंगे। रात के समय वही उन्नत दुर्ग और चारों ओर की पर्वतमालायें, जब चन्द्रमा की सुधा-रूपी किरणों से सिंचकर निस्तब्ध और सुप्तावस्था में आ जाते, तब नील आकाश और शुभ्र चन्द्रमा की ओर देखते देखते बालिका का हृदय अनेक प्रकार की चिन्ताओं से आच्छा-दित हो जाता। कहाँ तक बयान करें? ऐसा मालूम होता कि पर्वत के रास्ते से एक नया अश्वारोही आ रहा है, घोड़ा सफ़ेद है, सवार के घूँघरवाले बाल उसके विशाल और उन्नत ललाट तथा आँखों को ढके हुए हैं। वह दुर्ग के निकट पहुँच गया है। उसके कपड़े सुनहले रंग के हैं। मस्तक सुगोल है, बाहु में सुवर्ण के बाज़ू पड़े हैं और दाहिने हाथ में बर्छी लिये हुए है। वही योद्धा फिर भोजन करने के लिए बैठ गया, सरयू उसे भोजन करा रही है, अथवा लजाकर सरयूबाला फिर उसी के पास खड़ी है, और योद्धा भी इस आनन्द से आनन्दित होकर युद्ध की कथा का वर्णन कर रहा है।

कल्पना अवशेष नहीं हुई। अगाध-समुद्र-तरङ्गवत् एक पर दूसरी, दूसरी पर तीसरी होती ही जाती है। सरयूबाला ने फिर समझा, जब युद्ध समाप्त हो चुका था, तरुण सेनापति बड़े यश का भागी हुआ, बहुत सी उपाधियाँ मिलीं परन्तु उसने सरयूबाला को विस्मृत नहीं किया। इसी लिए जनार्दनदेव ने

उसके साथ सरयूबाला को विवाह देना स्थिर कर लिया है। घर में चारों ओर प्रकाश हो रहा है। गाना भी सुनाई पड़ता है और जो कुछ हो रहा है उसे सरयूबाला नहीं जानती और न भली भाँति उसे देख ही सकी।

सरयूबाला जिस प्राणेश्वर की अब तक आराधना कर रही थी वही देव-मूर्ति पास ही विराजमान है और उन्होंने सरयूबाला को स्नेह के साथ सम्बोधन किया है। बालिका को जो आनन्द हो रहा है, उसका कुछ अनुभव वही कर रही है। सरयूबाला! सरयूबाला!! तू पागल तो नहीं हो गई?

फिर कल्पना हुई—रघुनाथ प्रसिद्ध नहीं हुए, और न उन्हें कोई उपाधि ही मिली। वे बड़े दरिद्र हैं परन्तु सरयूबाला से विवाह किया है। पर्वत के नीचे एक सुन्दर उपवन देखा जाता है। उसी के पास से शान्तवाहिनी नदी वह रही है। नदी के जल में चन्द्रकिरणों के प्रतिविम्ब से ऐसा प्रतीत होता है कि मानों रौप्य-जल प्रवाहित हो रहा है। पास में हरे हरे खेत खड़े हैं, यहाँ बहुत सी कुटियाँ बनी हैं। उनमें सबसे छोटी कुटी सरयूबाला की है। वहाँ बैठी हुई वह अपने हाथों भोजन बना रही है और अपने जीवनाधार की प्रतीक्षा कर रही है। रघुनाथ पास ही हरियाली में सैर करने निकल गये हैं। सारा दिन व्यतीत हो गया परन्तु अभी तक कोई आया गया नहीं; लो वह देखो! उत्तर की ओर से एक दीर्घकाय पुरुष कुटी की ओर चला आता है। सरयूबाला का हृदय नाचने लगा। यह तो वही पुरुषश्रेष्ठ हैं जिन्होंने उस दिन कण्ठमाला पहराई थी। मारे आनन्द के बालिका का हृदय प्रफुल्लित हो उठा। सरयूबाला! सरयूबाला!! तू पगली तो नहीं हो गई?

इसी प्रकार एक मास, दो मास, तीन मास करके वर्षों व्यतीत हो गये परन्तु सरयूबाला के करुणा की लहरों का अन्त नहीं हुआ। एक स्वदेशीय तरुण योद्धा के विदेश में रहते हुए भी, सरयूबाला ने उसका आदर-सत्कार किया था। वही कमनीय मुखमण्डल वार वार ध्यान में जमा रहता है। वही दीर्घकाय पुरुष, जिसने सरयूबाला को कण्ठमाला पहनाई थी, सदा आँखों के सामने विराजमान रहता है। इन्हीं कल्पित आनन्दों के वश में सरयूबाला वशीभूत थी। कल्पना, तू मायाविनी तो नहीं है?

बारहवाँ परिच्छेद

पुनर्म्मिलन

सीतल समीर ढार, मंजन कै घनसार,
अमल अँगौछे आछे मन से सुधारिहौं।
देहौं ना पलक एक लागन पलक पर,
मिलि अभिराम आछी तपनि उतारिहौं॥
कहत 'प्रवीन राय' आपनी न ठौर पाय,
सुन बाम नैन या बचन प्रति पारिहौं।
जबहीं मिलैंगे रघुनाथ मोहि प्रानप्यारे,
दाहिनों नयन मूँदि तोहीं सौं निहारिहौं॥

—रायप्रवीण

कल्पना मायाविनी नहीं। सरयूबाला की चिन्ता न मिथ्यावादिनी है और न उसकी आशा विश्वासघातिनी है। एक दिन संध्या के समय सरयू फिर उसी उद्यान में फूल तोड़ रही थी और दिल ही दिल में नहीं मालूम उसी कण्ठ-माला को देख कर कुछ कह रही थी। सरयूबाला का रूप-गौरव पूर्व-प्रशंसित की भाँति स्निग्ध और आनन्दमय है। उसका मुखमण्डल पूर्ववत् कमनीय और शान्त है, तथापि एक वर्ष के भीतर ही भीतर उसमें कुछ परिवर्तन हो गया है। अब नई आशा और नये उल्लास ने उसके मुखमण्डल पर अधिकार जमा लिया है। आँखें उसकी प्रेम से रसमयी हो रही

हैं। उसका शरीर नूतन उद्वेग और नूतन लावण्य से प्रकाशित हो रहा है। अब सरयूबाला का हृदय और उसकी इच्छा भी इस नये उद्वेग से परिवर्तित हो गई हैं। सरयूबाला अब बालिका नहीं है। उसने अब यौवनावस्था में पदार्पण किया है। रूपवती यौवनसम्पन्ना सरयूबाला पुष्प तोड़ रही है, और मन ही मन अपनी कण्ठमाला को देखकर सोच रही है कि इसी समय दरवाज़े पर एक तरुण योद्धा घोड़े से उतर पड़ा। फूल तोड़ते तोड़ते राजपूतकुमारी की दृष्टि आगन्तुक की ओर चली गई। सारा बदन सिहरा उठा। उधर से अब आँखें उठती ही नहीं।

राजपूत योद्धा ने फिर उसी उद्यान में उसी राजपूत-बाला को देखा। एक दिन वह था कि वे रात के समय उसका मुखमण्डल देखकर मोहित हो गये थे और उसी दिन के सवेरे उसके पवित्र कण्ठ में उसी की कण्ठमाला पहिना दी थी। युद्ध में, संकट में, शिविर अथवा सैन्य में उसी की चिन्ता से युवक का हृदय उमड़ा करता था। स्वप्न में भी उस लज्जावती का मुख सर्वदा उनके सम्मुख ही रहता था। आज बहुत दिनों के बाद उसी आनन्दमय, रूप-लावण्यमय, लज्जारञ्जित मुख को रघुनाथ ने देखा है। रघुनाथ थोड़ी देर के लिए वाक्यशून्य और निश्चेष्ट से हो गये।

चन्द्रमा! तुम रघुनाथ और सरयू के ऊपर सुधा की वृष्टि करो। यद्यपि तुम सारी रात जाग कर सब कुछ देखते हो, परन्तु संसार भर में तुमने ऐसा दृश्य कदापि न देखा होगा।

दिसि पूरि प्रभा करिके दसहूँ, गुन कोकन के अति मोद लहै।
रँग राखी रसा रँग कुमकुम के, अलि गुंजत ते जस पुंज कहै॥

निसि एक ह्वै पंकज की पतनीन के, वाके हिये अनुराग रहैं।
मनो याही ते सूरज प्रात समै, नित आवत हैं अरुनाई लहैं॥
—कुलपति मिश्र

संध्या के समय रघुनाथ ने पुरोहित के साथ बैठकर समस्त समाचार उन्हें कह सुनाया कि शाइस्ताखाँ हार कर दिल्ली को लौट गया। शिवाजी ने रायगढ़ पहुँच कर राजा की उपाधि धारण की और देश के शासन के लिए उन्होंने बहुत उत्तम प्रबन्ध किया है। किन्तु दिल्लीश्वर ने शिवाजी को परास्त करने के लिए बहुत सी सेना के साथ महाराज यशवन्त-सिंह को फिर भेजा है। इस वार्ता को सुनकर महाराष्ट्र के राजा को बड़ी चिन्ता हुई है और सम्भव है कि वह महाराजा यशवन्तसिंह के साथ सन्धि कर लें क्योंकि उन्होंने अंबरदेश के शास्त्रज्ञ जनार्दनदेव को बुला भेजा है। इसी कारण पीनस साथ लेता आया हूँ। यदि आपको दो चार दिन का अवकाश हो तो रायगढ़ चले चलिए। राजा ने भी यही आज्ञा दी है।

घर के बगल ही में एक ओर सरयूबाला भोजन का प्रबन्ध कर रही थी। इस कारण रघुनाथ ने जो कुछ कहा था उसे सरयू भले प्रकार सुन चुकी थी। पिता राजधानी को जायँगे और राजा के आदेशानुसार यह तरुण योद्धा हम लोगों को बुलाने आया है, यह विचार कर सरयू का हृदय-कमल खिल गया, हाथ से जलपात्र गिर पड़ा, पुलकित-गात्रा लज्जावनत-मुखी सरयूबाला घर से निकल पड़ी।

अब रघुनाथ थोड़ी देर के पश्चात् जनार्दन से धीरे धीरे अपने देश की कथा कहने लगे। पहले अपने माता-पिता,

जाति और कुल का परिचय दिया, फिर शिवाजी के साथ अपना सम्बन्ध प्रकट किया। जब जनार्दन ने रघुनाथ के उन्नत कुल का परिचय पा लिया और उसके वीर्य्य, बल, सौन्दर्य्य, विनय इत्यादि पर विचार किया तब वह बड़े प्रसन्न हुए और रघुनाथ को पुत्र कह कर सम्बोधन किया। रघुनाथ के भोजन करने का समय आ गया था इसलिए सरयू ने भोजन की सामग्री लाकर रख दी। वृद्ध जनार्दन ने आचमन करके बड़े प्रेम से रघुनाथ को आलिङ्गन किया और कहने लगे—वत्स रघुनाथ! तुम भी आहार करो। मैं आज तुम्हारा परिचय पाकर बड़ा आनन्दित हुआ। तुम्हारा वंश हमसे अपरचित नहीं है। तुम भी अपने वंश के सुयोग्य पुत्र हो! तुम्हारे गुण सर्वथा वंशोचित हैं। सरयू को मैंने कन्या कह कर ग्रहण किया है। तुम्हें भी आज पुत्र कह कर ग्रहण करता हूँ। यदि भगवान् की इच्छा हुई तो इस भावी युद्ध के पश्चात् तुम्हारे जैसे उपयुक्त पात्र के हाथ में सरयूबाला को समर्पण करूँगा। इस प्रकार निश्चिन्त होकर इस मानवलीला को संवरण करूँगा। जगत्पिता तुम्हें और सरयूबाला को सुख से रक्खें।

इस बात को सुनकर रघुनाथ की आँखों में जल भर आया और धीरे धीरे पुरोहित के पैरों पर गिर कर विनीत स्वर से उसने कहा—पिता, आशीर्वाद दीजिए कि यह दरिद्र सैनिक अपनी अभिलाषा पूर्ण करे। रघुनाथ केवल एक दरिद्री हवलदार है। इस समय न तो उसका नाम है और न उसके पास अर्थ ही है, परन्तु परमेश्वर की आशा है। पिता! आशीर्वाद दीजिए जिसमें रघुनाथ इस अमूल्य रत्न को प्राप्त करने में यत्नवान् हो।

यह आनन्दमयी बात सरयूबाला ने भी सुनी। वायु से ताड़ित पत्ते की भाँति उसकी देहलता कम्पित हो गई। उस दिन रघुनाथ से कुछ भी खाया नहीं गया और न सरयू ही ने कुछ भोजन किया।

तेरहवाँ परिच्छेद

रायगढ़-यात्रा

यात्रा की तैयारी करने में पाँच सात दिन की देरी लग गई। इन दिनों रघुनाथ पुरोहितजी के ही घर में रहने लगे। नित्य प्रति प्रातःकाल और संध्या के समय सरयूबाला को उद्यान में फूल तोड़ते देखा करते, और मध्याह्न का भोजन सरयूबाला के प्रिय हाथों से पाते। इन पाँच सात दिनों के भीतर रघुनाथ साहस करके भी सरयूबाला से कुछ वार्तालाप नहीं कर सके। सरयूबाला को देखते ही रघुनाथ का हृदय धड़कने लगता। कुमारी भी रघुनाथ को देखकर कम्पितवदना हो उठती।

तोरण दुर्ग से रायगढ़ जाते समय सरयूबाला की डोली के साथ साथ एक अश्वारोही भी लगा हुआ था। पर्वतपथ या जंगल, वृक्ष-रहित मैदान अथवा नदी-तट, किसी क्षण भी वह सवार डोली को छोड़कर अलग नहीं होता। जब अपनी सहचरियों के साथ रात के समय सरयूबाला किसी मन्दिर, दुकान अथवा किसी भद्रगृह में ठहरती तब भी कभी कभी एक योद्धा हाथ में बर्छी लिये हुए आ जाया करता और उसे देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि मानों रात भर उसे नींद ही नहीं आती।

इस विषय को नारीमात्र ख़ूब समझती है। पुरुष का यत्न, उसका आग्रह, पुरुष के हृदय का आवेग, स्त्रियों की आँखों से छिपा नहीं रह सकता। सरयूबाला डोली के भीतर ही अविश्रान्त अश्वारोही को देखा करती। रात को उसके अनिद्रित रहने का कारण भी ख़ूब जानती रहती और जब देवविनिन्दित आकृति को देखती, आँखों में जल भर लाती। इस दुर्दमनीय आग्रह-चिह्न को देखकर सरयूबाला का हृदय आनन्द और प्रेम के उद्वेग से प्लावित हो जाता।

संध्या के समय जब सरयूबाला उसी योद्धा को भोजन कराने आती तब मौनावलम्बी युवक के दर्शन से वह स्वयं भी अवनतमुखी हो जाती और भले प्रकार से आहार नहीं करा सकती। प्रातःकाल जब सरयूबाला शिविकारोहण करती और योद्धा को घोड़े पर सवार देखती तब उसके म्लान मुख-मण्डल से सरयूबाला सहज ही में अपनी आँखों को लौटा नहीं सकती थी।

कई दिन इसी प्रकार चलते चलाते सबके सब रायगढ़ पहुँच गये। संध्या के समय जनार्दनदेव दुर्ग के नीचे एक गाँव में ठहर गये और महाराष्ट्रीय राजा के पास अपने आ जाने का सँदेशा भेज दिया। दूसरे दिन राजा की अनुमति से जनार्दनदेव ने दुर्ग में प्रवेश किया।

उस दिन, रात के भोजन की तैयारी में कुछ विलम्ब हो गया इसलिए जनार्दनदेव कुछ जलपान करके सो रहे थे परन्तु एक पहर रात व्यतीत होते होते सरयूबाला ने रघुनाथ को भोजन करा दिया।

और दिनों की भाँति आज भोजन करने के पश्चात् रघुनाथ घर से बाहर न होकर जहाँ सरयूबाला बैठी हुई थी

उधर ही सिर नीचा किये हुए चले गये। परन्तु अपने हृदय के उद्वेग को दमन करके स्थिर भाव से बोल उठे—देवि! इस समय अब मुझे विदा कीजिए।

रघुनाथ के उच्चारण किये हुए यह शब्द सरयूबाला के कानों तक पहुँचे, मानों प्यासे पपीहे को स्वाती का जल मिल गया। सरयूबाला का हृदय फड़कने लगा और वह अपने आरक्त मुख को नीचा करके खड़ी होगई।

रघुनाथ ने फिर कहा—देवि! विदा कीजिए, कल अपने राजा की सेवा में उपस्थित हूँगा। अब यह दरिद्र सैनिक फिर अपने कार्य्य पर नियुक्त होना चाहता है।

इन शब्दों को सुनकर सरयूबाला की लज्जा विस्मृत हो गई। आँखों में जल भरकर वह न्यायपूर्ण स्वर से बोल उठी—आपने मेरे साथ, मेरे पिता के साथ, जो यह सद्व्यवहार किया है भगवान् उसी के प्रतिफल में आपको युद्धविजयी करें। इसके अतिरिक्त मैं और क्या आपको दे सकती हूँ?

रघुनाथ ने विनीत स्वर में उत्तर दिया—राजा के आदेशानुसार मैं आपको रायगढ़ तक निरापद ला सका हूँ, यह मेरा परम सौभाग्य है। इसमें मेरा कुछ गुण नहीं। तथापि इस दरिद्री सैनिक से यदि आप तुष्ट हैं तो यह दरिद्री सैनिक आपको सर्वदा स्मरण करेगा।

इस विषय को सरयूबाला ने भली भाँति समझ लिया अतः उसने अपने सिर को झुका दिया। अब रघुनाथ को साहस हो गया। लज्जा को भुलाकर वह कहने लगा—यदि यह दरिद्री सैनिक कोई उच्च अभिलाष करता हो तो आप उस अपराध को क्षमा करेंगी। आपके पिता ने प्रसन्न होकर मुझे आशा दिलाई है। उससे आप भी अप्रसन्न न होंगी। यदि

भगवान् ने मनोवाञ्छा पूर्ण की, यदि जीवन-चेष्टा और आशा फलवती हुई तब एक दिन अपने मन की कथा आपको सुनाऊँगा परन्तु तब तक इस तुच्छ सैनिक को कभी कभी स्मरण करती रहना।

विनीत भाव से विदा लेकर रघुनाथ चल खड़े हुए। सरयू एक घड़ी तक उसी ओर निहारती रही और मन ही मन सोचने लगी—ओह! आधी रात का समय है। सैनिक-श्रेष्ठ! तुम चिरकाल तक इस दासी के स्मरणपथ में जागृत रहोगे। भगवन्, तुम साक्षी रहो।

* * *

जाके लगे सोइ जाने व्यथा, पर-पीर में कोई उपहास करै ना।
'सागर' जो चुभि जात है चित्त, तौ कोटि उपाय करै पै टरै ना॥
नेक सी काँकरी जाके परै, वह पीर के मारे सुधीर धरै ना।
कैसे परे कल ऐरी भटू, जब आँख में आँख परै निकरै ना॥

चौदहवाँ परिच्छेद

राजा जयसिंह

न्याय-परायण जो नर होगा, उसकी कभी न होगी हार।
कपटी कुटिल कोटि रिपु उसके हो जावेंगे क्षण में छार॥
पाण्डव पांच रहे कौरव सौ, राम एक थे निश्चर लक्ष।
विजयी वे ही हुए देख लो, न्याय-युक्त था जिनका पक्ष॥

—रामचरित उपाध्याय

हम यह पहले ही कह आये हैं कि औरङ्गज़ेब ने शाइस्ताखाँ और यशवन्तसिंह दोनों को अकर्म्मण्य समझ कर वापस बुला लिया था, और अपने पुत्र सुलतान मुअज्ज़म को दक्षिण के मुहासिरे पर भेजा था। फिर कुछ सोच विचार कर यशवन्तसिंह को उसकी मदद के लिए वापस कर दिया। परन्तु दूरदर्शी औरङ्गज़ेब ने समझ लिया कि इन लोगों से बहुत कुछ आशा नहीं है। अतः उसने अम्बराधिपति प्रसिद्ध राजा जयसिंह को मय उसकी सेना के रवाना किया। सन् १६६५ ई० के चैत्र मास के अन्त में जयसिंह अपने दल-बल के साथ पूना पहुँच गये। जयसिंह शाइस्ताखाँ की भाँति निरुत्साह होकर क़िले ही में नहीं पड़ गये, किन्तु इन्होंने दिलावरखाँ को पुरन्दर के मुहासिरे पर तैनात किया और स्वयं सिंहगढ़ को घेर कर रायगढ़ पर्यन्त सेना को अग्रसर कर दिया।

शिवाजी हिन्दू-सेनापति के साथ युद्ध करना उचित नहीं समझते थे। विशेषतः जयसिंह की ख्याति, सैन्य संख्या, तीक्ष्ण बुद्धि और उनका दोर्दण्ड प्रताप शिवाजी से छिपा नहीं था। औरङ्गज़ेब के निकट इस प्रकार का दूसरा कोई पराक्रमी सेनापति नहीं था। तत्कालीन भ्रमणकारी फ्रांसीसी बर्नियर ने लिखा है कि "सारे भारतवर्ष में जयसिंह की भाँति दूसरा कोई भी बुद्धिमान्, विचक्षण और दूरदर्शी व्यक्ति नहीं है।" शिवाजी पहले ही से हतोत्साह होकर बार बार सन्धि की प्रार्थना करने लगे, परन्तु तीक्ष्णबुद्धि जयसिंह ने इन समस्त प्रस्तावों पर विश्वास नहीं किया।

अन्त में शिवाजी के विश्वस्त मन्त्री रघुनाथ पन्त न्याय-शास्त्री दूत बन कर जयसिंह के निकट उपस्थित हुए। उन्होंने राजा को इस प्रकार समझाना प्रारम्भ किया—"महाराज! शिवाजी आपके साथ चालाकी नहीं किया चाहते। वे भी क्षत्रिय हैं। क्षत्रियोचित सम्मान वे भी जानते हैं।" शास्त्रज्ञ ब्राह्मण के इन वाक्यों को राजा जयसिंह ने सत्य समझा और उन पर विश्वास किया। फिर ब्राह्मण का हाथ पकड़ कर वे कहने लगे कि—"द्विजराज! मुझे आपके वाक्यों पर विश्वास है। राजा शिवाजी को यह जता देना कि दिल्ली के सम्राट् उनके विद्रोहाचरण की मार्जना किया चाहते हैं, परन्तु उनका विशेष सम्मान भी करना चाहते हैं। मैं इसकी प्रतिज्ञा करता हूँ। आप भी अपने स्वामी से कह दीजिएगा कि मैं भी राजपूत हूँ। राजपूतों के वाक्य अन्यथा नहीं होते।

वर्षा के समय एक दिन जब राजा जयसिंह अपनी सभा में विराजमान थे तब एक द्वारपाल ने आकर संवाद दिया—

महाराज की जय हो। राजा शिवाजी स्वयं द्वार पर खड़े हैं और महाराजा से मिलना चाहते हैं।

सभी सभासद् विस्मित होगये और राजा जयसिंह शिवाजी के लाने के लिए स्वयं शिविर से बाहर चले आये। वे बड़े आदर के साथ उनसे मिले और शिवाजी को साथ लेकर शिविर में चले गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने शिवाजी को अपनी गद्दी की दाहिनी ओर बैठाया।

इस प्रकार सम्मानित होकर शिवाजी बड़े प्रसन्न हुए। राजा जयसिंह ने कुछ देर मिष्टभाषण करने के पश्चात् कहा—राजन्! आपने मेरे यहाँ पदार्पण करके मुझे बड़ा सम्मानित किया। इसे आप अपना ही घर समझिए।

शिवाजी—राजन्! यह दास कब आपकी आज्ञा के पालन से विमुख हुआ? आपने रघुनाथ पन्त को मेरे आने के लिए आदेश किया था। सो दास उपस्थित होगया। मैं भी आपके आचरणों से सम्मानित होगया।

जयसिंह—हाँ, रघुनाथ न्यायशास्त्री से जो कुछ मैंने कहा था वह मुझे स्मरण है। वही करूँगा। दिल्लीश्वर आपके विद्रोहाचरण की मार्ज्जना किया चाहते हैं, परन्तु आपकी रक्षा करेंगे। आपका यथेष्ट सम्मान करेंगे—इस विषय में मैं प्रतिज्ञा करता हूँ। राजपूतों की कही हुई बातें अन्यथा नहीं होतीं।

इस प्रकार थोड़ी देर तक बात-चीत होती रही। तत्पश्चात् सभा भङ्ग होगई। अब शिविर में शिवाजी और जयसिंह के अतिरिक्त और कोई न था। उस समय शिवाजी ने झूठे आनन्द भाव को त्याग दिया और हाथ को गंडस्थल में स्थापित करके चिन्ता करने लगे। जयसिंह ने देखा कि उनकी आँखों में जल भर आया है।

जयसिंह—राजन्! यदि आप आत्मसमर्पण करने में खिन्न होते हों तो यह निष्प्रयोजन है। आप विश्वास करें। मेरे पास चले आइए। राजपूत विश्वासघात नहीं करते। अभी आप मेरी अश्वशाला से घोड़ा लेकर रातोंरात पूना चले जाइए। जिस प्रकार आप बेखटके आये थे, उसी प्रकार निरापद चले जाइए। आप आज्ञा करें, मैं आपके ऊपर कभी हस्त-क्षेप नहीं करूँगा। हाँ, युद्ध-लाभ भले ही कर लूँ। उसमें कोई क्षति नहीं समझता; परन्तु क्षत्रियधर्म को कदापि विस्मरण नहीं करूँगा।

शिवाजी—मुझे आपकी बातों पर विश्वास है।

जयसिंह—तो फिर आप इस समय खिन्न क्यों हैं?

शिवाजी—मैं बाल्यकाल ही से आपके गौरव-गीत को गाकर बड़ा आनन्द पाता था। आज उसी प्रकार आपको देखता हूँ। वह गीत मिथ्या न था। जगत् में यदि सत्य और धर्म का कोई आश्रय है तो वह राजपूत-शरीर ही है। परन्तु क्या ऐसा राजपूत यवनों की अधीनता स्वीकार कर सकता है? क्या महाराज जयसिंह वास्तव में औरङ्गज़ेब के सेना-पति हैं?

जयसिंह—महाराज! इसका कारण प्रकृत दुःख है। क्योंकि राजपूत सहज ही में अधीनता स्वीकार नहीं करते। जब तक साध्य था दिल्ली के साथ युद्ध करता रहा; परन्तु ईश्वर की माया, पराधीन होना पड़ा। प्रातःस्मरणीय प्रताप ने असाध्य साधन द्वारा यत्न किया था, परन्तु उनकी सन्तानों को भी दिल्ली को कर देना पड़ा। मैं यह सब जानता हूँ।

शिवाजी—मैं भी जानता हूँ। इसी लिए तो पूछता हूँ कि जिसके साथ आप से वैरभाव है, उसके कार्य्यसाधन में आप तत्पर क्यों हैं?

जयसिंह—जब मैंने दिल्ली की सेना का सेनापति होना स्वीकार किया था तभी कार्य्यसाधन के प्रति सत्यदान किया था। इसी लिए आज तक उसका पालन करता हूँ।

शिवाजी—क्या सबके साथ सभी अवसरों पर सत्य-पालन करना चाहिए? जो हमारे देश का शत्रु है, और जो हमारे धर्म के विरुद्ध आचरण करता है उसके साथ भला सत्य-सम्बन्ध कैसा?

जयसिंह—भला आप क्षत्रिय होकर ऐसी बातें कर रहे हैं? क्या कभी राजपूतों को ऐसी बात कहनी चाहिए? राजपूतों के इतिहास को पढ़िए, कितने सौ वर्षों तक मुसलमानों के साथ वे युद्ध करते रहे किन्तु कभी सत्य का उल्लंघन नहीं किया। बहुत बार हारे थे, अनेकों बार जयलाभ किया था, परन्तु जय-पराजय में, सम्पद्-विपद् में, उन्होंने सर्वदा सत्य का पालन किया था। इस समय हमारा गौरव स्वाधीनता नहीं है किन्तु सत्य-पालन ही गौरव है। देश, विदेश, मित्र के बीच और शत्रु के बीच राजपूत नाम का गौरव तो है। क्षत्रियराज टोडरमल ने बङ्गदेश को विजय किया था, मानसिंह ने काबुल से उड़ीसा-पर्य्यन्त दिल्लीश्वर की विजय-पताका उड़ाई थी, परन्तु किसी ने विश्वास के विरुद्ध आचरण नहीं किया और मुसलमान बादशाहों से जो कुछ कहा वही किया। महाराष्ट्रराज! राजपूतों का वचन ही सन्धिपत्र है। अनेक सन्धिपत्रों का लंघन किया जाता है परन्तु राजपूतों का वचन कभी उल्लंघनीय नहीं होता।

शिवाजी—महाराज यशवन्तसिंह हिन्दूधर्म के एक प्रधान प्रहरी हैं। उन्होंने भी मुसलमानों के अर्थ हिन्दुओं से युद्ध करना अस्वीकार किया था।

जयसिंह—यशवन्तसिंह वीरशिरोमणि और हिन्दूधर्म के रक्षक हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। वे मारवाड़ देश की मरुभूमि के योद्धा हैं। उनकी मारवाड़ी सेना के सदृश जगत् में दूसरी कोई जाति साहसी नहीं है। यदि यशवन्तसिंह उसी मरु-भूमि से वेष्टित होकर मारवाड़ी सेना-द्वारा हिन्दू-स्वाधीनता की रक्षा के लिए उद्योग करते तो हम उनको अवश्य साधु-वाद देते। यदि वे विजयी होकर औरङ्गज़ेब को परास्त करते और दिल्ली में हिन्दूपताका फहराते तो हम उनको सम्राट् कह कर सम्मानित करते; और यदि वे युद्ध में परास्त होकर स्वदेश और स्वधर्म के रक्षार्थ प्राणत्याग करते, तो हम उनकी देव-तुल्य पूजा करते, परन्तु जिस दिन से वे दिल्लीश्वर के सेना-पति बने उसी दिन से मुसलमानों के कार्य्यसाधन में तत्पर होगये। जिसको ग्रहण किया उसका लंघन करना क्षात्रधर्म के प्रतिकूल है। यशवन्तसिंह अपनी यशोराशि से मलिन होकर कलङ्कित होगये हैं। जब से वे शिप्रा नदी के तीर पर औरङ्ग-ज़ेब से परास्त हुए हैं तभी से उसके विद्वेषी होगये हैं। नहीं तो वे ऐसा गर्हित कार्य्य कदापि न करते।

चतुर शिवाजी ने देखा कि जयसिंह यशवन्तसिंह नहीं हैं। फिर थोड़ी देर के बाद कहा—क्या हिन्दूधर्म की उन्नति की चेष्टा करना गर्हित कार्य्य है? हिन्दुओं को भाई समझ कर उनकी सहायता करना क्या गर्हित कार्य्य है?

जयसिंह—हम यह नहीं कहते। यशवन्तसिंह ने क्यों नहीं औरंगज़ेब का कार्य्य छोड़कर आपका पक्ष ले लिया? ले

लेते तो सारे संसार और ईश्वर के निकट वे यशस्वी होते। आप जिस प्रकार स्वाधीनता की चेष्टा करते हैं उसी प्रकार उन्होंने क्यों नहीं की? सम्राट् के कार्य्य में निरत रहकर गुप्त भाव से विरुद्धाचरण करना कपटता है। क्षत्रियराज! कपटाचरण क्षात्रोचित कार्य्य नहीं है।

शिवाजी—यदि वे हमारे साथ प्रकट रूप से मिल जाते तो सम्भव था कि औरङ्गज़ेव दूसरे सेनापति को भेजता और जिससे लड़ कर हम दोनों परास्त होकर मारे जाते।

जयसिंह—"युद्ध में प्राणत्याग करना क्षत्रियों का सौभाग्य है; परन्तु कपटाचरण क्षत्रियधर्म के विरुद्ध है।" इतना सुनते ही शिवाजी का मुखमण्डल लाल होगया। वे कहने लगे—राजपूत! महाराष्ट्रीय वीर भी मृत्यु से नहीं डरते। यदि इस अकिञ्चन जीवन का दान करने से हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाय, और हिन्दू-स्वाधीनता, हिन्दू-गौरव पुनः स्थापित हो जाय, तो भवानी की सौगन्ध, इसी समय अपने वक्षःस्थल को विदीर्ण कर डालूँ। अथवा हे राजपूत! तुम्हीं अपने बर्छे से मेरे हृदय को छेद डालो। मैं हर्षपूर्वक शरीर त्याग कर दूँगा। किन्तु जिस हिन्दू-गौरव के विषय का मैं बाल्यकाल में स्वप्न देखा करता था, जिसके कारण मैंने सैकड़ों युद्ध किये; बीस वर्ष पर्य्यन्त पर्वत में, उपत्यका में, शिविर में, शत्रुओं के बीच में, सायं-प्रातः, गम्भीर निशा में, चिन्ता करता रहा, उस गौरव और स्वाधीनता का क्या फल होगा? क्या युद्ध में प्राणत्याग देने से उसकी रक्षा हो जायगी?

जयसिंह ने शिवाजी की तेजस्विनी वाणी को सुना और उनके जलपूर्ण नेत्रों को देखा, परन्तु पूर्ववत् स्थिर भाव से

उसका उत्तर देने लगे—सत्यपालन यदि सनातन हिन्दूधर्म की रक्षा नहीं है तो क्या सत्यलंघन है? यदि वीरों के शोणित से स्वाधीनता का बीज अंकुरित न हुआ तो क्या वीर की चतुरता से कुछ होगा?

शिवाजी परास्त होगये। परन्तु थोड़ी देर चुप रहने के बाद फिर बोले—महाराज! मैं आपको पिता के तुल्य समझता हूँ। आपकी भाँति धर्म्मज्ञ, तीक्ष्णबुद्धि-योद्धा मैंने कभी नहीं देखा। मैं आपके लड़के के समान हूँ। एक बात आपसे पूछना चाहता हूँ। आप उचित परामर्श दीजिए। मैं जब लड़कपन में कोकण देश के असंख्य पर्वतों, और उत्पत्यकाओं में भ्रमण कर रहा था, एक दिन भवानी ने स्वयं मुझे स्वप्न में, स्वाधीनता स्थापन करने का उपदेश किया था। उन्होंने देवालयों की संख्या बढ़ाने, गोवत्सादि की रक्षा करने, ब्राह्मणों की सम्मान-वृद्धि करने और धर्म-विरोधी मुसलमानों को दूर करने का साक्षात् उपदेश दिया था। मैं लड़का था। उस समय स्वप्न विस्मृत होगया। परन्तु सदर्प खड्ग को ग्रहण किया और वीर-शिरोमणियों को एकत्रित करने में फलीभूत हुआ। बहुत से दुर्गों पर अब तो अधिकार भी कर लिया है। लड़कपन में जो कुछ स्वप्न में देखा था, जवानी में भी उसे देखा है। हिन्दुओं के नाम का गौरव, हिन्दू-धर्म की प्रधानता, हिन्दू-स्वाधीनता का सम्पादन सब कुछ मुझे स्मरण है। यथासम्भव परिश्रम भी किया है। क्षत्रियराज! हमारे ये उद्देश्य क्या मन्द हैं? स्वप्न क्या अलीक स्वप्न-मात्र है? आप इस पुत्र को समझाइए।

बहु-दूरदर्शी धर्मपरायण राजा जयसिंह कुछ समय तक चुप रहे। पश्चात्, धीर और गम्भीर स्वर में बोले—राजन्,

आपके महदुद्देश से बढ़ कर और दूसरे उद्देश को मैं नहीं जानता, और न आपके स्वप्न से बढ़कर प्रकृत शिक्षा ही मुझे कुछ दीख पड़ती है। शिवाजी! आपका यह बड़ा उद्देश मुझसे छिपा हुआ नहीं है। मैंने शत्रुओं के सम्मुख भी आपके उद्देशों की प्रशंसा की है। अपने पुत्र रामसिंह को आप ही का उदाहरण देकर शिक्षा दी है। स्वाधीनता-गौरव को राजपूत अभी भूले नहीं हैं। शिवाजी! तुम्हारा स्वप्न निरा स्वप्न ही नहीं है, चारों तरफ़ आँख उठा कर जब देखता हूँ तब यही निश्चय होता है कि मुग़लराज्य अब अधिक काल तक स्थायी नहीं रह सकता। उनके सारे उद्योग निष्फल हैं। मुसलमानों का राज्य कलङ्कराशि से परिपूर्ण होगया है। विलासप्रियता से अब वह जर्जरित हो उठा है; हिन्दुओं पर अत्याचार करके उनके शाप से शापित हो गया है। बालू की दीवार की भाँति अब वह और नहीं ठहर सकता। चाहे देर में, चाहे जल्दी में, मुग़लराज्य-प्रासाद अवश्य ही भग्न होकर धराशायी होगा और फिर हिन्दुओं की प्रधानता होगी। महाराष्ट्रीय-जीवन अंकुरित हो रहा है। इससे बोध होता है कि भारतवर्ष में इसी के तेज का विकाश होगा। शिवाजी! आपका स्वप्न स्पप्न ही नहीं है। भवानी ने आपको मिथ्या उत्तेजना भी नहीं दी है।

उत्साह और आनन्द के मारे शिवाजी का शरीर रोमाञ्चित हो आया। उन्होंने फिर पूछा—महाराज, फिर आप उस गिरते हुए मकान के एकमात्र स्तम्भस्वरूप क्यों बने हैं?

जयसिंह—सत्यपालन क्षत्रिय-धर्म है। मैं उसी का पालन कर रहा हूँ। किन्तु असाध्य-साधन नहीं हो सकता। पतनोन्मुख प्रासाद का अवश्य ही पतन होगा।

शिवाजी—अच्छा, आप सत्यपालन कीजिए। कपटाचारी औरङ्गज़ेब के निकट धर्माचारी जयसिंह को देवता लोग भी विस्मित होकर साधुवाद देते हैं, किन्तु मैं तो कभी औरङ्गज़ेब के निकट सत्यपालन नहीं कर सकता। यदि मैं उस दुराचारी के निकट बुद्धि-बल से भी स्वदेश के उन्नति-साधन में फलीभूत हो जाऊँ तो लोग मेरी निन्दा नहीं करेंगे।

जयसिंह—क्षत्रियराज! योद्धा के निकट चालाकी सर्वदा निन्दनीय है। विशेषतः बड़े उद्देश को साधन करने के लिए तो चातुरी कलङ्क का टीका है। ऐसा मालूम होता है कि महाराष्ट्रीय गौरव अनिवार्य्य है। उनका बाहु-बल नित्यप्रति बढ़ता जायगा, और वह दिन दूर नहीं है कि वह भारतवर्ष के अधीश्वर हो जायँगे। परन्तु शिवाजी. आज आप जो यह शिक्षा दे रहे हैं इसे लोग कभी नहीं भूलेंगे। हमारे कहने का आप बुरा न मानें। आज आप शहरों का लूटना सिखा रहे हैं, और उसके द्वारा आप तो विजय प्राप्त करते हैं परन्तु यही लोग आपके पश्चात् शहरों और नगरों का लूट लेना ही सबसे प्रधान कार्य्य समझ बैठेंगे और भारतवर्ष में सिवा लूट-मार के और कोई बात न रहेगी। आज आप सम्मुख-युद्ध की अपेक्षा चालाकी सिखा रहे हैं। इसका प्रभाव यह होगा कि लोग सम्मुख होकर युद्ध कर ही नहीं सकेंगे। आप जिस जाति के नेता हैं वह जाति भारत की शासक होगी। अतः आप उसे गुरु की नाईं धर्म-शिक्षा दीजिए। इस समय की आपकी मन्द शिक्षा का प्रभाव सौ वर्षों बाद सारे भारतवर्ष में फूट निकलेगा। आप हिन्दुओं में श्रेष्ठ हैं। आपके महान् उद्देश की मैं शत शत बार प्रशंसा करता हूँ, परन्तु आप इस वृद्ध, बहुदर्शी राजपूत की शिक्षा ग्रहण

कीजिए, चालाकी भूल जाइए। यदि आप ही धर्म और सत्य की शिक्षा न देंगे तो कौन देगा? महाराष्ट्र-शिक्षा-गुरो, सावधान! आपके प्रत्येक कार्य्य का फल बहुकाल-व्यापी और बहुदेश-व्यापी होगा।

इन महत्तर वाक्यों को सुनकर शिवाजी क्षण भर स्तम्भित हो गये, परन्तु फिर उन्होंने कहा—आप गुरु के गुरु हैं। आपके उपदेश शिरोधार्य्य हैं। परन्तु आज हम यदि औरङ्गज़ेब की अधीनता स्वीकार कर लें तो फिर शिक्षा कौन देगा?

जयसिंह—जय-पराजय स्थिर नहीं है। आज मुझे जय प्राप्त हुई है; कल आपको भी प्राप्त हो सकती है। आज आप औरङ्गज़ेब के अधीन हैं, कल स्वाधीन हो सकते हैं।

शिवाजी—ईश्वर करे, यही हो। परन्तु जब तक आप औरङ्गज़ेब के सेनापति हैं, मुझे स्वाधीनता मिलनी दुस्तर है और ऐसी आशा भी वृथा है। स्वयं भवानी ने भी तो हिन्दू सेनापति के साथ लड़ने का निषेध किया है।

जयसिंह इस बार हँस पड़े और कहने लगे—शरीर क्षणभंगुर है। भला यह वृद्ध शरीर कब तक रह सकता है? किन्तु जब तक है, सत्यपालन से विचलित न होने पावेगा।

शिवाजी—आप दीर्घजीवी हों।

जयसिंह—शिवाजी! अब विदा दीजिए। मैंने औरङ्गज़ेब के पिता के निकट कार्य्य किया है. और इस समय औरङ्गज़ेब का कार्य्य कर रहा हूँ। जब तक जीवन है, दिल्लीपति का यह वृद्ध सेनापति विरुद्धाचरण नहीं करेगा। किन्तु क्षत्रियराज! निश्चिन्त रहिए। महाराष्ट्र-गौरव और हिन्दू-प्रधानता अनिवार्य्य है। वृद्ध के वचन को ग्रहण कीजिए। मुग़लों का राज्य अधिक दिन न रहेगा। हिन्दुओं का तेज अब अधिक

दिन तक निवारण नहीं किया जा सकता। देशदेशान्तर में हिन्दू-गौरव के साथ ही साथ आपके गौरव और नाम की प्रतिध्वनि सुनाई देगी।

शिवाजी ने आँखों में आँसू भर कर जयसिंह को आलिङ्गन किया और कहा—धर्म्मात्मन्! आपके मुख में दही-शक्कर, आपकी ये बातें सत्य हों। मैंने आत्म-समर्पण किया। अब मैं आपसे कभी लड़ाई न करूँगा। क्षत्रियप्रवर! यदि फिर कभी स्वाधीनता प्राप्त होगी तो एक बार फिर आपका दर्शन करूँगा, और पिता के चरणों में शिर रख कर उपदेश ग्रहण करूँगा।

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

दुर्ग-विजय

कटक कटक काटि कीट से उड़ाय केते,
भूषण भनत मुख मोरे सरकत हैं।
रण-भूमि लेटे अध कटे करे लेटे परे,
रुधिर-लपेटे पठनेटे फरकत हैं॥

—भूषण।

श्री ही सन्धि होगई। शिवाजी ने मुग़लों के जिन जिन दुर्गों को विजय कर लिया था उन्हें वापस दे दिया। विलुप्त अहमदनगर राज्य के ३२ दुर्गों को जो उन्होंने बनवाया था उनमें से २० औरङ्गज़ेब को दे दिये और बाक़ी १२ दुर्ग औरङ्गज़ेब ने जागीर के तौर पर छोड़ दिये। शिवाजी ने जो प्रदेश औरङ्गज़ेब को दिये थे, उसके बदले में दिल्लीश्वर ने विजयपुर के अन्तर्गत कई एक राज्य शिवाजी को दे दिये और उनका अष्टवर्षीय राजकुमार पंचहज़ारी का मनसबदार नियत किया गया।

शिवाजी के साथ युद्ध समाप्त होने के पश्चात् राजा जय-सिंह विजयपुर-राज्य को ध्वंस करके उसे दिल्लीश्वर के अधि-कार में लाने का अनिवार्य यत्न करने लगे। शिवाजी के पिता ने जो सन्धि विजयपुर और शिवाजी के बीच करा दी थी, शिवाजी ने उसका लंघन नहीं किया, परन्तु विजयपुर के सुलतान ने

शिवाजी को विपद्-ग्रस्त देखकर उसके राज्य पर चढ़ाई कर दी। इसी कारण अब महाराज शिवाजी ने भी जयसिंह का पक्ष अवलम्बन कर अली आदिलशाह को ध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया और अपनी मावली सेना के बल से उसके कितने ही दुर्ग दबा लिये।

महाराज जयसिंह और शिवाजी की मित्रता दिन प्रतिदिन घनिष्ठ होती गई। दोनों सदा एक साथ रहते और लड़ाई में एक दूसरे की सहायता करते थे। अधिक न कह कर इतना ही कह देते हैं कि शिवाजी का एक तरुण हवलदार जयसिंह के पुरोहित के सदन में नित्य-प्रति जाया करता था। पाठक-गणों को उसका नाम बताने की आवश्यकता नहीं।

सरलस्वभाव पुरोहित जनार्दनदेव क्रमानुसार रघुनाथ को पुत्रवत् देखने लगे और सदा उसे अपने घर बुलाया करते। रघुनाथ भी अवसर पाकर उस सरलस्वभाव पुरोहित के पास बैठा करता और उनके राजस्थान का संवाद सुना करता। वे राजा जयसिंह की बात सोचा करते और स्वदेशोन्नति पर विचार भी किया करते। कभी कभी आधी रात तक ठहर कर वे युद्ध की वार्त्ता सुनाया करते; और पार्वत्य-दुर्ग के आक्रमण, शत्रुशिविराक्रमण तथा गिरि-चूड़ा के भीषण युद्ध का यथावसर वर्णन भी किया करते। रघुनाथ जब योद्धाओं की कथा सुनता तब उसके नयन प्रज्वलित हो जाते और स्वर कम्पित होकर मुखमण्डल लाल वर्ण का हो जाया करता था।

जब वृद्ध जनार्दनदेव युद्ध की कथाएँ सुनाते तब पास के दूसरे कमरे में बैठी सरयू भी सुना करती और एकान्त में बैठी बैठी आँखों से आँसू बहाया करती। फिर परमात्मा से

रघुनाथ के रक्षार्थ विनय भी किया करती। जब आधी रात के समय कथा-वार्ता समाप्त होती तब सरयूबाला भोजन लाकर रघुनाथ के सामने रख देती। जब रघुनाथ भोजन करने लगता तब सरयू पास ही बैठ कर उसी देवमूर्ति को देखा करती, और अपनी प्रेम-पिपासा की तृप्ति किया करती। भोजन के बाद यदि योद्धा मृदुस्वर में विदा चाहता, अथवा दो एक बात करना चाहता तो सरयू स्वयं उसका कुछ उत्तर न देती। लज्जा के मारे उसका गंडस्थल लालवर्ण का हो जाता, आँखें प्रेममयी हो जातीं और विवश हो सहचरी द्वारा उत्तर कहला भेजती।

परन्तु उत्तर की क्या आवश्यकता? सरयू के नयनों की भाषा रघुनाथ अच्छी तरह समझ लेता था और रघुनाथ की आँखों के सम्भाषण को सरयू भी जान लेती थी। दोनों के जीवन, मन और प्राण, प्रथम-प्रणय के समय ही से अनिर्वच-नीय आनन्द की लहरों में निमग्न होगये थे। दोनों ही के हृदय प्रथम-प्रणय के उद्वेग से उत्क्षिप्त हो चुके थे।

विजयपुर के अधीनस्थ अनेक दुर्गों को हस्तगत कर शिवाजी ने एक दूसरे अत्यन्त दुर्गम-पार्वत्य दुर्ग के लेने का विचार किया। जब वे किसी दुर्ग पर चढ़ाई करते तब उसका संवाद किसी पर विदित नहीं होने देते थे। उनकी सेना भी कुछ नहीं जान सकती थी। राजा जयसिंह के डेरे के समीप, परन्तु शिवाजी के डेरे से ५-६ कोस पर, वह दुर्ग था। शाम को एक हज़ार मावलों और महाराष्ट्रों की सेना सुसज्जित कराई गई। एक पहर रात व्यतीत होने पर शिवाजी ने प्रकाशित किया—"रुद्र-मण्डल दुर्ग पर आक्रमण करना होगा।" चुपचाप उसी ओर एक हज़ार योद्धा चल खड़े हुए।

विकट अँधेरी रात में सेना दुर्ग के नीचे पहुँच गई। चारों ओर सम भूमि है। उसके बीच एक उच्च पर्वत-शृङ्ग पर रुद्र-मण्डल दुर्ग बना हुआ है। सीधी ऊपर की चढ़ाई है। दुर्ग में जाने का एक मात्र ही रास्ता है। लड़ाई के समय वही राह बन्द है। दूसरी ओर से जाना अतिशय कष्टसाध्य है। रास्ता तो है ही नहीं, केवल जंगल और शिलाओं से दुर्ग वेष्टित है। शिवाजी ने इसी दुर्गम मार्ग से चलने की आज्ञा दी। जैसे एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर बन्दर चढ़ते हैं उसी भाँति उस पर्वत पर शिवाजी की सेना भी चढ़ने लगी। कहीं रुक कर, किसी स्थान पर खड़े होकर, कहीं पेड़ों की डालियाँ पकड़ कर, और किसी किसी स्थान पर कूद कर सेना आगे बढ़ने लगी। महाराष्ट्रीय सेना के अतिरिक्त और कोई दूसरी जाति इस प्रकार पर्वत पर चढ़ सकती है अथवा नहीं इसमें सन्देह है।

आधे मार्ग में पहुँचकर शिवाजी ने सहसा देखा कि ऊपर दुर्ग की दीवालों पर बहुत सी मशालें जल रही हैं। अतएव वे चिन्ताकुल हो सशङ्क खड़े हो गये—क्या शत्रु ने मेरे आक्रमण को जान लिया है? नहीं तो दुर्ग की दीवाल के ऊपर इस प्रकार मसालों के जलाने की क्या आवश्यकता थी? मशालों की रोशनी नीचे भी पड़ने लगी। ओह! दुर्ग के अधिवासी लोग शत्रु की प्रतीक्षा कर रहे हैं, इसी लिए मशालें जला रक्खी हैं, जिसमें कोई अन्धकार के कारण कहीं क़िले पर चढ़ाई न कर बैठे! शिवाजी ने अपने सैनिकों को और भी वृक्षों, चट्टानों में छिप छिप कर बड़ी सावधानी के साथ चलने का आदेश किया। चुपचाप महाराष्ट्रगण उस पर्वत पर चढ़ने लगे। कहीं बड़े वृक्ष को, कहीं झाड़ियों को और कहीं चट्टानों को कूदते-फाँदते वे आगे बढ़ने लगे।

थोड़ी देर के बाद सेना एक ऐसे स्वच्छ मैदान में पहुँच गई कि जहाँ से यह रोशनी दीख पड़ती थी, और ऊपर चढ़ती हुई सेना भी अच्छी तरह से दिखाई देती थी। इसलिए शिवाजी फिर रुक गये और पेड़ की ओट से इधर-उधर देखने लगे। सामने मालूम हुआ कि अब १०० हाथ तक मैदान सफ़ाचट है, कोई पेड़ अथवा झाड़ी नहीं है। परन्तु आगे उसके पेड़ों का फिर सिलसिला है। यह सौ हाथ का मैदान किस प्रकार से तय किया जाय। इधर-उधर कहीं रास्ता नहीं है। यदि नीचे उतर कर दूसरे रास्ते से फिर क़िले पर चढ़ें तो रास्ते ही में सवेरा हो जायगा। शिवाजी कुछ देर सोचने लगे, फिर बाल्यावस्था के सुहृद् विश्वासी तानाजी मालुसरे को बुलाया और वहीं खड़े खड़े उनसे कुछ बातचीत करने लगे। थोड़ी देर बाद तानाजी वहाँ से एक ओर चले गये। शिवाजी खड़े खड़े उनकी प्रतीक्षा करने लगे और सेना भी अपने महाराज की आज्ञा सुनने को उत्सुक हो गई।

आधी ही घड़ी के भीतर तानाजी लौट आये, और नहीं मालूम शिवाजी से धीरे धीरे क्या कहने लगे। कुछ देर तक शिवाजी विचारने लगे परन्तु उच्च स्वर से कहा—हाँ, वही ठीक है और कोई दूसरा उपाय ही नहीं।

पानी बरसने के कारण कुछ पत्थर और मिट्टी खिसक कर एक जगह नाली सी बन गई थी। दोनों किनारे ऊँचे थे और बीच में गहरा था। उस नाली के भीतर भीतर होकर चलने से सम्भवतः शत्रु नहीं देख सकते इसलिए यही परामर्श स्थिर हुआ। सारी फ़ौज उसी नाली में उतर कर दुर्ग की चढ़ाई करने लगी। सैकड़ों पत्थर के टुकड़ों पर

होकर सेना चुपचाप वृक्षों की श्रेणी में पहुँच गई। शिवाजी मन ही मन भवानी को धन्यवाद देने लगे।

उनके पास ही खड़ा हुआ एक सैनिक सहसा ज़मीन पर गिर पड़ा। शिवाजी ने देखा कि उसके वक्षःस्थल में तीर लगा हुआ है। एक और तीर आया। सन्नाता हुआ फिर दूसरा तीर निकल गया। फिर तो तीरों की बौछार पड़ने लगी। शत्रु लोग जागते थे। शिवाजी की सेना जब उस नाली में होकर ऊपर को चढ़ रही थी तभी उनको सन्देह हुआ था। इसी कारण उधर तीर चला रहे थे।

शिवाजी की सारी सेना पेड़ों की ओट में खड़ी हो गई। तीरों का चलाया जाना बन्द हो गया, परन्तु शिवाजी ने समझा कि शत्रु को हमारे आने की सूचना मिल गई है, क्योंकि उन्होंने दुर्ग की रखवाली कर रक्खी है और इसी लिए चारों ओर मशालें भी जला रक्खी हैं तथा इधर-उधर पहरा भी दे रहे हैं। अब शिवाजी की सेना उनसे केवल ५० हाथ की दूरी पर थी। शिवाजी ने निश्चय कर लिया कि आज दुर्ग जीतने के लिए युद्ध करना होगा। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है।

शिवाजी के परम मित्र तानाजी इन बातों को देखकर धीरे धीरे बोले "राजन्! अभी नीचे लौट जाने का समय है। यदि आज दुर्ग हस्तगत न हुआ तो कल हो जायगा, परन्तु आज के साहस में सर्वनाश होने की सम्भावना है।" शिवाजी ने गम्भीर स्वर से उत्तर दिया—जयसिंह के आगे जो कुछ कहा है, उसी को करूँगा। आज ही रुद्र-मण्डल को विजय करूँगा अथवा युद्ध में प्राण-त्याग करूँगा।

शिवाजी चुपचाप उस वृक्ष-श्रेणी के भीतर से आगे बढ़ने लगे, और शत्रु को धोखा देने के लिए सौ सैनिकों को दूसरी ओर से गोल करने का हुक्म दे दिया। थोड़ी ही देर में दुर्ग के दूसरी ओर से बन्दूकों की आवाज़ें सुनाई देने लगीं। शत्रु यह समझ कर कि शिवाजी ने इधर से ही चढ़ाई की है, सब के सब उधर टूट पड़े। इधर जो दो-एक मशालें जल रही थीं वे बुझ गईं। उसी समय शिवाजी ने कहा—महाराष्ट्र-गण! सैकड़ों लड़ाइयों में आपने अपने विक्रम का परिचय दिया है, शिवाजी का नाम रक्खा है, वही परिचय आज भी दीजिए। तानाजी! बाल्यकाल के सौहार्द का आज परिचय दीजिए।

शिवाजी के इन उत्साहवर्द्धक वाक्यों से सभों का हृदय जोश से परिपूरित हो गया। सबके सब उस गम्भीर अन्धकार में अग्रसर हुए और बहुत शीघ्र दुर्ग के निकट पहुँच गये। आधी रात गुज़र गई। आकाश में भी प्रकाश नहीं है। जगत् निःशब्द है। केवल नैश-वायु के वेग से पहाड़ी वृक्षों के भीतर मरमर शब्द हो रहा था।

जब रुद्र-मण्डल के प्राचीर से शिवाजी केवल २० ही हाथ की दूरी पर थे उस समय उन्होंने देखा कि दीवार पर एक सिपाही है और वृक्ष के बीच में शब्द होने के कारण वह इधर ही आ गया है। तुरन्त ही एक मावले ने चुपचाप एक तीर चला दिया। अभागे सिपाही का मृत शरीर धड़ाम से नीचे गिर पड़ा।

नीचे सिपाही के गिरने के शब्द को सुनकर एक, दो, दस, सौ यहाँ तक कि तीन सौ सैनिक प्राचीर के ऊपर जमा हो गये। शिवाजी ने विचार किया कि अब छिपने से काम नहीं चलेगा। अतः सैनिकों को आगे बढ़ने की आज्ञा दी।

तत्क्षण महाराष्ट्रों की ओर से "हर हर महादेव" का गगनभेदी नाद होने लगा। दीवार के ऊपर चढ़ जाने को एक दल दौड़ गया। दूसरा दल वृक्षों के भीतर से प्राचीर पर खड़े हुए मुसलमानों पर तीर चलाने लगा। मुसलमानों ने भी शत्रुओं के आगमन से खेद नहीं किया, वे भी "अल्लाहो अकबर" के शब्द से पृथ्वी और आकाश को कम्पायमान करने लगे। कोई दीवार पर से तीर चलाने लगा, कोई दीवार से कूदकर मराठों पर आक्रमण करने लगा।

शीघ्र ही प्राचीर और वृक्षों के मध्य में घमासान लड़ाई आरम्भ होगई। दीवार के नीचेवाले मुसलमान बर्छी चलाकर आक्रमणकारियों को मारने लगे परन्तु फिर भी तीरों के चलने से मुसलमानों का विनाश होने लगा। लाशों की ढेरी से प्राचीर-पार्श्व परिपूर्ण होगया। योद्धागण उन्हीं मृतदेहों के ऊपर खड़े होकर खड्ग और बर्छा चलाने लगे। सैकड़ों मुसलमान वृक्षों के भीतर तक चले आये, परन्तु शिवाजी और मावले वीर शेर की भाँति कूद कूद कर उन्हें परास्त करने लगे। प्रबल प्रतापी अफ़गान भी युद्ध-कौशल में अपटु नहीं थे। पर्वत के भीतर से रक्तस्रोत बह निकला। वृक्षों के मध्य में, कङ्कड़ों के ऊपर, शिलाखण्डों के निकट, बहुतेरे मराठे वीर खड़े होकर अव्यर्थ तीर और बर्छा चलाने लगे। तीरों की बौछार यवनों की संख्या घटाने लगी।

इन शब्दों को मथन करता हुआ दुर्ग की दीवार से "महाराज शिवाजी की जय" का गर्जन वज्रनाद के समान सुनाई पड़ा। एक मुहूर्त्त तक सब उसी ओर देखते रहे। मालूम हुआ कि शत्रुओं की सेना से निकल कर मृतदेहों के ऊपर खड़ा हो, रुधिर से भीगे हुए अपने बर्छे के सहारे, एक महाराष्ट्र

योद्धा छलाँग मार कर मण्डल की भीत पर चढ़ गया है। उसने लात मार कर पठानों का झण्डा गिरा दिया और पताका-धारी प्रहरियों को तलवार से काट डाला। वही अपूर्व वीर प्राचीर के ऊपर खड़ा होकर वज्रनाद से "महाराज शिवाजी की जय" बोल रहा है। पाठकगण! यह आप का पूर्वपरिचित वीर रघुनाथ हवलदार है!

हिन्दू और मुसलमान लड़ाई छोड़कर अचम्भित होगये। सभों की आँखें वीर रघुनाथ की ओर लग गईं। वीर रघुनाथ का लौहनिर्मित शिरस्त्राण तारों की रोशनी में चमक रहा है। हाथ और बाहु रक्त से भीगे हुए हैं। विशाल वक्षःस्थल के ऊपर दो-एक तीर के घाव हैं। विशाल हाथ में रक्ताप्लुत दीर्घ बर्छी है। घूँघरवाले काले काले बालों से उज्ज्वल नयन आवृत हैं। यदि उस युद्ध की नौका रघुनाथ को कहें, तो शत्रु की सेना समुद्रतरङ्गवत् दोनों ओर से निकल गई, परन्तु उस कालरूपी बर्छीधारी के निकट जाने का किसी को साहस न हुआ। मालूम होता था कि स्वयं रणदेव ने दीर्घ बर्छी धारण कर आकाश से प्राचीर पर आगमन किया है।

थोड़ी देर तक सबके सब चुप रहे, परन्तु अफ़ग़ानों ने जब यह देखा कि दीवार पर विपक्ष का अधिकार होगया है, तब वे चारों ओर से धावा करने लगे। रघुनाथ चारों ओर से सेनारूपी कृष्णमेघ से घिर गया। यद्यपि रघुनाथ खड्ग और बर्छी चलाने में अद्वितीय था, परन्तु सैकड़ों सैनिकों के साथ एक वीर का युद्ध करना असम्भव है। अब रघुनाथ का जीवन संशय में है।

इसी समय रघुनाथ के विपुल साहस को देख कर मावले वीर बड़े विक्रम से उत्साहित हो प्राचीर की ओर दौड़े और

सिंह की भाँति छलाँग मार मार कर दीवार पर चढ़ने लगे। दस, पचास, सौ दो सौ सैनिक थोड़ी ही देर में दुर्ग के दोनों ओर जमा होगये। रघुनाथ को बीच में करके महाराष्ट्र वीर लड़ने लगे। फिर छुरी और खड्ग के आघात से पठानों की श्रेणी तितर-बितर होने लगी। थोड़ी देर में मार्ग अकण्टक होगया। सहस्रों महाराष्ट्र वीरों के सम्मुख तीन सौ पठान युद्ध नहीं कर सके।

उसी समय शिवाजी और तानाजी प्राचीर से कूद कर दुर्ग के भीतर की ओर दौड़ने लगे। सैन्य ने समझा कि वहाँ और लड़ाई करना व्यर्थ है। सबके सब स्वामी के पीछे भीतर ही की ओर दौड़ गये।

शिवाजी विद्युद्गति से क़िलेदार के दरवाज़े पर पहुँच गये। क़िलेदार का घर यद्यपि बड़ा मज़बूत और सुरक्षित था, परन्तु शिवाजी के आदेशानुसार योद्धाओं ने उसे घेर लिया और बाहर के सन्तरियों को मार डाला। शिवाजी ने बड़े ज़ोर से पुकार कर क़िलेदार से कहा—"दरवाज़ा खोल दो, नहीं तो घर फूँक दिया जायगा।" निर्भीक पठान ने उत्तर दिया—आग से भले ही जला दो, परन्तु काफ़िर के सामने दरवाज़ा नहीं खोलूँगा।

तुरन्त ही महाराष्ट्रगण मशालों के द्वारा उस घर में आग लगाने लगे। पठान क़िलेदार और उसके साथी लोग तीर चला चला कर आग के बुझाने की चेष्टा करने लगे परन्तु थोड़ी देर में आग भभक उठी। इस अग्निकाण्ड में कितने ही मसाल-धारी महाराष्ट्र-वीर भूतलशायी हो गये।

पहले द्वार और गवाक्ष, फिर जालियाँ और धन्नियाँ जलने लगीं। फिर सारा प्रासाद अग्निमय होगया और थोड़ी

देर में धायँ धायँ करके ज्वाला आकाशमण्डल को कम्पायमान करने लगी। सारी अन्धकारमय निशा प्रज्वलित हो उठी। दुर्ग के ऊपर, नीचे, जंगल, तराई और आस-पास के गाँवों में भी रोशनी पहुँचने लगी। उस दृश्य को देख कर सबने समझ लिया कि दुर्दमनीय शिवाजी और उनकी अप्रतिहत सेना ने मुसलमानों के दुर्ग को जीत लिया है।

वीरों के निकट जो कुछ साध्य है, पठान रहमतख़ाँ ने वह सब किया। अब केवल वीरों की भाँति प्राण त्याग करना शेष था। जब घर में आग ने अपना पूरा अधिकार जमा लिया तब उसी समय रहमतख़ाँ और उसके साथी कोठे पर से कूद कूद कर भूमि पर आ खड़े हुए। एक एक सैनिक महावीरों की भाँति तलवार चलाने लगा और वह बहुतों को घायल कर मरने लगा।

महाराष्ट्रों ने सारे मुग़लों को घेर लिया। अब मुसलमानों में एक एक की कमी होने लगी। इस प्रकार बहुत से हताहत हुए। रहमतख़ाँ भी आहत और क्षीण होगया, परन्तु सिंह के समान युद्ध करता ही रहा। महाराष्ट्रों ने चारों ओर से घेर कर उस पर तलवार चलानी चाही। अब उसके जीवन की आशा नहीं, परन्तु इसी समय शिवाजी ने बड़े ज़ोर से चिल्ला कर कहा—"क़िलेदार को मत मारो, उसे क़ैद कर लो।" क्षीण और आहत अफ़ग़ान के हाथ से सैनिकों ने तलवार छीन ली और उसके हाथ बाँध कर उसे क़ैद कर लिया।

अभी महाराष्ट्रगण आग को लगाते ही जाते थे कि उसी समय शिवाजी ने देखा कि दुर्ग के दूसरी ओर काले काले

बादलों की भाँति ५०० सुसज्जित अफ़ग़ान सैनिक क़िले पर चढ़ रहे हैं।

शिवाजी ने पहले जब सौ सैनिकों को क़िले की दूसरी ओर आक्रमण करने को भेजा था तभी बहुत से पठान यह समझ कर कि शिवाजी इधर ही से चढ़ाई कर रहा है, उधर टूट पड़े थे। चतुर महाराष्ट्रों ने एक क्षण भर वृक्षों की ओट से लड़ाई की, फिर धीरे धीरे नीचे उतरते गये। इसी कारण मुसलमान उत्साहित होकर उन्हीं सौ महाराष्ट्रों को खदेड़ने लगे। यहाँ कुछ और ही हुआ, अर्थात् दूसरी ओर से शिवाजी ने दुर्ग विजय कर लिया, जिसका कि उन मुसलमान सैनिकों को कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। परन्तु जब उन्होंने प्रासाद में आग लगी हुई देखी, और चारों ओर उजाला होगया, तब उन्हें मालूम हुआ कि आह! बड़ा भ्रम हुआ। अब फिर क़िले पर चढ़ जाना चाहिए और वहाँ जाकर उनका विध्वंस करना चाहिए।

शिवाजी ने केवल थोड़ी सी मुसलमान सेना को परास्त करके दुर्ग विजय कर लिया था! अब देखते हैं कि पाँच सौ सैनिक द्रुतवेग से क़िले पर चढ़ रहे हैं। शिवाजी का मुख गम्भीर होगया।

सुतीक्ष्ण-दृष्टि से देखा कि दुर्ग के मध्य में क़िलेदार के प्रासाद से बढ़कर कोई और दुर्गम स्थान नहीं है। चारों ओर खाइँ खुदी हैं। उसके पीछे पत्थर की भीतें भी बनी हैं। और आग से उन भीतों को कुछ भी क्षति नहीं पहुँची है। हाँ, महल के बीच में उसके द्वार और खिड़कियाँ जल कर गिर गई हैं और कोई कोई मकान भी फट गया है। बुद्धिमान् महाराज शिवाजी ने देख लिया कि अधिक सेना के साथ

युद्ध करने के लिए इससे उत्तम और कोई उपयोगी स्थान नहीं हो सकता।

क्षण भर में ही उन्होंने सब विचार कर लिया। तानाजी और दो सौ सैनिकों को उस प्रासाद में प्रवेश करने का आदेश हो गया। भीतों की बगलों में तीरंदाज़ रक्खे गये। प्रत्येक खिड़की पर भी तीरंदाज़ ही खड़े किये गये। दरवाज़ों पर बर्छाधारी खड़े हो गये। कहीं गिरी हुई राख को साफ़ करके पत्थरों को एकत्रित कर लिया। एक ही घड़ी में बहुत कुछ ठीक-ठाक हो गया। शिवाजी उस समय तानाजी से हँसकर कहने लगे—यदि शत्रु अब आक्रमण करें तो तुम उनसे भली भाँति रक्षा कर सकते हो, परन्तु ऐसा भी प्रतीत होता है कि शत्रु यहाँ पहुँचने के प्रथम ही परास्त हो जायँगे। यदि अन्धकार में एकदम उन पर चढ़ जायँ तो वे छिन्न-भिन्न होकर भागेंगे। तानाजी! तुम दो सौ सैनिकों को लेकर यहाँ रहो। मैं एक बार उद्योग कर देखूँ।

तानाजी—महाराज! तानाजी तो क्या, एक भी महाराष्ट्र योद्धा यहाँ नहीं रह सकता। क्षत्रियराज! सम्मुख समर करने में सभी चतुर हैं। जो यह स्थान घिर जाय तो आपके यहाँ रहे बिना किसकी बुद्धिमत्ता से यह राजमहल रक्षित होगा?

शिवाजी कुछ हँसकर बोले—तानाजी! तुम्हारी बात ठीक है। हम सामने शत्रु को देखकर युद्धाभिलाषी हुए हैं, परन्तु तुम्हारा परामर्श उत्कृष्ट है। यहाँ हमारा रहना उचित है। किन्तु हमारे हवलदारों में कौन ऐसा वीर है जो केवल दो सौ सवारों को साथ ले जाकर अँधेरे ही में सहसा आक्रमण करके अफ़गानों को परास्त कर दे?

पाँच, सात, दस हवलदार एकबारगी आगे खड़े हो गये। सभों ने एक स्वर से कहा—"हम परास्त करेंगे।" परन्तु रघुनाथ एक किनारे चुपचाप खड़ा रहा। उसने कुछ भी नहीं कहा।

शिवाजी धीरे धीरे सबकी ओर देखने लगे, फिर रघुनाथ की ओर देखकर कहा,—हवलदार! यद्यपि तुम इन सभों में छोटे हो परन्तु अपनी भुजाओं में महाबल रखते हो। आज मैं तुम्हारा विक्रम देखकर बड़ा सन्तुष्ट हुआ। रघुनाथ! तुमने आज दुर्गविजय का आरम्भ किया है, तुम्हीं उसका उपसंहार करो।

रघुनाथ चुपचाप नीचे सिर किये हुए, दो सौ सिपाहियों को साथ लेकर, बिजली के समान दम भर में बाहर जा पहुँचा। शिवाजी ने तानाजी की ओर देखकर कहा—यह हवलदार राजपूत है। इसके मुखमण्डल और आचरण को देखकर ज्ञात होता है कि यह कोई वीरवंशोद्भव योद्धा है। परन्तु यह कभी अपनी वंशपरम्परा की एक भी बात नहीं कहता। अपने असाधारण साहस की कोई गर्वित बात भी मुँह से नहीं निकालता। रघुनाथ ने एक दिन पूना में मेरे प्राणों की रक्षा की थी और आज दुर्ग-विजय में भी वही अग्रसर हुआ था, परन्तु हमने आज तक उसे कोई पुरस्कार नहीं दिया। कल सभा में राजा जयसिंह के सम्मुख राजपूत हवलदार को उचित पुरस्कार दूँगा।

रघुनाथ ने जिस कार्य्य का भार लिया था उसे पूरा किया। जब अफ़ग़ान लोग पर्वत पर चढ़ रहे थे उसी समय महाराष्ट्रगण उन पर बर्च्छी चलाने लगे। फिर "हर हर महादेव" के भीषण नाद से युद्ध का उपक्रम किया। वह वेग

बड़ा भयंकर था। अफ़ग़ानों के रोकने से नहीं रुका। पल भर में उनका मोर्चा उखड़ गया। वे लोग फिर पीछे लौट पड़े। उनका लौटना था कि मावले लोग छुरियों के आघात से उन्हें विच्छिन्न करने लगे। परन्तु रघुनाथ ने उच्चस्वर से आदेश किया—"भगोड़ों को जाने दो, उन्हें मारो मत। शिवाजी की आज्ञा का पालन करो।" लड़ाई ख़तम हुई। अफ़ग़ान पहाड़ का चढ़ना छोड़ नीचे उतर कर भागने लगे।

रघुनाथ ने दुर्ग के प्राचीर के स्थान स्थान पर प्रहरियों को स्थापित कर दिया और गोला-बारूद तथा अस्त्र-शस्त्र के घरों पर अपना पहरा बिठा दिया। दुर्ग के समस्त स्थानों को हस्तगत करके, उसे सुरक्षित कर रघुनाथ शिवाजी के पास आया और सिर नवाकर सारी कथा सुनाई।

उसी समय उषा की रक्तिमच्छटा पूर्व दिशा से दीख पड़ने लगी। प्रातःकालीन मन्द सुगन्धित शीतल समीर चलने लगा। अब दुर्ग में शान्ति है। कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता। मानों इस सुन्दर शान्त वृक्षशोभित पर्वत के शिखर पर किसी ऋषि मुनि का आश्रम है। ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों यहाँ कभी रण हुआ ही नहीं।

सोलहवाँ परिच्छेद

विजेता को पुरस्कार

"लिखत सुधाकर लिखिगा राहू, विधि गति वाम सदा सब काहू ॥"

—तुलसीदास ।

दूसरे दिन दोपहर के समय दुर्ग में एक सभा का आयोजन हुआ। चाँदी के बने हुए चार खम्भों पर लालवर्ण का शामियाना ताना गया। नीचे लाल कपड़ों से सजी हुई गद्दी पर राजा जयसिंह और राजा शिवाजी बैठे हैं। चारों ओर क्रमानुसार सैनिकगण विराजमान हैं। सभी बन्दूक, ढाल, और तलवारों से सुसज्जित हैं। उनकी बन्दूकों की किरचों में लाल रंग की पताकायें लगी हुई हैं, जो वायु में धीरे धीरे हिल रही हैं। चारों ओर दूसरे लोग बैठे हैं और दिल्लीश्वर की, महाराज जयसिंह की और महाराज शिवाजी की जयजयकार मना रहे हैं।

जयसिंह ने हँसकर शिवाजी से कहा—आपने जब से दिल्लीश्वर का पक्ष लिया है तब से आप उनके दाहिने हाथ बन गये। आपके इस उपकार को दिल्लीश्वर कभी नहीं भूलेंगे। जय तो मानों आपके सामने हाथ बाँधे तैयार है।

शिवाजी—जहाँ महाराज जयसिंह हैं वहीं जय है।

जयसिंह—हमारा अनुमान ऐसा अवश्य था कि विजयपुर हस्तगत होगा, परन्तु इतनी जल्दी नहीं कि बस एक ही रात में क़िला फ़तह !

शिवाजी—महाराज! दुर्ग-विजय की शिक्षा तो हमने लड़कपन ही से प्राप्त की है, तथापि जिस प्रकार हमने अनायास हस्तगत करने का विचार किया था, वह सिद्ध नहीं हुआ।

जयसिंह—क्यों?

शिवाजी—हमने विचार किया था कि मुसलमान सोते होंगे, परन्तु पहुँचने पर मालूम हुआ कि वे सबके सब जागते हैं और लड़ाई की प्रतीक्षा कर रहे हैं। इस दुर्ग के विजय करने में जैसी लड़ाई हुई और जितने वीर मारे गये, ऐसी क्षति पहले कभी किसी दुर्ग के विजय करने में नहीं उठानी पड़ी।

जयसिंह—शत्रु लोग यह विचार कर सदैव तैयार रहते हैं कि अब रात के समय भी लड़ाई होती है।

शिवाजी—सत्य है। परन्तु आज तक जितने दुर्ग विजय किये हैं, उनमें से किसी में भी ऐसी सजी सजाई सेना, मुझे तैयार नहीं मिली।

जयसिंह—शिक्षा पाकर लोग तैयार होते जाते हैं, परन्तु चाहे सतर्क रहें, अथवा न रहें, राजा शिवाजी की गति को रोकना असाध्य है—शिवाजी की जय अनिवार्य्य है।

शिवाजी—महाराज की कृपा से दुर्ग तो जीत लिया, परन्तु कल रात की क्षति इस जीवन में पूर्ण नहीं हो सकती। हज़ार आक्रमणकारियों में दो तीन सौ को हम अब इस संसार में नहीं देख सकते। उस प्रकार की दृढ़प्रतिज्ञ विश्वस्त सेना अब हमको नहीं मिल सकती।

शिवाजी क्षण भर के लिए शोकाकुल हो उठे, फिर आँखों के इशारे से बन्दियों के हाज़िर करने का आदेश किया।

रहमतख़ाँ की अधीनता में हज़ार जवान उस दुर्ग की रक्षा करते थे परन्तु कल्ह की लड़ाई में केवल ३०० सैनिक बन्दी हो सके। शेष या तो भाग गये या मारे गये। बन्दियों के दोनों हाथ पीछे बँधे हुए हैं। वे सब सभा में लाये गये।

शिवाजी ने आज्ञा दी—"सभों के हाथ खोल दिये जावें"। फिर उन्होंने कहा—अफ़ग़ानगण! तुमने वीरों का नाम रक्खा है। तुम्हारे आचरण से हम सन्तुष्ट हो गये हैं। अब तुम स्वाधीन हो। इच्छा हो तो दिल्लीश्वर के कार्य में नियुक्त हो जाओ, नहीं तो अपने स्वामी विजयपुर के सुलतान के पास चले जाओ। यह हमारी आज्ञा है। तुम्हारा कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता।

शिवाजी के इस आचरण को देख कर कोई विस्मित नहीं हुआ। सभी युद्धों में और सभी दुर्गों को जीतने के पश्चात् वह विजितगणों के प्रति यथेष्ट दया-प्रकाश करते हैं। इस कारण उनके कोई कोई मित्र उन्हें दोष देते हैं, किन्तु शिवाजी उसे स्वीकार नहीं करते। शिवाजी की ऐसी उदारता देख कर कुछ अफ़ग़ानों ने दिल्लीश्वर का वेतन-भोगी होना स्वीकार भी कर लिया।

तत्पश्चात् शिवाजी ने क़िलेदार रहमतख़ाँ को लाने का आदेश दिया। उसके भी दोनों हाथ पीछे की ओर बँधे हुए हैं। सिर में तलवार का घाव है। बाँह में तीर के चुभने से घाव हो गया है। वीर आकर सभा में तन कर खड़ा हो गया और वीरों की भाँति शिवाजी की ओर देखने लगा।

इस वीरश्रेष्ठ को देख शिवाजी आसन त्याग कर खड़े हो गये और अपनी तलवार से उसके बन्धन काट डाले, फिर धीरे धीरे कहने लगे—वीरवर! युद्ध के नियमानुसार आपके

हाथ बाँधे गये थे और आप एक रात बन्दी की भाँति रहे भी। मेरे इस दोष को आप क्षमा कीजिए। इस समय आप स्वाधीन हैं। जय-पराजय तो भाग्य के अनुसार होता है, परन्तु आप जैसे वीर के साथ लड़कर हम सम्मानित हो गये हैं।

रहमतखाँ कहाँ तो प्राणदण्ड की आशङ्का किये हुए था और कहाँ शिवाजी की यह भद्रता देखकर उसका हृदय विचलित हो गया। युद्ध के समय किसी ने कभी रहमतखाँ को कातर होते नहीं देखा। परन्तु आज वृद्ध योद्धा के दोनों उज्ज्वल नेत्रों से दो बूँद आँसू टपक ही पड़े। रहमतखाँ ने मुँह फेर कर उन्हें पोंछ डाला और धीरे धीरे कहा—क्षत्रियराज! कल रात को मैंने आपकी ताक़तेबाज़ू से शिकस्त खाई थी! लेकिन आज आपके अख़लाक़ से उससे कहीं ज़ियादा शिकस्त मिली। जो हिन्दुओं और मुसलमानों का मालिक है, जो बादशाहों का बादशाह है, और जो ज़मीनों-आसमाँ का सुलतान है उसी ने आपको सलतनत के विसअ़त की अक़्ल दी है।

जयसिंह—पठान सेनापति! आपने भी अपने उच्च पद की योग्यता को पूरी तरह निभाया। दिल्लीश्वर आप जैसे सेनापति को पाकर आपकी पद-वृद्धि करने में कोई कसर नहीं रक्खेंगे। क्या मैं दिल्लीश्वर को ऐसा पत्र लिख सकता हूँ कि आप जैसे भद्र सेनापति ने प्रधान कर्म्मचारी होना स्वीकार कर लिया है?

रहमतखाँ—महाराज! आपकी तहरीक से मुझे इज्ज़त मिली। मगर बचपन से जिसका नमक खा रहा हूँ उसके काम

को छोड़ नहीं सकता। जब तक हाथ में शमशीर पकड़ सकता हूँ तब तक विजयपुर के लिए ही लड़ूँगा।

शिवाजी—अच्छी बात है। आज की रात आप यहीं विश्राम करें। कल हमारी सेना आपको निरापद विजयपुर तक पहुँचा आवेगी।

रहमतख़ाँ—महाराज! आपने हमारे साथ सलूक किया है। इसलिए मैं भी आपके साथ बुराई नहीं कर सकता और न कोई बात पोशीदा रख सकता हूँ। आप अपनी फ़ौज में ख़ूब तलाश करके देखिए। सभी आपके ख़ैरख़्वाह नहीं हैं। कल लड़ाई के पहले ही ख़ुफ़िया तौर पर मुझे इसका पता चल गया था और यही सबब है कि सारी रात हम मुसल्लह लड़ाई के लिए तुले बैठे रहे। ख़बररसाँ आपका एक सैनिक है। इससे ज़्यादा हम और नहीं बता सकते। सचाई और क़ौलो-क़रार को तोड़ नहीं सकते।

इतना कहकर रहमतख़ाँ धीरे धीरे सन्तरियों के साथ घर की ओर चला गया। क्रोध के वेग से शिवाजी का मुखमण्डल एकदम काला सा हो गया। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं, शरीर काँपने लगा। शिवाजी के साथियों ने समझा, इस समय परामर्श देना वृथा है। लोगों ने समझ लिया कि बस आज कुशल नहीं है।

जयसिंह ने शिवाजी की ऐसी दशा देखकर कहा—"शान्त हो जाव।" फिर सिपाहियों को सम्बोधन करके कहा—इस दुर्ग की चढ़ाई की बात तुम्हें कब मालूम हुई थी?

सैन्य ने उत्तर दिया—महाराज! एक पहर रात व्यतीत हो जाने के पश्चात्।

जयसिंह—उसके पहले भी कोई कुछ जानता था?

सिपाही—बस, इतना कि आज रात को किसी दुर्ग पर आक्रमण किया जायगा। परन्तु किस दुर्ग पर आक्रमण होगा, उसका नाम नहीं मालूम था।

जयसिंह—भला, दुर्ग के निकट तुम किस समय पहुँच गये थे?

सिपाही—कोई छै घड़ी रात गये।

जयसिंह—अच्छा, एक पहर रात से छै घड़ी रात बीतने के बीच क्या तुम सब एकत्र थे? कोई अनुपस्थित तो नहीं था? यदि कोई रहा हो तो उसे प्रकाशित कर दो। देखो, एक के कारण हज़ारों अपमानित न हों। तुमने शिवाजी के अधीन देश देश और गाँव गाँव में लड़ाई की है। राजा तुम्हारा विश्वास करता है। तुम भी ऐसा प्रभु कभी नहीं पाओगे। तुम भी अपने विश्वास-योग्य होने का प्रमाण दो। यदि कोई विद्रोही है तो उसे सम्मुख लाओ। यदि वह कल की लड़ाई में मारा गया है तो उसका नाम बताओ। यों सन्देहवश सब कोई क्यों कलुषित होते हो?

सब सेना के सिपाही कल की बातें स्मरण करने लगे और आपस में बातचीत भी करने लगे। शिवाजी का क्रोध कुछ शान्त हुआ। सावधान होकर उन्होंने कहा—महाराज! यदि आप उस कपटाचारी योद्धा को बता दें तो मैं चिरकाल तक आपका ऋणी रहूँगा।

चन्द्रराव नामक एक जुमलेदार ने अग्रसर हो धीरे से कहा—महाराज! कल जब एक पहर रात गये हम लोग युद्ध की यात्रा कर रहे थे उस समय मेरा मातहत एक हवलदार खोजने पर भी नहीं मिला था, परन्तु दुर्ग के नीचे वह मिल गया था।

शिवाजी—वह कौन है? क्या वह अभी तक जीवित है?

विद्रोही का नाम सुनकर सबके सब सन्न हो गये! किसी के श्वास-प्रश्वास का शब्द भी सुनाई नहीं पड़ता था। यदि उस समय सुई भूमि पर गिर पड़ती तो उसके गिरने का शब्द भी सुन पड़ता।

रघुनाथ हवलदार का नाम सुनकर सभी विस्मय-युक्त हो गये।

चन्द्रराव एक प्रसिद्ध योद्धा था, परन्तु रघुनाथ के आने से उसका नाम, उसकी ख्याति विस्मृत हो चली थी। मनुष्य के स्वभाव में ईर्ष्या के समान भयङ्कर और बलवती कोई शक्ति नहीं है।

शिवाजी का मुखमण्डल फिर कृष्णवर्ण हो गया। वे दाँतों से होठों को दबाकर क्रोध के साथ बोले—निन्दक, कपटाचारी! तेरी निन्दा रघुनाथ के यश को स्पर्श नहीं कर सकती। मैंने रघुनाथ का आचरण अपनी आँखों देखा है। मिथ्या-निन्दक को सेना दण्ड दे।

वज्रसमान बर्छे को तौल कर ज्योंही शिवाजी ने चन्द्रराव पर वार करना चाहा त्योंही रघुनाथ सम्मुख आकर खड़ा हो गया और कहने लगा—

"महाराज! चन्द्रराव का प्राण-संहार न कीजिए। वह झूठ नहीं कहते हैं। मुझे अवश्य दुर्ग तले पहुँचने में विलम्ब हो गया था।"

सभा फिर निस्तब्ध हो गई। सबके सब अवाक् हो गये।

शिवाजी क्षण भर के लिए मूर्तिवत् निश्चेष्ट हो गये। फिर धीरे धीरे ललाट के स्वेद-बिन्दुओं को पोंछकर बोले—मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ? रघुनाथ, तुमने यह क्या कार्य किया है?

प्राचीर-लङ्घन के समय अद्भुत विक्रम दिखा कर क्या तुम सबसे अग्रसर नहीं हुए थे? और २०० सिपाहियों को लेकर तुमने अफ़ग़ानों को परास्त नहीं किया था? क्या यह सब इसी लिए किया था कि शत्रुओं को इसका संवाद दे चुके थे?

रघुनाथ ने धीरे से कहा—प्रभु! मैं इस दोष से निर्लिप्त हूँ।

दीर्घकाय निर्भीक तरुण योद्धा, शिवाजी के क्रोधानल के सम्मुख, निष्कम्प हो कर खड़ा है। पलक भी नहीं मारता। सारी सभा और असंख्य लोग तीव्र दृष्टि से रघुनाथ को देख रहे हैं। रघुनाथ स्थिर, अविचल, अकम्पित है। उसके विशाल वक्षःस्थल से केवल गम्भीर निःश्वास की आवाज़ आ रही है। कल जिस प्रकार वह असंख्य शत्रुओं के बीच में खड़ा था, आज उसकी भी अपेक्षा अधिक सङ्कट में घिर कर उसी प्रकार अविचल है।

शिवाजी गर्ज कर बोले—फिर किस लिए मेरी आज्ञा का उल्लङ्घन करके एक पहर रात तक अनुपस्थित थे?

रघुनाथ के अधर कुछ काँप गये, परन्तु वह कुछ उत्तर न देकर चुपचाप भूमि की ओर देखने लगा।

रघुनाथ को चुप देखकर शिवाजी का सन्देह बढ़ गया। दोनों आँखें लाल होगईं। उन्होंने क्रोध से कम्पित होकर कहा—कपटाचारिन्! इसी कारण वीरत्व प्रदर्शन किया था? परन्तु खोटी घड़ी में शिवाजी को छलने की चेष्टा की थी।

रघुनाथ ने उसी प्रकार धीर अकम्पित स्वर से कहा—राजन्! छल और कपटाचरण हमारे वंश की रीति नहीं है। चन्द्रराव भी इस बात को जानते हैं।

रघुनाथ के इस स्थिर भाव ने शिवाजी के क्रोधानल में आहुति का काम किया। उन्होंने कर्कश भाव में कहा—पापिष्ठ!

बचने की चेष्टा वृथा है। क्षुधार्त्त सिंह के ग्रास से बचकर भाग जाना सम्भव है, परन्तु मेरे क्रोध से बच जाना सम्भव नहीं।

रघुनाथ ने पूर्ववत् धीरे से जवाब दिया—मैं महाराज के निकट परित्राण की प्रार्थना नहीं करता; मनुष्यमात्र के निकट क्षमा की प्रार्थना भी नहीं कर सकता। भगवन्! तुम मेरे दोष को क्षमा करो।

शिवाजी ने उन्मत्त की भाँति बरछा उठा कर वज्र-नाद से आदेश किया—विद्रोहाचरण करनेवाले को प्राणदण्ड होना चाहिए।

रघुनाथ वज्रसमान बर्छे को देखकर ज़रा भी चलायमान नहीं हुआ। उसने कहा—योद्धा मरने के लिए तैयार है, परन्तु इसने विद्रोहाचरण नहीं किया।

शिवाजी से और नहीं सहा गया। अव्यर्थ मुष्टि में बर्छा काँप गया। परन्तु उसी समय राजा जयसिंह ने उनका हाथ पकड़ लिया।

उस समय क्रोध के मारे शिवाजी का मुख-मण्डल विकृत हो गया था, शरीर काँप रहा था। वह जयसिंह का समुचित सम्मान करना भी भूल गये और कर्कश शब्दों में कहने लगे—हाथ छोड़ दो। मैं नहीं जानता कि राजपूतों का क्या नियम है और न उसके जानने की मुझे आवश्यकता है। महाराष्ट्रीय सनातन नियम यही है कि विद्रोही को प्राणदण्ड देना चाहिए। शिवाजी उसी का पालन करेगा।

जयसिंह ने कुछ भी क्रोध न करके धीरे से कहा—क्षत्रिय-राज! आज आप जो कर रहे हैं कल उसको समझ कर पछतावेंगे। यदि इसको आज प्राणदण्ड देंगे तो जन्म भर इसका

खेद रहेगा। लड़ाई करते करते हमारे बाल पके हैं। हमारी बात मानो। यह योद्धा विद्रोही नहीं है, किन्तु इसका न्याय करने की भी इस समय आवश्यकता नहीं। आप मेरे सुहृद् हैं। इस-लिए मैं अपने सुहृद् के निकट इस राजपूत योद्धा की प्राण-भिक्षा चाहता हूँ। मुझे भिक्षा-दान दीजिए।

जयसिंह की भद्रता देख कर शिवाजी अप्रतिभ हो गये। धीरे से उन्होंने उत्तर दिया—तात! मेरी ढिठाई क्षमा कीजिए। आपकी बात की कभी अवहेला नहीं की जा सकती, परन्तु शिवाजी विद्रोही को क्षमा करे—इस बात पर किसी को विश्वास न होगा। हवलदार! राजा जयसिंह ने तुम्हारी जीवन-रक्षा की है। अब हमारे सम्मुख से हट जाओ। शिवाजी विद्रोही के मुख का दर्शन नहीं किया चाहता।

सभा-स्थल से रघुनाथ चलने ही वाला था कि शिवाजी ने फिर कहा—ठहर जाओ, दो वर्ष हुए कि तुम्हारी कमर में मैंने ही यह तलवार बाँध दी थी। विद्रोही के पास इस खड्ग का रहना उचित नहीं। क्षत्रियगण! तलवार छीन लो, फिर इस विद्रोही को क़िले से बाहर निकाल दो।

रघुनाथ को जब प्राणदण्ड की आज्ञा हुई थी तब वह विच-लित नहीं हुआ था, किन्तु जब पहरेदार उससे तलवार छीनने लगे तब उसका शरीर काँप गया, दोनों आँखें लाल हो गईं, परन्तु उसने अपने क्रोध को दबा रक्खा और शिवाजी की ओर एक बार देख भूमि तक सिर नवा कर चुपचाप दुर्ग से बाहर चला गया।

सन्ध्या की छाया क्रमानुसार गाढ़तर होकर जगत् को आवृत करने लगी। एक पथिक अकेला, सुनसान पर्वत से

होकर, मैदान की ओर चला जा रहा है। कभी गाँव में होकर कभी गाँव से बहार ही बाहर निकल जाता है। अन्धकार गम्भीर होगया। आकाश बादलों से ढक गया। रुक रुक कर रात्रि-समीरण चलने लगा। फिर अँधेरे में वह पथिक दृष्टि न आया और न उसके पश्चात् किसी ने उसे देखा।

सत्रहवाँ परिच्छेद

चन्द्रराव जुमलेदार

खाकर लात शान्त जो रहते साधु नहीं वह पूरे मूर्ख।
मारो लात धूल पर देखो हो जावेगी सिर आरूढ़॥
रिपु से बदला लिये बिना ही कायर नर रह जाते हैं।
तेजस्वी जन उसके सिर पर पद रख यश फैलाते हैं॥

—रामचरित उपाध्याय।

चन्द्रराव जुमलेदार के साथ हमारा यह प्रथम परिचय है। वह बड़ा बुद्धिमान् और असाधारण बलशाली है। चन्द्रराव अपनी प्रतिज्ञा का बड़ा पक्का है। यद्यपि वह रघुनाथ से ५ या ६ ही वर्ष बड़ा है; परन्तु दूर से देखने पर ४० वर्ष का मालूम होता है। इस अवस्था में ही उसके विशाल ललाट पर चिन्ता की दो एक रेखायें देखी जाती हैं। सिर के दो चार बाल भी पक गये हैं। आँखें छोटी हैं सही परन्तु उजली हैं। चन्द्रराव को जो लोग अच्छी तरह जानते हैं उनका कथन है कि जिस प्रकार वह तेज और साहस में दुर्दमनीय है उसी प्रकार वह विकट गम्भीर और स्थिरप्रतिज्ञ भी है। सारे बदन पर दो एक भाव विशेष रूप से व्यक्त थे। सारा बदन मानों लोहे का बना हुआ है। जिन्हें चन्द्रराव के गुणों का ज्ञान था वह कभी भूल कर भी उससे विवाद नहीं करते थे। इसके अतिरिक्त चन्द्रराव में एक और गुण कहिए अथवा दोष यह था कि जिसको कोई दूसरा नहीं जान

सकता था—कि विजातियों की उच्च अभिलाषायें उसके हृदय को आग की भाँति जलाया करती थीं। वह अपने असाधारण बुद्धि-बल से आत्मोन्नति का आविष्कार करता, अतुल दृढ़ प्रतिज्ञा सहित उसका अवलम्बन करता और खड्ग द्वारा उस मार्ग को निष्कण्टक करता था। शत्रु हो चाहे मित्र, दोषी हो अथवा निर्दोष, अपकारी हो या परोपकारी, कोई भी हो, जो उसके मार्ग का बाधक होता उसे वह साफ़ कर डालता था। अभाग्य-वश आज रघुनाथ उस मार्ग में पड़ गया था, इसी लिए उसको जुमलेदार ने निःसङ्कोच हो पतंगे की भाँति अलग करके अपनी ख्याति के मार्ग को अकण्टक कर लिया। इस प्रकार के असा-धारण मनुष्य का पूर्व वृत्तान्त जानना आवश्यक है। इसके साथ ही साथ रघुनाथ के वंश का भी कुछ कुछ पता मिल जायगा। सुनिए;—

चन्द्रराव भी रघुनाथ का कुछ वृत्तान्त प्रकट नहीं करता था। राजा यशवंतसिंह के प्रधान सेनापति गजपतिसिंह ने चन्द्रराव के लड़कपन में उसका लालन-पालन किया था। अनाथ चन्द्रराव गजपति के घर का काम-काज करता, उसके लड़के और लड़की की सेवा करता तथा युद्ध के समय गजपति के साथ हो लेता।

चन्द्रराव जब केवल पन्द्रह वर्ष का था तभी गजपति उसके गम्भीर विचार, दुर्दमनीय तेज एवं दृढ़ प्रतिज्ञा को देख कर आनन्द में मग्न हो गया था। अपने पुत्र रघुनाथ की भाँति चन्द्रराव को भी जानने लगा और उसे अपनी सेना में सम्मि-लित कर लिया।

सेना में शामिल होते ही चन्द्रराव अपनी गम्भीरता और अपने विक्रम के प्रताप से दिन दिन ऐसा यशोलाभ करता गया

कि पुराने सैनिक चकित हो गये। लड़ाई के समय जब कठिन समय आ पड़ता, प्राण जाने की संभावना होती, शत्रु तथा मित्र की लोथें पड़ी रहतीं, रुधिर बहता, आकाश धूलि से आच्छादित हो जाता, वीरों के सिंहनाद और घायलों के आर्त्तनाद से कान के पर्दे फटने लगते तब वहाँ पर यदि कोई धीर गम्भीर योद्धा देखा जाता तो यही चन्द्रराव। यह १५ वर्ष का बालक वहाँ चुपचाप खड़ा महाविक्रम दिखाता; मुँह से कुछ भी न कहता परन्तु नेत्र अग्नि के समान चमकाता रहता, माथे में क्रोध के चिह्न विदित होते। युद्ध समाप्त होने पर जहाँ विजयी सिपाही एकत्र होकर रात्रि में गीत इत्यादि गाते, हँसी-दिल्लगी करते वहाँ चन्द्रराव अकेला डेरे में पड़ा रहता अथवा नदी या पहाड़ के पार्श्व में चुपचाप बैठा कुछ सोचा करता। चन्द्रराव के उद्देश अब कुछ कुछ सिद्ध हो गये। अब वह अज्ञात राजपुत्र-शिशु नहीं है। उसका पद बढ़ गया है। गजपतिसिंह की सेना में चन्द्रराव असाधारण वीर के नाम से प्रसिद्ध है। मर्य्यादा-वृद्धि के साथ ही साथ चन्द्रराव के गर्व की सीमा भी विस्तृत होती जाती है।

एक दिन, एक लड़ाई में, चन्द्रराव ने गजपति को बड़ी भारी आपदा से बचाया था। इसलिए गजपति ने लड़ाई के अन्त में उसको पास बुलाकर सबके सामने यथोचित सम्मानित किया और कहा—चन्द्रराव! आज तुम्हारे साहस ने हमारे प्राणों की रक्षा की है। इसका तुम्हें क्या पुरस्कार दिया जावे?

चन्द्रराव नीची निगाह करके चुप हो रहा। गजपति ने फिर स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा—सोच लो अर्थ, क्षमता, पदवृद्धि जो तुम्हारी इच्छा हो, माँगो। चन्द्रराव! तुम्हारे लिए हम सब कुछ दे सकते हैं।

अब चन्द्रराव ने धीरे धीरे आँख उठा कर कहा—राजपूत वीर कभी अन्यथा अङ्गीकार नहीं करते। वीरश्रेष्ठ! अपनी कन्या लक्ष्मी देवी का मेरे साथ विवाह कर दीजिए।

सारी सभा सन्न हो गई! गजपति के सिर पर तो मानों आकाश फट पड़ा। क्रोध के कारण सारा शरीर काँपने लगा। म्यान से तलवार कुछ कुछ बाहर निकल आई, परन्तु क्रोध को दबा कर गजपति ने ज़ोर से हँस कर कहा—अङ्गीकार का पालन करना स्वीकार करता हूँ परन्तु तुम्हारा जन्म महाराष्ट्र देश में हुआ है। राजपूत-दुहिता को महाराष्ट्र दस्युओं की भाँति पर्वत-कन्दराओं और जङ्गलों में रहने का अभ्यास नहीं है। पहले लक्ष्मी के रहने के लिए उपयुक्त वासस्थान निर्म्माण कर लो। जङ्गली कुटियों और पर्वत-कन्दराओं को ठीक कर लो। दस्यु से अपना नाम परिवर्त्तित करके योद्धा बना लो। फिर राजपूत-दुहिता के साथ विवाह करने की कामना करो। इस समय यदि और कोई कामना हो तो उसको प्रकट करो।

चन्द्रराव ने फिर धीरे धीरे कहा—और कोई चाहना नहीं है। ज़ो इच्छा थी उसे प्रभु के सामने प्रकट कर दिया।

सभा भङ्ग हुई। सब अपने अपने शिविर में चले गये। उदारचेता गजपति को चन्द्रराव के ऊपर जो क्रोध हुआ था उसे वह सदा के लिए भूल गया। परन्तु चन्द्रराव को यह बात विस्मृत न हुई। शाम के वक़् वह अपने डेरे में पहुँच कर चुपचाप कुछ सोचने लगा। यद्यपि इस समय रजनी अन्धकार से आच्छादित हो रही है परन्तु चन्द्रराव के मस्तिष्क में जिस घोर अँधेरे का प्रवेश हो रहा है, वह उससे शतगुणित काला है, नहीं नहीं वह विष है।

थोड़ी देर के बाद चन्द्रराव ने एक दीपक जलाया। वह चुपचाप न मालूम एक पुस्तक में क्या लिखने लगा। लिख लेने के बाद पुस्तक को बन्द कर दिया; फिर खोला, कुछ और देखा, फिर बन्द कर दिया और विकट हास्य किया। उसी समय उसके एक मित्र ने आकर पूछा—"चन्द्रराव! तुम क्या लिखते थे?" उसने जल्दी से उत्तर दिया—कुछ नहीं, हिसाब लिख रहा था। मैं किसका कितना ऋणी हूँ—यही देख रहा था।

मित्र चला गया। चन्द्रराव ने फिर कापी खोली। वास्तव में वह हिसाब की किताब है। चन्द्रराव ने उसमें एक ऋण की बात लिखी थी।

इस घटना को हुए एक वर्ष व्यतीत हो गया। तत्पश्चात् औरङ्ग़ज़ेब और राजा यशवन्तसिंह से उज्जैन में लड़ाई ठन गई। इस लड़ाई में गजपतिसिंह मारे गये। "माधवी-कङ्कण"* नामक उपन्यास में इसका विशेष वर्णन है। पाठक उसे पढ़ कर लाभ उठा सकते हैं।

गजपति के अनाथ बालक और बालिका दोनों महाराष्ट्र से फिर मेवाड़ के सूर्य्यमण्डल नामक दुर्ग में वापस आ रहे थे। रघुनाथ उस समय १२ वर्ष का था और लक्ष्मी उससे एक वर्ष छोटी थी। रास्ते में लुटेरों ने इन अनाथ बालक-बालिका के संरक्षकों को मार डाला और उन्हें फिर महाराष्ट्र देश की ओर ले चले। लड़का बचपन से ही तेजस्वी था। अवसर पाकर एक रात को वह लुटेरों के हाथ से निकल भागा। परन्तु कन्या से लुटेरों के जिस सरदार ने ज़बर्दस्ती विवाह कर लिया, वह चन्द्रराव था।

*यह इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग से मिलता है

तीक्ष्णबुद्धि चन्द्रराव के मनोरथ बहुत कुछ सफल होते गये। वह गजपति के घर से बहुत सा धन लूट लाया था। उससे एक बहुत बड़ी जागीर मोल ली और दक्षिण में प्रतिष्ठित मनुष्य हो गया। चन्द्रराव भी एक प्राचीन राजपूत-वंश में उत्पन्न हुआ था, इसमें किसी को सन्देह नहीं था। फिर प्रसिद्ध गजपतिसिंह की एक-मात्र कन्या से विवाह करके तो वह और भी बड़ा बन गया। चन्द्रराव के साहस और विक्रम को देख कर शिवाजी ने उसे जुमलेदार का पद प्रदान किया। लोग ऐसे बड़े भारी मनुष्य का समादर किया ही करते हैं। अब दिन दिन चन्द्रराव की यशोवृद्धि होने लगी। रघुनाथ ने बीच बीच में कई बार उसकी उज्ज्वल कीर्ति पर धब्बा लगाया था। इसी कारण जुमलेदार ने इस कण्टक को साफ़ कर डाला।

अट्ठारहवाँ परिच्छेद

लक्ष्मीबाई

बिना कहेही व्यक्त कर रही करुण कहानी।
दुखिनी आंखें और कान्ति मुख की कुम्हिलानी॥
बोल रहा प्रत्यंग कि माँ की गोद न जानी।
बढ़ा हुआ था द्वार द्वार का दाना पानी॥
वाम विधाता ने किये जो जो अत्याचार हैं।
मुख-मुद्रा से हो रहे ज़ाहिर सब आसार हैं॥

—सनेही।

बारह वर्ष की अवस्था में रघुनाथ, दस्युवेशी चन्द्रराव के आक्रमण से बचकर, राजपूताने में न जा सीधा महाराष्ट्र देश की ओर चला गया। रास्ते में वह कभी पर्व्वत-कन्दराओं में से होकर, कभी वन में प्रवेश करके और कभी गाँव में से निकल जाता। जिस घर के सामने वह खड़ा हो जाता, कोई भी एक मुट्ठी अनाज देने से इनकार न करता।

चार पाँच वर्ष तक रघुनाथ कई एक स्थानों में भटकता रहा। संसाररूपी अनन्त-सागर में अनाथ बालक अकेला बह निकला। उसने नाना प्रदेशों का पर्य्यटन किया, नाना व्यक्तियों से शिक्षा ली और दासत्ववृत्ति अवलम्बन करके जीवन-निर्वाह किया। यद्यपि पूर्व-गौरव की कथा, पिता के वीरत्व और उनके सम्मान की कथा, बालक के मन में सर्वदा जागृत होती, परन्तु

अभिमानी बालक उस बात को और अपने कष्टों को किसी पर प्रकट नहीं करता। कभी कभी दुःखभार से विह्वल हो एकान्त स्थान में अथवा पर्वतश्रेणी पर बैठ वह जी भर कर रोया करता, और फिर आँखें पोंछ अपने काम पर चला जाता।

ज्यों ज्यों आयु बढ़ती गई त्यों त्यों उसके मन में वंशोचित भाव भी बढ़ने लगे। अल्पवयस रघुनाथ कभी कभी गुप्त भाव से अपने प्रभु का टोप सिर पर धर लेता, कभी उनका खड्ग अपनी कमर में लटका लेता और शाम के वक्त मैदान में बैठकर स्वदेशीय चारणों का गान उच्च स्वर से गाता। जब कोई पथिक सुनसान रजनी में संग्रामसिंह और राणा प्रताप का गीत सुनता तब चकित हो जाता। इसी प्रकार कालक्षेप करके जब रघुनाथ १८ वर्ष का हो गया तब उसने शिवाजी के वीर्य्य और उनकी कीर्ति तथा उद्देश पर विचार किया। राजस्थान की भाँति महाराष्ट्र देश भी स्वतन्त्र हो जायगा, शिवाजी दक्षिण देश में हिन्दू-राज्य विस्तारित करेंगे—इन्हीं विचारों को सोचते सोचते बालक का हृदय शिवाजी का प्रेमी बन गया।

मनुष्यों के भावों को जानने में शिवाजी अद्वितीय थे। कुछ दिन बाद रघुनाथ को भी पहचान लिया और हवलदारी के पद पर उसे नियुक्त कर दिया, जिसके कई महीने बाद उसे तोरण दुर्ग भेजा था।

रघुनाथ के साथ हमारा परिचय पहले भी हो चुका है। शिवाजी के यहाँ जब रघुनाथ आया था उस समय चन्द्रराव जुमलेदार के अधीनस्थ एक हवलदार की मौत हो गई थी। इस प्रकार उस ख़ाली जगह पर रघुनाथ नियुक्त होगया। उसने चन्द्रराव को अपने पिता का पुरातन भृत्य और अपना बालसखा कहकर सम्बोधित किया, परन्तु उसे इस बात की ख़बर

नहीं थी कि यही दस्यु लक्ष्मी का पति भी है। इसीलिए वह सानन्द उससे वार्तालाप करता। यद्यपि चन्द्रराव ने रघुनाथ की अभ्यर्थना की, परन्तु अल्पभाषी जुमलेदार के ललाट पर आज भी चिन्ता के चिह्न देख पड़े।

शिवाजी से कुछ दिन की छुट्टी लेकर चन्द्रराव अपने घर चला गया। पाठकगण, चलिए अब आपको एक भले घर की सैर करावें।

जुमलेदार अपने घर पहुँच गया। दरवाज़े पर नौवत बजने लगी। असंख्य दास-दासियाँ हाज़िर होगईं। लोग मिलने को आने लगे। इस प्रकार चन्द्रराव के आने की ख़वर बहुत दूर दूर तक फैल गई। जुमलेदार के घर में बड़ी भीड़ लगी हुई है। उस भीड़ के बीच में शान्तनयना, क्षीणाङ्गी लक्ष्मीवाई अपने स्वामी की अभ्यर्थना करने को उत्सुक है।

लक्ष्मीवाई यथार्थ में लक्ष्मी-स्वरूपा, शान्त, धीर, बुद्धिमती और पतिव्रता स्त्री है। बाल्यकाल में पिता की आदरमयी कन्या थी, परन्तु कोमल अवस्था ही में विदेशीय अपरिचित व्यक्तियों के बीच अल्पभाषी, कठोर स्वभाववाले स्वामी की उसे अर्द्धाङ्गिनी बनना पड़ा। इस कारण वृक्ष से गिरे हुए कोमल फूल की भाँति लक्ष्मी दिन दिन सूखने लगी। कई वर्ष से लड़की शोकाच्छन्न है, परन्तु वह अपना दुःख किससे कहे? कौन उसे धैर्य्य बँधावे? लक्ष्मी पहली बातें याद करती; पिता, माता और भाई को याद करके रोया भी करती।

शोक पड़ने अथवा कष्ट सहन करने से हमारी बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है; हमारा मन शान्त और सहनशील हो जाता है। बालिका दो एक वर्ष के ही भीतर संसार के कार्य्य को सम्पादन करने लगी और स्वामी की सेवा में रत होगई। हिन्दू-रमणी

को पति के भिन्न और कोई गति नहीं है। स्वामी यदि सहृदय और दयावान् हुआ तो नारी सानन्द उसकी सेवा करती है परन्तु यदि वह निर्दयी और कठोर हुआ तो भी स्त्री को स्वामी के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं। चन्द्रराव के हृदय में प्रेम का बीज ही नहीं पड़ा था। हाँ, अभिलाषा और अपूर्व विक्रम से उसका हृदय परिपूर्ण था, तथापि वह असहाय नारी के प्रति निर्दयी न था। नम्रमुखी, नम्रहृदया लक्ष्मीबाई के प्रेम से चन्द्रराव सन्तुष्ट रहता और लड़ाई से अवकाश मिलने पर लक्ष्मीबाई ही से मिल कर शान्ति लाभ करता और लक्ष्मीबाई भी उसके लड़ाई के समाचारों को सुनकर बड़ी प्रसन्न होती।

इसी प्रकार संसारी कार्य्य और पति-सेवा करते करते वर्ष पर वर्ष व्यतीत होने लगा। लक्ष्मी यौवनावस्था को प्राप्त हुई, परन्तु इसकी यौवनावस्था शान्त और निरुद्वेग थी। वह पुरानी बातों को प्रायः भूल सी गई, अथवा सायंकाल के समय जब कभी राजस्थान की कथा याद पड़ जाती; बाल्यकाल के सुख, बाल्यावस्था की क्रीड़ायें और प्राण-स्वरूप भ्राता रघुनाथ के प्रेम से रमणी विह्वल हो जाती, तब आँखों से आँसू बह निकलते परन्तु वह चुपचाप अपने आँसुओं को पोंछ कर फिर गृहकार्य्य में लग जाती।

आज जब चन्द्रराव भोजन करने बैठा, लक्ष्मीबाई भी एक ओर बैठकर पङ्खा करने लगी। लक्ष्मीबाई इस समय १७ वर्ष की युवती है। शरीर कोमल, उज्ज्वल, लावण्यमय किन्तु कुछेक क्षीण है। भौंहें कैसी सुन्दर और मनोहर हैं, मानों उस स्वच्छ ललाट में कमल-नाल बनाये गये हैं। शान्त, कोमल, काले नेत्रों में मानों चिन्ता ने अपना घर बना लिया है। गंडस्थल सुन्दर सुचिक्कण तो हैं परन्तु कुछ पीले पड़ गये हैं; सारा शरीर शान्त

और क्षीण है। जवानी की अपूर्व सुन्दरता विकसित तो हुई है, किन्तु वह यौवन की प्रफुल्लता और उन्मत्तता कहाँ? अहा! राजस्थान का यह अपूर्व पुष्प महाराष्ट्र देश में सौन्दर्य्य और सुगन्धि वितरण कर रहा है, किन्तु जीवनाभाव के कारण शुष्क सा हो रहा है। लक्ष्मीबाई के सुन्दर नेत्र, सुदीर्घ केशभार और कोमल बाहुयुगल देहरूपी लता पर मुक्ता पिरो रहे हैं। परन्तु हा! यह हैं किसके?

एक दिन चन्द्रराव ने भी लक्ष्मी को बता दिया था कि तुम्हारा भाई रघुनाथ हमारे अधीन एक हवलदार के पद पर नियुक्त है और बड़ा यश प्राप्त कर रहा है। परन्तु इतनी बात सुनाने के बाद ही चन्द्रराव के मस्तक पर शोक के चिह्न प्रकट हो गये थे। लक्ष्मी को चन्द्रराव की यह दशा देखकर उसी समय सन्देह हो गया था।

एक दिन स्वामी की दो एक मीठी मीठी बातों से पुलकित हो लक्ष्मी उसके चरणों के समीप आ बैठी और विनीत भाव से कहने लगी—दासी का एक निवेदन है, परन्तु कहते डर लगता है।

चन्द्रराव लेटे लेटे पान चबा रहा था। बड़े स्नेह से बोला—कहो, क्या है?

लक्ष्मी ने कहा—मेरा भाई अज्ञान बालक है।

चन्द्रराव का चेहरा गम्भीर हो गया।

लक्ष्मी—वह आपका भृत्य है और आपही के अधीन है।

चन्द्रराव—नहीं तो, वह तो हमसे भी अधिक शूरवीर के नाम से प्रसिद्ध है।

बुद्धिमती लक्ष्मी ने समझ लिया कि जिस बात की आशङ्का थी वह सत्य निकली। रघुनाथ भैया के ऊपर स्वामी बड़े क्रुद्ध

हैं। थोड़ी देर के लिए लक्ष्मी सहम गई। फिर सँभल कर बोली—स्वामिन्! बालक यदि कुछ भूल भी कर जाय तो आप उसे क्षमा न करेंगे तो और कौन क्षमा करनेवाला है?

चन्द्रराव का चेहरा और भी बिगड़ गया। लक्ष्मी ने समझ लिया कि अब और कुछ कहना ठीक नहीं।

पाठकगण! ऊपर की घटना होने के दिन से आज ही फिर चन्द्रराव घर को लौटा है। रघुनाथ के ऊपर जो कुछ बीती है उसे लक्ष्मी कुछ भी नहीं जानती, परन्तु आज उसका हृदय चिन्ताकुल है; मुँह खोलकर कुछ बात नहीं कर सकती परन्तु फिर भी उसने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि जब रात के समय स्वामी सोने आवेंगे, तब भैया का हाल अवश्य पूछूँगी।

चन्द्रराव भोजन करने के पश्चात् सीधे शयनागार में चले आये। लक्ष्मी हाथ में पान का बीड़ा लिये खड़ी थी। परन्तु उसने देखा कि स्वामी का ललाट चिन्तायुक्त है, इसलिए तुरन्त पान थमा कर आप वहाँ से चली गई। चन्द्रराव ने भी बड़ी सतर्कता से द्वार बन्द कर लिया।

चन्द्रराव ने एक गुप्त स्थान से धीरे धीरे एक पुस्तक बाहर निकाली। पुस्तक क्या बहीखाता है। प्रायः दस वर्ष हुए कि जब गजपतिसिंह की सभा में चन्द्रराव अपमानित हुआ था तभी उसने अपनी पुस्तक में कुछ हिसाब लिखा था। हमारे पाठक उसे भूले न होंगे। पुस्तक में एक ऋण का ब्योरा दिया हुआ है। उसी को खोलकर चन्द्रराव विचार कर रहा है—

"महाजन......................गजपति

"ऋण·····························अपमान

"परिशोध···उसके शोणित से, उसके वंश के अपमान से।"

उसने एक बार दो बार इन्हीं अक्षरों को देखा। उसके विकट मुखमण्डल पर एक विकट हास्य का चिह्न सा बन गया। तुरन्त ही उसने उसी पुस्तक में इन शब्दों के सामने लिख दिया—"आज ऋण-परिशोध किया गया।" फिर पुस्तक को उलट कर उसने बन्द कर दिया।

चन्द्रराव ने अब द्वार खोला और लक्ष्मी को पुकारा। लक्ष्मी भक्तिभाव के साथ स्वामी के सम्मुख आकर खड़ी हो गई। उसने लक्ष्मी का हाथ पकड़ लिया और ज़रा हँसकर कहा—बहुत दिनों का एक कर्ज़ा बेबाक़ हुआ है।

लक्ष्मी थर्रा गई।

उन्नीसवाँ परिच्छेद

ईशानी का मन्दिर

"मोर मनोरथ पुरवहु नीके। बसहु सदा हिय-पुर सबही के ॥"

—तुलसीदास।

प्रसिद्ध पराक्रमी जागीरदार और जुमलेदार चन्द्र-राव के घर से कुछ ही अन्तर पर ईशानी देवी का मन्दिर था। पर्वत के एक बड़े ऊँचे शिखर पर देवी की प्रतिष्ठा हुई थी। देवीजी का मन्दिर बहुत पुराने समय का बना हुआ है। देवी के दर्शनों को जाने के लिए बहुत सी सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। नीचे से कल-कल शब्द करती हुई एक नदी बह रही है। नदी की जल-तरंगें बड़े वेग से सीढ़ियों के पैर धोया करती हैं। बहुत काल से यात्री लोग यहाँ आकर नदी में स्नान करते हैं, फिर सीढ़ियों पर चढ़ कर ईशानी के दर्शन को जाते हैं। अभी तक यह दृश्य ज्यों का त्यों बना हुआ है। मन्दिर के पिछवाड़े तथा पर्वत के पूर्व ओर बड़े बड़े पेड़ों का एक घना जङ्गल लगा हुआ है। पर्वत की चोटी से लेकर सारी तराई उसी जङ्गल से घिरी हुई है। जङ्गल ऐसा घना और अंधकारयुक्त है कि उसमें जाने से रात का भय हो जाता है परन्तु इसी अन्धकाराच्छन्न वृक्षों के साये में पुजारी लोग कुटी बना कर रहते हैं। इस पुण्यमय सुस्निग्ध स्थान को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानों शान्तरस जगत् के कोने कोने से सिमट कर अब यहीं एकत्र

होकर तपश्चर्य्या करेगा। इस शान्ति-पूर्ण उद्यान में भारतवर्ष की प्रसिद्ध पुराणों की कथा अथवा वेद-मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य कोई शब्द नहीं सुना जाता। यद्यपि असंख्य युद्धों और हत्या-काण्डों के कारण सारा महाराष्ट्र देश कम्पित हो रहा था, परन्तु क्या हिन्दू क्या मुसलमान किसी ने भी इस छोटे से शान्त स्थान को लड़ाई के कोलाहल से कलुपित नहीं किया था।

एक पहर रात व्यतीत होगई है, परन्तु कोई यात्री अकेला इस वन में भ्रमण कर रहा है। पथिक का हृदय उद्वेग से परिपूर्ण हो रहा है, प्रशस्त ललाट कुञ्चित होगया है, मुख-मण्डल आरक्त हो आया है और आँखों से एक विशेष प्रकार की उन्मत्तता की अस्वाभाविक ज्योति निकल रही है। रोष और क्रोध के मारे रघुनाथ का हृदय आज जला जा रहा है।

कुछ देर रघुनाथ यों ही टहलते रहे तथापि हृदय का उद्वेग दूर न हुआ। रघुनाथ इस समय उन्मत्त से हो गये हैं। यदि उनकी भीषण चिन्ता जल्द जाती न रहेगी तो उनकी विवेचना-शक्ति विचलित अथवा लुप्त हो जायगी। परन्तु प्रकृति भीषण चिकित्सक है। पर्वत के समान जो भारी दुःख हृदय में चुभा करते हैं, अग्नि के समान जो चिन्ता शरीर-रूपी वन को जलाया करती है, इन सब मानसिक रोगों की पार्थिव औषध नहीं है, कोई चिकित्सक भी नहीं है परन्तु प्रकृति स्वयं धीरे धीरे चिन्ता को कम कर देती है। देखो न, संसार में कितने अभागे ऐसे हैं जो पागल होकर ही अपने को सुखी समझ रहे हैं। सहस्रों ऐसे हैं जो आरोग्य-लाभ की प्रार्थना करते हैं परन्तु पाते नहीं।

जहाँ रघुनाथ टहल रहे थे उसके थोड़ी ही दूर पर ब्राह्मण लोग पुराण की कथा कह रहे थे। अहा! वह सङ्गीत-पूर्ण पुण्य कथा शान्तिमयी रात्रि में, शान्त कानन में, अमृत-वर्षा कर रही है, और नक्षत्रविभूषित नैश गगन-मण्डल में धीरे धीरे ध्वनित हो रही है। सारा वन उसी पुण्य-कथा से प्रति-ध्वनित हो रहा है और हमारा अचेत पथिक रघुनाथ भी इस मधुर ओषधि को ग्रहण करके चैतन्य लाभ कर रहा है।

उस शान्त कानन की पवित्र कथा और सङ्गीत रघुनाथ के हृदय-वन में लगी हुई आग के लिए वारिवर्षण का कार्य्य करने लगे। उद्विग्न हृदय को शान्ति-लाभ हुआ। धीरे धीरे उन्मत्तता कम होने लगी और उस महत् कथा के निकट अपना दुःख और शोक अकिञ्चित्-कर वोध होने लगा। रघुनाथ ने समझ लिया कि मेरा महत् उद्देश और वीरत्व इस कथा के निकट तो पासङ्ग बराबर भी नहीं। धीरे धीरे चिन्ता-हारिणी निद्रा ने रघुनाथ को अपने अङ्क में ले लिया। वह चुपचाप उसी वृक्ष के नीचे सो गया।

रघुनाथ स्वप्न देखने लगा। आज किस स्वप्न को देखता है? कौन सा गौरव फिर आँखों के सामने आ गया है? मानों रघुनाथ फिर दिन दिन पदोन्नति और यशोलाभ कर रहा है। हाय! रघुनाथ के जीवन में ऐसी दशा आकर चली गई। गौरवरूपी सूर्य्य की प्रतिभा विलुप्त होगई।

रघुनाथ युद्धविषयक क्या स्वप्न देख रहा है कि मानों उसने शत्रुओं का विनाश किया है, दुर्ग विजय कर लिया है और युद्ध-कार्य्य सम्पादन कर रहा है। अभी वह कार्य्य समाप्त भी नहीं हुआ था कि रघुनाथ की निद्रा भङ्ग होगई।

युवा अवस्था के एक एक कार्य्य विलुप्त हो गये, आशा-प्रदीप का निर्वाण हो गया। इस अन्धकार-पूर्ण रजनी में श्रान्त, बन्धुहीन युवक के हृदय में बचपन की सारी कथायें पूर्वजीवन-स्मृति की भाँति जाग्रत होगईं। शोक के कारण हृदय दग्ध होने लगा। आशा और सुख ने रघुनाथ के हृदय से पयान कर दिया। बन्धुविहीन जनों के हृदय में जैसे भाव उत्पन्न होते हैं, आज उन्हीं भावों का अनुभव रघुनाथ भी कर रहा है। स्नेहमयी माता के लालन-पालन का सुख, पिता के दीर्घ अवयव और प्रशस्त ललाट, लड़कपन में सूर्य्य-महल की क्रीड़ायें और बाल्य-काल की सहचरी शान्त, धीर, प्राणों से प्यारी बहन लक्ष्मी, ये सब एक एक करके रघुनाथ को विह्वल कर रहे हैं। अहा! और सब तो इस संसार में नहीं हैं, परन्तु रघुनाथ के हृदय में यह आशा उसे अधीर कर रही है कि "क्या स्नेहमयी भगिनी को जीवित देख सकूँगा? आज सूने संसार में मेरा और कौन है?" इन्हीं विचारों के कारण रघुनाथ की निद्रित आँखों में जल भर आया, वीर अधीर हो गया। स्नेहमयी भगिनी के विचार में निमग्न होकर रघुनाथ सो गया था। फिर आँख खुलने पर क्या देखता है? मानों लक्ष्मी स्वयम् भ्राता के सिरहाने बैठी है और अपने कोमल शीतल हाथों से रघुनाथ के सिर को दबाकर उसके हृदय के उद्वेग को दूर कर रही है। स्नेहपूर्ण नयनों से सहोदरा अपने सहोदर के मुख को देख रही है। अहा! ऐसा प्रतीत होता है कि शोक और चिन्ता के कारण लक्ष्मी का प्रफुल्ल-मुख शुष्क हो गया है और दोनों आँखें स्थिर हैं।

रघुनाथ ने फिर आँखें बन्द कर लीं और फिर रो पड़ा— भगवन् जगत्पिता! बहुत कुछ सह लिया है। अब हृदय में वृथा आशा देकर क्यों उसे और व्यथित करते हो?

मानों किसी ने अपने कोमल हाथों से रघुनाथ के आँसू पोंछ दिये। ऐसा प्रतीत होते ही रघुनाथ ने फिर आँखें खोल दीं। अब जाकर उसने समझा कि यह स्वप्न नहीं है। उसकी सहोदरी ही उसके मस्तक को अपने अङ्क में धारण किये हुए वृक्ष के पास बैठी है।

रघुनाथ का हृदय भर आया। वह लक्ष्मी के हाथों को अपने तप्त हृदय पर स्थापन करके उसके स्नेहपूर्ण मुख की ओर देखने लगा, परन्तु उसकी वाक्‌शक्ति स्फुरित न हो सकी। हाँ, नेत्रों से वारि-धारा वह निकली। वह अधिक नहीं सह सका। योद्धा ज़ोर ज़ोर से धाड़ें मार मार कर रोने लगा और रोते रोते बोला—लक्ष्मी ! लक्ष्मी !! तुम्हें इस जीवन में देख तो लिया। यद्यपि सारे सुख चले गये तो बला से, दूसरी आशायें लुप्त होगईं तो कुछ चिन्ता नहीं, परन्तु लक्ष्मी ! तुम्हारा अभागा भाई इस जीवन में सिवा तुम्हारे दर्शनों के और कुछ नहीं चाहता था।

अब लक्ष्मी शोक को नहीं सँभाल सकी। भाई के हृदय में मुँह छिपाकर एकबारगी रोने लगी। अहा ! इस करुण-सुख के समान संसार में दूसरा कौन रत्न है जो इसकी तुलना कर सके।

बहुत दिनों के पश्चात् मिल कर वे परस्पर बोल भी नहीं सके। बहुत देर तक दोनों चुप रहे। बहुत दिनों की कथायें धीरे धीरे हृदय में जागृत होने लगीं। सुख-सरोवर में दुःख का समुद्र मिल गया। मिश्रित सुख-दुःख-सागर हृदय में तरंगें मारने लगा। रह रह कर तरंगों के वेग से उभय-हृदय विगलित होने लगे। संसार में भगिनी से बढ़ कर स्नेहमयी और कौन है ? भ्रातृ-स्नेह के समान पवित्र स्नेह संसार में और कौन सा है ? हम इस पवित्र भाव का वर्णन करने में असमर्थ हैं।

बहुत देर के बाद दोनों का हृदय शीतल हुआ। लक्ष्मी ने अपने अञ्चल से भाई के आँसू पोंछ कर कहा—ईशानी की कृपा है कि आज इतने दिनों के पश्चात्, बड़े अनुसन्धान के बाद, तुमसे भेंट हुई। अहा! इससे बढ़कर हमें और कौन सुख है? ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने इस अभागिनी के कपाल में ऐसा सुख लिख तो दिया था। भाई! इस ठंडी ठंडी हवा में तुम्हारा और ठहरना बुरा है। चलो मन्दिर के भीतर चलें। मैं यहाँ अधिक नहीं ठहर सकती।—भाई-बहन दोनों मन्दिर में चले आये। लक्ष्मी एक स्तम्भ का सहारा लेकर बैठ गई। रघुनाथ पूर्ववत् लक्ष्मी के अङ्क में मस्तक रख करके पड़ गया। उस अँधेरी रात में दोनों मृदु स्वर से पुरानी बातें करने लगे।

लक्ष्मी धीरे धीरे रघुनाथ के मस्तक पर हाथ फेरती थी और उससे कुछ पूछती जाती थी। रघुनाथ उसका उचित उत्तर देता था "डाकू के हाथ से बचकर अनाथ बालक किस किस देश में भागता फिरा और वहाँ किन किन विपत्तियों का सामना करना पड़ा। कभी महाराष्ट्र कृषकों के साथ रह कर गाय चराने का कार्य्य किया। कभी भैंसों की रखवाली करनी पड़ी और उनके पीछे पीछे जङ्गल, पर्वत और मैदानों को छानना पड़ा। कभी चरवाहों के साथ ऊँचे स्वर में बिरहा गाने का अवसर मिलता, कभी उन्हीं से बिरहे के राग में श्रीरामचन्द्र, प्रताप इत्यादि की वीरता सुनने में आती। कभी जङ्गल में जाकर अपनी पुरानी अवस्था का ध्यान करके ज़ोर ज़ोर से रोना पड़ता। कई वर्षों तक कोङ्कण प्रदेश में रहना पड़ा। तत्पश्चात् एक महाराष्ट्रीय योद्धा के साथ रह कर युद्ध का कार्य्य सीखा और कभी कभी उन्हीं के साथ रणक्षेत्रों में जाने का भी अवसर मिलता रहा। ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती गई, मैं युद्ध-विद्या में कुशल होता गया

और अन्त में महामना शिवाजी की सेवा में उपस्थित होकर उनकी सेना में सैनिक का पद ग्रहण किया। तीन वर्ष तक वहाँ जिस प्रकार अपना कार्य्य सम्पादन किया उसे जगदीश्वर ही जानता है। यथासम्भव मनसा-वाचा-कर्मणा कोई त्रुटि नहीं हुई परन्तु शिवाजी को किसी प्रकार से सन्देह हो गया। इसी कारण उन्होंने मुझे अपमानित किया है।"

फिर रघुनाथ ने कहा—अब देश देश निरुद्देश्य फिर रहा हूँ और यही संकल्प है कि पिता की भाँति मैं भी समर में प्राण त्याग करूँ।

भाई की दुःख-कहानी सुनते सुनते स्नेहमयी भगिनी का जी उमड़ आया और आँखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी। उसने अपने कष्ट को तुच्छ समझा। वह भाई के कष्ट से व्याकुल हो गई। जब वह शोक-कथा समाप्त हुई तब लक्ष्मी ने मन में सोचा कि अब अपना परिचय किस प्रकार दिया जाय। चन्द्रमा का नाम उसने मुँह से नहीं निकाला। उसने धीरे धीरे कहा— इस देश में आने से कुछ दिन पीछे एक प्रतिष्ठित क्षत्रिय जागीर-दार से मेरा विवाह हो गया। स्त्रियाँ अपने स्वामी का नाम नहीं ले सकतीं इसलिए आकाश में उदय होनेवाले निशानाथ के नाम पर ही मेरे स्वामी का नाम समझ लो। सुधांशु के समान ही उनकी वीरता, क्षमता और गौरव-ज्योति चारों ओर प्रकाशमान हो रही है। मैं उन्हीं के घर में सुखी हूँ। उनके अनु-ग्रह से सदा सुखी रहती हूँ। अब इस जीवन में और कोई वासना नहीं किन्तु यही चाहती हूँ कि अपने भाई को सुख में देखूँ। मैं तुम्हारा बीच बीच में संवाद सुन लिया करती थी। इसलिए तुम्हें एक बार और देख लेने की प्रबल इच्छा थी। आज वही कामना—मन्दिर में पूजा करते समय—पूर्ण हुई।

इस प्रकार लक्ष्मी अपना परिचय देकर भाई के पहाड़-रूपी दुःख को निर्मूल किया चाहती थी। लक्ष्मी दुःखिनी है। दुःख की कथा भली भाँति उसे मालूम है। लक्ष्मी स्त्री है, वह दुःख-मोचन करना जानती है। संसार का दुःख दूर करना स्त्रियों का परमधर्म है।

अनेक प्रकार से समझा कर लक्ष्मी अपने भाई के तप्त हृदय को शान्त करने का प्रयत्न करने लगी, और कहने लगी—मनुष्य-जीवन सदा समान नहीं रहता। भगवान् ने जिस दुःख को हमारे लिए लिख रक्खा है उसका भोग करना लाज़िमी है। यदि एक दिन हम पर दुःख पड़ जाय तो क्या उससे मुख मोड़ना हमारा कर्तव्य है? मानवजन्म ही दुःखमय है। यदि हम दुःख को सह न सकेंगे तो दूसरा और कौन सहेगा? भले-बुरे दिन सबके लिए हैं। बुरे दिनों में भी विधाता का नाम लेकर उसे भूल जाना चाहिए। उसी ने पिता के घर में हमें सुख दिया था। आज उसी ने कष्ट दिया है। वही फिर कष्ट-मोचन करेगा। भाई! नैराश्य छोड़ो। इस प्रकार शोक करने से कब तक शरीर को सँभाल सकोगे? आहार-निद्रा के त्याग करने से मनुष्य-जीवन कब तक ठहर सकता है?

रघुनाथ—शरीर के रखने की आवश्यकता ही क्या है? जिस दिन सैनिक के नाम पर विद्रोही का कलङ्क लगा था उसी दिन इसे मिट जाना चाहिए था। न मालूम अब तक वह क्यों स्थिर है।

लक्ष्मी—क्या तुम अपनी बहन लक्ष्मी को सदा के लिए दुःखिनी किया चाहते हो? देखो भाई, संसार में हमारा और कौन है? पिता नहीं हैं, माता नहीं हैं, मानो संसार में कोई नहीं

है। क्या दुःखिनी लक्ष्मी के प्रति अपनी सारी ममता एक बार ही भूल गये? हे भगवन्! तुम एक बार ही विमुख होगये?

रघुनाथ—लक्ष्मी! तुम मुझ पर प्रेम करती हो, यह मुझे ख़ूब मालूम है। तुम्हें जिस दिन मैं कष्ट दूँगा उसी दिन भगवान् मुझसे विमुख हो जायँगे। किन्तु बहन! अब इस जीवन में मुझे सुख नहीं। तुम स्त्री जाति हो। तुम्हें सैनिकों के दुःख का ज्ञान नहीं। हमारे निकट जीवन की अपेक्षा सुनाम प्रिय है। मृत्यु की अपेक्षा कलङ्क और अपयश सहस्रगुण कष्टकारक है इसलिए रघुनाथ कलङ्क का टीका लगाना नहीं चाहता।

लक्ष्मी—फिर उस कलङ्क के दूर करने से विमुख क्यों हो? महानुभाव शिवाजी के निकट जाओ। जब उनका क्रोध दूर हो जायगा तब वे अवश्य तुम्हारी बात सुनेंगे और फिर तुम्हें निर्दोष कहेंगे।

रघुनाथ ने कुछ उत्तर नहीं दिया किन्तु उसका मुखमण्डल रक्तवर्ण होगया। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। बुद्धिमती लक्ष्मी ने समझ लिया कि पिता का अभिमान और पिता का आदर्श पुत्र में वर्तमान है। इसे प्राणों का मोह नहीं है। महाबुद्धिमती लक्ष्मी ने भाई के भीतरी भाव को ताड़ कर कहा—क्षमा करना, मैं स्त्री जाति हूँ। मुझे इन बातों का ज्ञान कहाँ? यदि तुम शिवाजी के पास जाने में असम्मत हो तो कार्य्य-द्वारा अपने यश की रक्षा करो न। पिताजी कहा करते थे—'सैनिकों का साहस और उनकी स्वामिभक्ति उनके कार्य्य से प्रकाशित होती है।' यदि तुम्हारे ऊपर विद्रोहाचरण की शङ्का किसी को है तो हाथ में तलवार रखकर उसका खण्डन कर डालो।

रघुनाथ का हृदय उत्साह से परिपूर्ण हो गया। फिर उसने कहा—बहन, बताओ तो किस प्रकार से सन्देह का खण्डन किया जा सकता है ?

लक्ष्मी—मैंने सुना है कि राजा शिवाजी दिल्ली जाना चाहते हैं। वहाँ सैकड़ों घटनायें होने की सम्भावना है। इसलिए दृढ़-प्रतिज्ञ सैनिक को आत्मपरिचय के सहस्रों अवसर प्राप्त हो सकते हैं। मैं तो स्त्री हूँ और क्या कहूँ। तुम पिता की भाँति साहसी हो। फिर उन्हीं की भाँति वीर प्रतिज्ञा करने से तुम्हारा कौन सा उद्देश सफल नहीं हो सकता ?

रघुनाथ यदि सावधान होता तो उसे पता चलता कि उसकी बहन भी मानव-हृदय-शास्त्र से अज्ञ नहीं है। जो दवा आज रघुनाथ को कारगर हुई है उसका फल तत्काल ही प्रकट हो गया। अर्थात् रघुनाथ का शोक-सन्ताप मुहूर्त-मात्र ही में दूर हो गया और वीर का हृदय पहले की भाँति उत्साहित और पुलकित हो गया।

रघुनाथ बहुत देर तक विचार करता रहा। उसका मुख-मण्डल और उसके नयन सहसा नव-गौरव से परिपूर्ण हो गये। फिर थोड़ी देर के बाद उसने कहा—लक्ष्मी! यद्यपि तुम स्त्री जाति हो, किन्तु तुम्हारे शब्द सुनते सुनते मेरे मन में नये भाव प्रविष्ट हो गये। मेरा हृदय उत्साहशून्य नहीं है। रघुनाथ न तो विद्रोही है और न भीरु। इस बात को अब तक लोग जानते हैं किन्तु तुम बालिका हो। तुमसे सारी बात कहे कौन ? तुम मेरे हृदय के भाव को किस प्रकार समझ सकती हो ?

लक्ष्मी पहले हँस पड़ी और फिर सोचने लगी कि मैंने रोग का निदान ख़ूब जाना। तो दवा भी मैं ही बताऊँ ! फिर प्रकट रूप में कहा—भाई, तुम्हारे उत्साह को देख कर मेरे प्राण सुखी

हुए। तुम्हारे महत् उद्देश को मैं किस प्रकार समझ सकती हूँ? किन्तु हो यही कि तुम्हारी छोटी बहन जब तक जीवित है, तब तक तुम्हारे पूर्ण मनोरथ हों। जगदीश्वर से यही प्रार्थना करती हूँ।

रघुनाथ—लक्ष्मी! जब तक मैं जीवित हूँ, तुम्हारा स्नेह कभी न भूलूँगा।

थोड़ी देर बाद लक्ष्मी ज़रा अनमनी सी होकर धीरे धीरे कहने लगी, भाई! मैं एक बात और सुनानी चाहती हूँ परन्तु तुमसे कहते डरती हूँ।

रघुनाथ—लक्ष्मी! मुझसे कहते हुए तुम्हें किस बात का भय है? मैं तुम्हारा सहोदर हूँ। सहोदर से डर कैसा?

लक्ष्मी—चन्द्रराव नामक एक जुमलेदार है। तुम जानते हो न? उन्हीं ने तुम्हारा अपकार किया है।

रघुनाथ की हँसी बन्द होगई। मुँह लाल होगया, परन्तु इस उद्वेग को रोक कर उसने कहा—चन्द्रराव ने जो बात राजा से कही थी वह ठीक नहीं है। किन्तु उन्होंने हमारा और कोई अनिष्ट किया हो तो उसकी हमें ख़बर नहीं।

लक्ष्मी—उन्होंने कुछ भी किया हो, परन्तु भाई, अङ्गीकार करो कि उनका अनिष्ट नहीं करोगे।

रघुनाथ निरुत्तर होकर विचार करने लगा। लक्ष्मी ने फिर कहा—भाई के निकट इस बात के अतिरिक्त मैंने पहले कोई भिक्षा नहीं माँगी। यदि भला मालूम हो तो इसका निर्वाह करो।

लक्ष्मी के इस कथन से रघुनाथ जल गया। उसने बहन के दोनों हाथ पकड़ कर कहा—लक्ष्मी! हमारे मन में सन्देह है कि चन्द्रराव ही ने हमारा सर्वनाश किया है—किन्तु तुम्हारे लिए हमें कुछ अदेय नहीं। मैं ईशानी के मन्दिर में प्रतिज्ञा करता हूँ

कि चन्द्रराव का कुछ अनिष्ट नहीं किया जायगा। मैं उनके दोष को क्षमा करता हूँ। जगदीश्वर भी उन्हें क्षमा करें।

लक्ष्मी ने भी भाई के साथ ही कहा—जगदीश्वर उनको क्षमा करें।

पूर्व की ओर प्रभात की अद्भुत छटा दीख पड़ने लगी। लक्ष्मी ने उस समय आँसुओं की वर्षा की और सस्नेह भ्राता से विदा ली। विदा होते समय उसने कहा---मेरे साथ घर से और लोग भी यहाँ आये थे। वे सब अभी तक सोते हैं। अब मैं जाती हूँ। परमेश्वर तुम्हारे मनोरथ को पूर्ण करें।

"परमेश्वर तुम्हें सुखी रक्खें" यह कह कर रघुनाथ ने भी लक्ष्मी से विदा ली और तुरन्त ही वह मन्दिर से बाहर चला गया।

पाठकगण! अब लक्ष्मी से विदा लेकर आओ हतभागिनी सरयू के यहाँ भी चलें।

बीसवाँ परिच्छेद

सीतापति गोस्वामी

पर-कारज देह को धारे फिरो परजन्य यथारथ ह्वै दरसो।
निधिनीर सुधा के समान करो सब ही विधि सज्जनता सरसो॥
सीतापति जीवनदायक हौ कछु मोरियो पीर हिये परसो।
कबहूँ रघुनाथ के आँगन भीतर मो अँसुवान को लै बरसो॥
—घनानन्द

रुद्रमण्डल दुर्ग पर चढ़ाई करते समय रघुनाथ को क्यों विलम्ब हो गया था, पाठकगण अवश्य ही उसे जानने को उत्सुक होंगे। उस दिन यह किसी को विश्वास नहीं था कि आज की लड़ाई से हम अवश्य बच निकलेंगे। इसी कारण रघुनाथ युद्ध-यात्रा के पूर्व ही अपनी स्नेहमयी सरयू को देखने चला गया था और सरयू ने रघुनाथ को आँसू-भरी आँखों से विदा किया था।

एक दिन, दो दिन करके बहुत दिन व्यतीत होगये, परन्तु रघुनाथ का कोई संवाद नहीं मिला। हाँ, आशा कभी कभी सरयू के कान में अवश्य कह जाती कि "रघुनाथ युद्ध में विजयी हुए हैं। विजयी रघुनाथ शीघ्र ही प्रफुल्लित होकर आना चाहते हैं और बड़े प्रेम से पिता के निकट युद्ध का वर्णन करेंगे।" परन्तु रघुनाथ आये नहीं, लड़ाई का वृत्तान्त सुनाया भी नहीं।

सहसा यह वज्रतुल्य संवाद आया कि रघुनाथ विद्रोही है। इसी विद्रोहाचरण के कारण वह अपमानित करके निकाल दिया गया। थोड़ी देर तक सरयू पहले पागलों की भाँति सहम गई। वह उसको भली भाँति समझ भी नहीं सकी। धीरे धीरे उसका ललाट रक्तवर्ण होगया। रक्तोच्छ्वास के कारण मुख-मण्डल रञ्जित होगया। शरीर कम्पायमान हो उठा। आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। दासी को बुलाकर कहा—क्या कहा? रघुनाथ विद्रोही है? रघुनाथ ने मुसलमानों का साथ दिया है? किन्तु तू बड़ी पगली है। तुझसे कहा किसने है? हट, आँखों से दूर हो जा।

धीरे धीरे लड़ाई पर से बहुतेरे सैनिक लौट आये। सबने कहा—"रघुनाथ विद्रोही है!" सरयू की सखियों ने सरयू से ये बातें कह दीं। वृद्ध जनार्दन ने भी रोकर कहा—"कौन जाने, उस सुन्दर उदारमूर्ति बालक के मन में क्या क्रूरता है?" सरयू ने सब कुछ सुना, परन्तु कहा कुछ नहीं। संसार के समस्त लोगों ने रघुनाथ को विद्रोही बनाया, परन्तु सरयू के हृदय ने कहा—सारा जगत् मिथ्यावादी है। भला रघुनाथ के चरित्र को ऐसा दोष स्पर्श कर सकता है?

इस प्रकार कई दिन व्यतीत होगये। एक दिन सरयू तालाब की सैर करने गई। देखा, सरोवर के तीर पर उसी अन्धकार में, जटा-जूट-धारी एक दीर्घकाय गोस्वामी बैठे हैं। सरयू कुछ ठिठक सी गई और चुपचाप गोस्वामी की ओर देखने लगी। गोस्वामी के तेजस्वी शरीर को देख कर उसके हृदय में भक्ति-भाव संचरित होगया।

गोस्वामी ने भी सरयू को देखा। थोड़ी देर के बाद ज़रा और ग़ौर से देखकर गम्भीर स्वर से कहा—भद्रे! क्या मुझसे

तुम्हारा कोई प्रयोजन है अथवा कोई विशेष अभीष्ट है ? देवी ! तुम्हारे ललाट में दुःख के चिह्न क्यों दीख पड़ते हैं ? आँखों में जल क्यों आगया है ?

सरयू उत्तर न दे सकी। गोस्वामी ने फिर कहा—मालूम होता है, हम तुम्हारे उद्देश को समझ गये हैं। शायद तुम किसी आत्मीय के विषय में कुछ पूछना चाहती हो।

अब सरयू से न रहा गया। उसने कम्पित स्वर में उत्तर दिया—भगवन् ! आपमें असाधारण शक्ति है। यदि अनुग्रह करके और कुछ कहिएगा तो मुझ पर बड़ा उपकार होगा। मेरे उस बन्धु की कुशलवार्त्ता बतलाइए। यही मेरी प्रार्थना है।

गोस्वामी—सारा संसार उसे विद्रोही कहता है।

सरयू—परन्तु आपसे तो यह विषय अज्ञात नहीं है।

गोस्वामी—महाराज शिवाजी ने उसे विद्रोही समझकर अपने यहाँ से निकाल दिया है।

सरयू का मुखमण्डल रक्तवर्ण होगया। लाल लाल आँखों से उसने कहा—"तपस्या पर मैं अविश्वास कर सकती हूँ, परन्तु रघुनाथ को विद्रोही नहीं समझ सकती। महाराज, मैं विदा चाहती हूँ। क्षमा कीजिए।" गोस्वामीजी की आँखों में भी जल भर आया। उन्होंने धीरे से कहा—हम और कुछ कहना चाहते हैं।

सरयू—कहिए।

गोस्वामी—प्रत्येक मनुष्य के हृदय के भाव को जान लेना मनुष्य की शक्ति से बाहर है, परन्तु रघुनाथ के हृदय में क्या था उसके जानने का एक उपाय है। प्रणयिनी-हृदय प्रणयी-हृदय का दर्पण-स्वरूप है। यदि रघुनाथ की यथार्थ प्रणयिनी कोई हो

तो तुम उसके पास जाओ और उसके हृदय के भाव को देखो। उसके हृदय की चिन्ता मिथ्यावादिनी नहीं है।

सरयू ने आकाश की ओर देखकर कहा---जगदीश्वर, तुमको धन्यवाद देती हूँ कि तुमने इस समय मेरे हृदय को शान्ति प्रदान की। मैं उसी उन्नतचरित्र योद्धा की प्रणयिनी होने की आशा करती हूँ। यदि जीती रहूँगी तो स्थिरभाव से उसकी उपासना करूँगी।

क्षण भर बाद गोस्वामी ने फिर कहा---भद्रे! तुम्हारी बातों से ऐसा मालूम होता है कि उस योद्धा की प्रकृत-प्रणयिनी तुम्हीं हो। हम देश देश में भ्रमण किया करते हैं। सम्भव है, रघुनाथ से फिर साक्षात् हो सके। क्या उससे तुम कुछ कहना चाहती हो? हमसे लज्जा मत करो। हम संसार से बहिर्भूत हैं।

सरयू कुछ लजा गई, परन्तु धीरे धीरे कहने लगी---क्या आपसे कभी उनकी भेंट हुई थी?

गोस्वामी---कल रात के समय ईशानी के मन्दिर में वे मिले थे। उन्हीं ने तो हमें तुम्हारे पास भेजा है।

सरयू---उन्होंने अब क्या करने की प्रतिज्ञा की है? वे क्या कहते थे?

गोस्वामी---वे अपने बाहुबल-द्वारा अपना कार्य्य करेंगे। या तो अपयश को दूर करेंगे नहीं तो प्राणदान कर देंगे।

सरयू---धन्य वीरप्रतिज्ञा! यदि उनके साथ आपकी फिर भेंट हो तो उनसे कहिएगा कि सरयू राजपूत-बाला है, वह जीवन की अपेक्षा यश की रक्षा को अधिक समझती है। सरयू उस दिन अपना जीवन सफल समझेगी जिस दिन रघुनाथ कलङ्कशून्य होकर वीर-भाव से पूजित होंगे। भगवन्! रघुनाथ का कार्य्य सफल करो।

गोस्वामी---भगवान् यही करें। किन्तु भद्रे! सत्य की सदा जय नहीं होती। विशेषतः रघुनाथ जिस दुरूह उद्यम में प्रवृत्त हुआ है उसमें उसके प्राणों का भी संशय है।

सरयू---राजपूत का यही धर्म्म है। आप उनसे कहिएगा कि यदि व्रतसाधन में उनके प्राण का वियोग हो जायगा तो सरयूबाला उनके यशोगीत को गाते गाते सहर्ष अपने प्राण त्याग देगी।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। फिर कुछ देर बाद सरयू ने पूछा---रघुनाथ ने आपसे और भी कुछ कहा था?

गोस्वामी ने कुछ देर चुपचाप सोच कर कहा---उसने आपके सम्बन्ध में पूछा था कि सारा संसार तो उसे विद्रोही कह कर घृणा करता है, तुम भला अपने हृदय में उसे क्यों स्थापित किये हो? जगत् उसके नाम को लेना नहीं चाहता, तुम क्यों उसके नाम का स्मरण करती हो? घृणित, अपमानित, दूरीकृत रघुनाथ को सरयूबाला क्यों चाहती है?

सरयू ने कहा---प्रभु! आप उनको यह जनाइएगा कि सरयू राजपूतबाला है। वह अविश्वासिनी नहीं।

गोस्वामी---जगदीश्वर! फिर उसके हृदय में और कोई कष्ट नहीं है। संसार चाहे बुरा और मन्द भले ही कहे परन्तु अब भी उसका विश्वास एक व्यक्ति करता है! अब बिदा दीजिए। मैं इन सारी बातों को कह कर रघुनाथ के हृदय को शान्ति से सिंचन करूँगा।

सजल-नयन हो सरयू ने कहा---उनसे और भी कहिएगा कि वह असि को हाथ में धारण करके अपने यश के पथ को साफ़ करें। जगत्स्रष्टा उनकी सहायता करेंगे।

दोनों की आँखों में आँसू भर आये। सरयू ने कहा—प्रभु! आपने हमारे हृदय को शान्त किया है। इसलिए मैं आपके शुभ नाम को जानना चाहती हूँ। आपका नाम क्या है?

गोस्वामी ने कहा—सीतापति गोस्वामी।

रजनी जगत् में अन्धकार फैलाने लगी। इसी अन्धकार में गोस्वामी अकेले रायगढ़ की ओर जाने लगे।

इक्कीसवाँ परिच्छेद

रायगढ़-दुर्ग

जो रुकावट डालकर होवे कोई पर्वत खड़ा।
तो उसे देते हैं अपनी युक्तियों से वह उड़ा॥
बीच में पड़ कर जलधि जो काम देवे गड़बड़ा।
तो बना देंगे उसे वह क्षुद्र पानी का घड़ा॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

पूर्वोक्त घटना के कई दिन बाद शिवाजी ने अपनी राजधानी रायगढ़ में आधी रात के समय एक सभा की। उस सभा में शिवाजी के मुख्य मुख्य सेनापति, मन्त्री, कर्म्मचारी, पुरोहित और शास्त्रज्ञ ब्राह्मण सम्मिलित हुए। पराक्रमी योद्धा, धीर मन्त्री, शीर्णतनु शुक्लकेश बहुदर्शी न्यायशास्त्री इत्यादि से सभा सुशोभित हुई। युद्ध-व्यवसाय तथा विद्या-बल में शिवाजी को यही लोग सहायता देते थे। शिवाजी की भाँति इन लोगों का हृदय भी स्वदेशप्रेम से परिपूर्ण था। परन्तु आज की सभा में सन्नाटा था। शिवाजी भी चुपचाप बैठे थे। महाराष्ट्रीय वीरगण मानों आज महाराष्ट्रीय गौरव-लक्ष्मी से बिदा लेना चाहते हैं।

बहुत देर बाद शिवाजी ने मोरेश्वर पन्त को सम्बोधन करके कहा—पेशवाजी! आप तो यह परामर्श देते थे कि सम्राट् की अधीनता स्वीकार करने से उनके अधीन एक जागीरदार की भाँति रहना पड़ेगा?

मोरेश्वर—मनुष्य जो कुछ भी कर सकता है, आपने वह सब किया, परन्तु 'विधि का लिखा को मेटनहारा'?

शिवाजी—स्वर्णदेव! जब आपने मेरे अनुरोध से रायगढ़-दुर्ग का निर्माण कराया था तब यह राजा की राजधानी के स्वरूप में बनवाया गया था, न कि जागीरदार के रहने के लिए?

आबाजी स्वर्णदेव ने क्षीणस्वर में उत्तर दिया—क्षत्रियराज! भवानी के ही आदेशानुसार हम लोग आज तक स्वाधीनता की आकांक्षा करते थे और अब भवानी की ही चेष्टा से निरस्त हो रहे हैं। उसकी महिमा यही है। ईशानी ने स्वयं हिन्दू-सेनापति के साथ युद्ध करने का निषेध किया है।

अन्नाजी दत्त ने भी कहा—यह अनिवार्य्य है। आप अब दिल्ली जाने के कर्त्तव्याकर्तव्य की विवेचना कीजिए।

शिवाजी—अन्नाजी! आपका कथन सत्य है, परन्तु जिस आशा, जिस चेष्टा ने बहुत दिनों से स्थान पाया था वह सहज ही में उखड़ नहीं सकती। जो उन्नत पर्वत-श्रेणियाँ चन्द्रकिरणों से शोभायमान हो रही हैं यह सब लड़कपन से चढ़ी चढ़ाई हैं। यह सारे जङ्गल हमारे छाने हुए हैं। क्या अब यह स्वप्नवत् हो जायँगे? फिर कभी महाराष्ट्र देश स्वाधीन होगा? क्या भारत-वर्ष पर कभी फिर हिन्दू-गौरव का सूर्य्य अपनी किरणें विस्तारित करेगा? हिमालय से सागरपर्य्यन्त समग्र देश पर फिर हिन्दू-राज शासन करेगा। ईशानी! यदि यह आशा अलीक और स्वप्न-मात्र है तो फिर इन मिथ्या स्वप्नों से बालक का हृदय क्यों चञ्चल कर रही हो?

इन बातों को सुनकर सारी सभा सन्नाटे में आगई परन्तु उसी निस्तब्धता के बीच में, घर के एक कोने से, एक गम्भीर शब्द सुनाई पड़ा—ईशानी प्रवञ्चना नहीं करती! मनुष्य

में यदि अध्यवसाय और वीरत्व है तो ईशानी सहायता करने से कुण्ठित न होगी।

चकित होकर जो शिवाजी ने अनुसन्धान किया तो देखा कि इन शब्दों के कहनेवाले एक नये गोस्वामी सीतापति हैं।

मारे उत्साह के शिवाजी के नेत्र चमकने लगे। उन्होंने कहा—गोसाईंजी! आपने हमारे हृदय को फिर से उत्साह-पूर्ण कर दिया है। इसी प्रकार मृत्युशय्या पर लेटे हुए दादा जी कोंड़देव ने भी लड़कपन में मुझे समझाया था। उससे बढ़कर हमारे निकट और कोई महत्त्व की चेष्टा नहीं है। इस उन्नतपथ का अनुसरण करके देश की स्वाधीनता का साधन करने, ब्राह्मण, गोवत्स आदि और कृषकगणों की रक्षा करने तथा देवालयों के कलुषितकारियों को बल द्वारा परास्त करने के निमित्त ईशानी ने अनुरोध किया था। अतः इसी पथ का अनुसरण करना उचित है। बीस वर्षों से आज तक हमारे कानों में दादाजी के वही गम्भीर शब्द गूँज रहे हैं। अहा! कैसे उपकारी शब्दों का उन्होंने प्रयोग किया था।

फिर उन्हीं गोस्वामी ने गम्भीर स्वर में कहा—कोंड़देव ने ठीक ही कहा था। उन्नत-पथ का अनुसरण करने से अवश्य ही उन्नति होती है। यदि निरुत्साहित होकर हम रास्ते ही में बैठ जाते हैं तो यह कोंड़देव की प्रवञ्चना नहीं बल्कि यह हमारी भीरुता है।

"भीरुता" शब्द के उच्चारण-मात्र से सारी सभा में खलबली मच गई। वीरों की तलवारें कमर में झनझनाने लगीं।

गोस्वामी ने फिर गम्भीर स्वर से कहा—राजन्! गोस्वामी की वाचालता को क्षमा कीजिए। यदि कोई अन्यथा शब्द निकल जाय तो उसे अनसुनी कर दीजिए। किन्तु मेरे दिये हुए उपदेश

सत्य है अथवा झूठ, इसे अपने वीर हृदय से पूछ लीजिए। जिस ने जागीरदार पदवी से राजपदवी ग्रहण की है; जिसने खड्गद्वारा स्वतंत्रता का पथ अकंटक किया है; जिसने पर्वत, जङ्गल, गाँव और बड़े बड़े देशों में वीरत्व के चिह्न अंकित किये हैं उसे क्या वह वीर भाव भूल गया है? क्या उसने स्वाधीनता को तिलाञ्जलि दे दी है? बालसूर्य्य की भाँति जो हिन्दूराज्य की ज्योति चारों ओर के यवन-अंधकार को विदीर्ण कर विस्तृत हुई थी, वह क्या अकाल ही में शान्त हो जायगी? राजन्! हिन्दू-गौरव-लक्ष्मी ने आपको वरण किया था। क्या आप अपनी इच्छा से उसे त्यागना चाहते हैं? मैं केवल धर्म्मव्यवसायी मात्र हूँ। मुझे परामर्श देने का अधिकार नहीं। आप स्वयं विवेचना कर लें।

सारी सभा चुप है। शिवाजी भी चुपचाप बैठे हैं, परन्तु उनकी आँखें धक् धक् जलती थीं।

कुछ देर के पश्चात् शिवाजी ने स्वामीजी को सम्बोधन करके कहा—गोस्वामिन्! आपके साथ परिचय हुए अभी थोड़े ही दिन हुए हैं। हम नहीं कह सकते कि आप मनुष्य हैं अथवा देवता। परन्तु आपकी बातें देववाणी से भी अधिक हृदयङ्गम होती हैं। मैं एक बात यह पूछना चाहता हूँ कि हिन्दू-सेनापति का बड़ा प्रताप है और वह बड़ा रणकुशल है। उसके साथ राजपूतों की असंख्य सेना भी है। क्या उसके साथ युद्ध करने योग्य हमारे पास भी सेना है?

सीतापति—राजपूत वीराग्रगण्य हैं; परन्तु महाराष्ट्र भी खड्ग चलाने में दुर्बल नहीं हैं। जयसिंह रण-पण्डित हैं तो शिवाजी ने भी क्षत्रिय-कुल में जन्म लिया है। पराजय की आशङ्का करना ही पराजित होना है। पुरुषसिंह! विपद् को तुच्छ समझ कर ईश्वर की कृपा पर भरोसा करके कार्य्य को साधिए।

भारतवर्ष में कोई ऐसा हिन्दू नहीं जो आपके यश का गायन न करता हो। आकाश में कोई देवता नहीं जो आपकी सहायता न करे

शिवाजी—मैंने माना, किन्तु हिन्दू से हिन्दू को लड़ाकर पृथ्वी को हिन्दुओं के रुधिर से रञ्जित करना क्या मङ्गल है? क्या इसे पुण्यकर्म्म कह सकते हैं?

सीतापति—इस पाप का भागी कौन है? जो स्वजातियों या स्वधर्म्मियों के साथ युद्ध करे, जो मुसलमानों के लिए स्वजातियों से वैरभाव रक्खे, वही अन्य नहीं।

शिवाजी फिर कुछ देर के लिए चुप होगये। मन ही मन सोचने लगे। उनका विशाल हृदय-सागर भीषण चिन्ता के कारण हिलोरें लेने लगा। क्या कहें? फिर एक घड़ी बाद धीरे धीरे मस्तक को उठा कर गम्भीर स्वर में कहा—सीतापति! आज मैंने समझा कि अभी तक महाराष्ट्र देश वीरशून्य नहीं हुआ है। अब भी वह पराधीन नहीं है। फिर युद्ध हो, और उस युद्ध के समय आपकी अपेक्षा विचक्षण मन्त्री या साहसी सहयोगी की हम आकांक्षा नहीं करते। परन्तु वह दिन अभी आनेवाला नहीं है। हम पराजय की आशङ्का नहीं करते और न स्वधर्म्मियों के नाश से डरते हैं। किन्तु एक दूसरा कारण है जिससे हम युद्ध-विमुख हो रहे हैं। सुनिए;—

हमने जिस महाव्रत को धारण किया है उसके साधनार्थ अनेक षड्यन्त्रों, अनेक गुप्त उपायों का अवलम्बन किया है। म्लेच्छ लोग हमारे साथ सन्धि स्थिर नहीं रक्खेंगे, इसलिए हम भी उनसे सन्धि-स्थापन का विचार नहीं करेंगे। आज हिन्दूधर्म्म के अवलम्बन-स्वरूप, हिन्दूप्रताप के प्रतिमूर्त्ति, सत्यनिष्ठ, जयसिंह के साथ जो सन्धि की है उसे शिवाजी त्याग नहीं सकता।

महानुभाव राजपूत के साथ यह सन्धि की गई है। शिवाजी जीवित रहते इसका उल्लङ्घन नहीं कर सकता। उस धर्मात्मा ने हमसे एक दिन कहा था—'सत्यपालन यदि सनातन हिन्दू-धर्म नहीं है तो क्या सत्यलङ्घन होगा।' वह वचन आज तक हमें भूला नहीं है और न हम उसे भुला सकते हैं।

सीतापति—"चतुर औरङ्गज़ेब यदि हमारी सन्धि का लङ्घन करे तो क्या आप इस परामर्श को ग्रहण कीजिएगा कि शिवाजी दुर्बल हाथों में खड्ग न ग्रहण करे, परन्तु सत्य-परायण जयसिंह के साथ इस सन्धि का लङ्घन करना अवश्य शिवाजी के लिए अनुचित है।" सारी सभा चुप रही। कुछ देर के बाद अन्नाजी ने कहा—महाराज! एक बात और है। कल आपने क्या दिल्ली जाना निश्चित कर लिया है?

शिवाजी—हाँ, इस विषय के लिए तो हमने जयसिंह को वचन दे दिया है।

अन्नाजी—महाराज! आप औरङ्गज़ेब की चालाकी को नहीं जानते। उसकी बातों का विश्वास नहीं करना चाहिए। उसने अपने किस कार्य्य का साधन इसमें छिपा रक्खा है, क्या आपने उसका विचार किया है?

शिवाजी—अन्नाजी! जयसिंह ने स्वयम् वचन दिया है—तुम्हें दिल्ली जाने में कोई अनिष्ट नहीं सहन करना पड़ेगा।"

अन्नाजी—कपटाचारी औरङ्गज़ेब यदि आपको क़ैद कर ले अथवा आपकी हत्या कर डाले तब जयसिंह किस प्रकार आप की रक्षा करेंगे?

शिवाजी—तब तो सन्धि-लङ्घन का फल औरङ्गज़ेब को अवश्य ही भोगना पड़ेगा। दत्तजी! महाराष्ट्र-भूमि

बारप्रसविनी। औरङ्गज़ेब के इस प्रकार के आचरण पर महाराष्ट्र देश में वह युद्धानल प्रज्वलित हो जायगा जो सारे समुद्र का जल उसे फिर बुझा नहीं सकेगा। फिर औरङ्गज़ेब और सारा दिल्ली-साम्राज्य उसमें भस्म हो जायगा।

शिवाजी को अपनी प्रतिज्ञा में स्थिर समझकर लोगों ने और कुछ कहना उचित नहीं समझा, परन्तु थोड़ी देर के बाद शिवाजी ने फिर कहा—पेशवा मोरेश्वर! आवाजी स्वर्णदेव! अन्नाजी दत्त! आप लोगों के समान कार्य्यक्षम और विचक्षण शक्तिशाली महाराष्ट्र देश में कोई विरले ही होंगे। आप तीनों महाशय मेरे परोक्ष में महाराष्ट्र देश पर शासन करना। आपके आदेश को लोग मेरा ही आदेश समझ कर उसका पालन करेंगे। मैं केवल आज्ञा दिये जाता हूँ।

मोरेश्वर, स्वर्णदेव और अन्नाजी ने शासन-भार ग्रहण किया। परन्तु मालश्री ने फिर भी कहा—क्षत्रियराज! मेरी एक प्रार्थना है। बाल्यकाल से मैंने कभी आपका साथ नहीं छोड़ा इसलिए आज्ञा दीजिए कि मैं भी आपके साथ दिल्ली चलूँ।

आँखों में आँसू भर कर शिवाजी ने कहा—मालश्री! कोई वस्तु संसार में ऐसी नहीं जो हम तुम्हें न दे सकें। तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।

सीतापति ने भी क्षण भर के बाद कहा—राजन्! फिर अब मुझे विदा कीजिए। मुझे अपने व्रत-साधन के हेतु बहुत से तीर्थों का भ्रमण करना है। जगदीश्वर आपको कुशल से रक्खें।

शिवाजी—नवीन गोस्वामिन्! कुशल के साथ दीर्घयात्रा कीजिए। युद्ध के समय मैं फिर आपका स्मरण करूँगा। आपकी

अपेक्षा प्रकृत-बन्धु देखने की मुझे आकांक्षा नहीं। आपके समान थोड़ी अवस्थावालों में ऐसा तेज और साहस मैंने किसी दूसरे में नहीं देखा।

फिर एक दीर्घश्वास त्याग कर दबे स्वर में कहा—हाँ, केवल एक व्यक्ति को और देखा था।

बाईसवाँ परिच्छेद

चन्द्र कवि का गीत

उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मनो वीर नट।
कढ़त तेग मनो बेग लगत मनो बीज झट्टवट॥
थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भई श्रोनधर।
हर हरषि वीर जग्गे हुलस हुरव रंगि नव रत्तवर॥

—चन्द्र वरदाई।

सन् १६६६ ई० के वसन्त-काल में शिवाजी पाँच सौ सवार और एक हज़ार पैदल सैनिक लेकर दिल्ली के पास पहुँच गये। शहर के लगभग ६ कोस पर दक्षिण में शिवाजी ने अपना डेरा डाल दिया। सेना विश्राम करने लगी और शिवाजी चकित हो कर अपने मन को इधर उधर भ्रमण कराने लगे। क्या दिल्ली में आकर हमने भला किया है? क्या मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करना वीरोचित है? क्या अब भी लौट जाने का उपाय है? इसी प्रकार सैकड़ों कल्पनायें उठा करतीं। योद्धा के मुख-मण्डल पर चिन्ता की रेखा अंकित रहने लगी। इससे पहले युद्ध के समय में भी शिवाजी को किसी ने इस प्रकार चिंतित नहीं देखा।

शिवाजी अपने साथ तेजस्वी और उग्र स्वभाव के अपने ९ वर्ष के बालक शम्भुजी को भी लिये लिये इधर उधर भ्रमण किया करते थे। कभी कभी बालक अपने पिता के गम्भीर

मुखमण्डल की ओर भी देखा करता और उनके हृदय के भाव को कुछ कुछ समझ भी लेता। शिवाजी के पुरातन मन्त्री रघुनाथ पन्त न्यायशास्त्री भी पीछे पीछे आ गये।

कुछ देर के पश्चात् शिवाजी ने मन्त्री से कहा---न्यायशास्त्री, आप कभी पहले भी दिल्ली आये हैं?

न्यायशास्त्री----हाँ, मैंने लड़कपन में दिल्ली देखी थी।

शिवाजी----दूर से जो यह बहुविस्तीर्ण गुंबज़ की भाँति दीख पड़ती है, आप बता सकते हैं कि यह क्या है? आप प्रायः अनमने होकर उसे क्यों देखा करते हैं?

न्यायशास्त्री---महाराज! दिल्ली के पहले हिन्दू राजा पृथ्वीराज के दुर्ग के गुंबज़ दिखाई पड़ते हैं।

शिवाजी ने विस्मित होकर कहा----ऐं! यह पृथ्वीराज का दुर्ग है? यहीं उनकी राजधानी थी? क्या इस जगह पहले हिन्दू राजा शासन करते थे? न्यायशास्त्रीजी! वे दिन स्वप्न की भाँति व्यतीत होगये। क्या भारत के वे दिन लौटकर फिर आवेंगे? कुसुम के विलुप्त पत्र वसन्त में फिर देखे जाते हैं। क्या हमारे गौरव के दिन भी बहुरेंगे?

न्यायशास्त्री—भगवान् की कृपा से सब कुछ हो सकता है। यदि ईश्वर की कृपा होगी तो आपके बाहुबल से फिर वे दिन देखे जायँगे।

शिवाजी—न्यायशास्त्री! लड़कपन में हमने कोंकण देश में कई बार यह बात सुनी है। चन्द्र कवि के गीतों में भी इसका विवरण मिलता है। क्या आप उसे समझते हैं? यह टूटा-फूटा दुर्ग पहले बड़े बड़े महलों और राजभवनों से परिपूर्ण था। बहुत से योद्धा रहते थे, पताकाओं और तोरणों से शोभित एक विशाल नगर था। योद्धाओं से भरी सभा में राजा बैठता था।

आँख उठाकर जहाँ तक देखा जाता, पथ, घाट, वाटिका, फुलवारी, नदी-तट सभी कुछ नागरिकों के आनन्द और उत्सव के स्थान बने हुए थे। बाज़ार में बड़ा लेन देन होता था। उद्यानों में लोग आनन्द-मङ्गल किया करते थे। सरोवरों से ललनायें कलश भर भर जल लाया करतीं और राजप्रासाद के पास सदा सेना सुसज्जित रहती थी। हाथी, घोड़े इत्यादि भी खड़े रहते थे। बजानेवाले आनन्द के बाजे बजाया करते थे। अभी प्रभात के सूर्य्य की सुन्दर किरणें भली भाँति निकल भी नहीं सकी थीं कि मुहम्मद ग़ोरी के दूत ने राजसभा में प्रवेश किया। क्या इस बात को आप जानते हैं?

न्यायशास्त्री—राजन्! चन्द्र कवि की बात तो जानता हूँ, परन्तु आप उसे कह डालें। आपके मुख से वह कथा बहुत मनोहर मालूम होगी।

शिवाजी—मुहम्मद ग़ोरी के दूत ने राजा से कहा था—बादशाह मुहम्मद ग़ोरी ने आपकी सलतनत के निस्फ़ हिस्से ही पर क़िनाअत करने का क़स्द कर लिया है। क्या आप इस पर राज़ी हैं?

महानुभाव पृथ्वीराज ने उत्तर दिया था—यदि सूर्य्यदेव आकाश में एक दूसरे सूर्य्य को स्थान दे दें, तो उसी दिन पृथ्वीराज भी अपने राज्य में दूसरे राजा को घुसने देगा।

मुसलमान सफ़ीर ने फिर कहा—महाराज! आपके ख़ुसर ने मुहम्मद ग़ोरी से सुलह कर ली है। आप लड़ाई के वक़्त मुसलमानों और राठौड़ों की फ़ौज एकजा देखेंगे।

पृथ्वीराज ने जवाब दिया—आप श्वशुरजी से मेरा प्रणाम कह कर उनसे कहिएगा कि मैं भी यही चाहता हूँ कि शीघ्र ही उनसे मिलकर उनकी चरणरज ग्रहण करूँ।

बहुत जल्द चौहान-सेना इस प्रशस्त दुर्ग से बाहर निकली थी और चौहान-वीरों ने मुसलमानों तथा राठौड़ों को आँधी से पीड़ित धूल की भाँति भगा दिया था। बड़ी कठिनता से तो ग़ोरी ने अपने प्राण बचाये थे।

वह दिन गया। इस समय चन्द्र कवि का गीत कौन गावे और कौन सुने? परन्तु मैं जिस स्थान पर खड़ा हूँ उसके पूर्व गौरव को विचारने पर उन महाराजाओं की कीर्ति का स्मरण करने से स्वप्न की भाँति नई नई आशायें उठने लगती हैं। इस विशाल कीर्ति-क्षेत्र में सदा के लिए अँधेरा नहीं लिखा है। भारतवर्ष का दिन फिर कभी लौटेगा। ईश्वर! रोगी को आरोग्यदान दीजिए, दुर्बल को बलवान् कीजिए, जीर्ण पद-दलित भारत-सन्तान को आपही उन्नति के शिखर पर बैठा सकते हैं।

तेईसवाँ परिच्छेद

रामसिंह

"आत्मा वै जायते पुत्रः।"

शिवाजी और उनके पुत्र शम्भुजी ज्यों ही डेरे में पहुँचे कि उसी समय एक प्रहरी ने आकर कहा—महाराज! जयसिंह के पुत्र रामसिंह एक सैनिक के साथ बाहर खड़े हैं। उन्हें सम्राट् ने आज्ञा दी है कि वे आपका स्वागत करें।

शिवाजी—सादर ले आओ।

उग्रस्वभाव शम्भुजी ने कहा—पिताजी! आपको बुलाने के लिए औरङ्ग़ज़ेब ने केवल दो ही दूत भेजे हैं!

शिवाजी तो औरङ्ग़ज़ेब के किये हुए इस अपमान से क्रुद्ध हो ही रहे थे परन्तु उन्होंने इस विषय को प्रकाशित नहीं किया। इतने में रामसिंह शिविर में आगये। राजपूत-युवक अपने पिता की भाँति तेजस्वी और वीर है, और पिता ही के समान धर्मपरायण और सत्यप्रिय भी है। तीक्ष्णबुद्धि शिवाजी ने युवक के मुखमण्डल को देखते ही उसके उदार और अकपट चरित्र को समझ लिया। परन्तु फिर भी उन्होंने इन बातों का कुछ भी परामर्श नहीं किया कि औरङ्ग़ज़ेब का इसमें कुछ कपट तो नहीं है—दिल्ली का प्रवेश विपज्जनक तो नहीं है। रामसिंह ने अपने पिता ही से शिवाजी के वीरत्व की कथा कई बार सुनी थी।

इसी लिए वे महाराष्ट्र वीर पुरुष की ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे। शिवाजी ने रामसिंह को आलिङ्गन किया और कुशल-क्षेम पूछा।

थोड़ी देर के बाद रामसिंह ने कहा—महाराज को मैंने इसके पहले कभी नहीं देखा था, परन्तु पिताजी से आपकी कीर्ति-कथा सविस्तर सुन चुका हूँ। अभी तक आप जैसा स्वदेशप्रिय, स्वधर्मपरायण, वीर पुरुष मैंने नहीं देखा था। आज मेरे नयन सार्थक हुए।

शिवाजी—आज मेरे भी सौभाग्य हैं। आपके पिता जैसा विचक्षण, धर्म्मपरायण, सत्यप्रिय वीर पुरुष राजस्थान में विरला ही कोई होगा। दिल्ली में आते ही मुझे उनके पुत्र का साक्षात्कार होने से बड़ा आनन्द हुआ। यह मेरे लिए उत्तम शकुन है।

रामसिंह—राजन्! आपके दिल्ली-आगमन की बात जब सम्राट् ने सुनी तब उन्होंने मुझे आपके निकट भेजा है। क्या आप नगर-प्रवेश की अभिलाषा रखते हैं?

शिवाजी—प्रवेश के सम्बन्ध में आपका क्या परामर्श है?

रामसिंह—मैं समझता हूँ कि आप अभी चले चलें, क्योंकि देर होने से तो आँधी चलने लगेगी और गर्मी अधिक सतावेगी।

रामसिंह के इस सरल उत्तर को सुनकर शिवाजी हँसने लगे। उन्होंने फिर कहा—मैं यह नहीं पूछता। आप तो दिल्ली में बहुत दिनों से रहते हैं। आपसे कोई बात छिपी न होगी? हमें दिल्ली में क्यों बुलाया गया है—आप इस बात को तो अवश्य जानते होंगे।

शिवाजी के मनोगत भाव को समझकर उदारचेता रामसिंह हँस पड़े और कहने लगे—महाराज, क्षमा कीजिए। मैंने आपके उद्देश को समझा नहीं था। यदि मैं आपकी जैसी अवस्था

में होता तो सदैव पर्व्वतों में वास करता और अपने खड्ग पर भरोसा करता। खड्ग के तुल्य प्रकृत बन्धु और कोई नहीं है; किन्तु इस विषय को मैं नहीं जानता। जब पिताजी ने ही आपको दिल्ली में आने का परामर्श दिया है तब आपका आना अच्छा हुआ। वह अद्वितीय पण्डित हैं। उनका परामर्श कभी व्यर्थ नहीं होता।

शिवाजी ने समझ लिया कि दिल्ली में हमारे रोक लेने की कोई सम्भावना नहीं है। यदि होगी भी तो रामसिंह उसे नहीं जानता। परन्तु फिर भी उन्होंने कहा—हाँ, आपके पिता ने ही मुझे यहाँ आने का परामर्श दिया है। मेरे आने के समय उन्होंने एक और वचन दिया है। कदाचित् उसे आप जानते हों?

रामसिंह—जानता हूँ, दिल्ली में आपको कोई कष्ट या विपद् न होने पावे। यही आपको वाक्य-दान दिया है और मुझे इसी का आदेश किया है।

शिवाजी—इसमें आपकी क्या सम्मति है?

रामसिंह—पिता का आदेश अवश्य पालनीय है। राजपूतों का वाक्य कभी मिथ्या नहीं होता। आप निरापद स्वदेश लौट जायँगे। इसमें दास कोई त्रुटि न होने देगा।

शिवाजी ने निस्संदेह होकर कहा—तो आपका परामर्श ग्रहण करता हूँ। देर होने से हवा कड़ी हो जायगी। चलो, इसी समय दिल्ली चलें।

सबके सब दिल्ली की ओर चल खड़े हुए। सारा मार्ग मुसलमानों के टूटे फूटे महलों से परिपूर्ण था। पहले मुसलमानों ने दिल्ली को विजय करके पृथ्वीराज के क़िले के समीप अपनी राजधानी बसाई थी। इसलिए वहीं पुरानी टूटी-फूटी मसजिदें और क़बरें हैं। संसार-प्रसिद्ध कुतुब-मीनार यहीं बना हुआ

है; धीर वीर नये नये सम्राट् और उत्तर को हटकर अपने अपने राजमहल बनवाते गये। इस प्रकार दिल्ली उत्तरवाहिनी होती गई। शिवाजी ने चलते चलते न मालूम कितनी मसजिदें, मीनार और क़बरें देख डालीं। रामसिंह और शिवाजी साथ साथ चले जाते थे और एक दूसरे की सभ्यता की मन ही मन प्रशंसा करते जाते थे।

रास्ते ही में लोदी ख़ानदान के बादशाहों की बड़ी बड़ी क़बरें दीख पड़ीं। हर एक क़बर पर गुम्बज़ और महल बने हुए थे। जब अफ़ग़ानों का गौरव-सूर्य्य छिपा चाहता था उस समय भी दिल्ली वहीं बसी हुई थी। हाँ, उसके बाद से पीछे खसकती गई।

फिर हुमायूँ का भारी मकबरा दीख पड़ा। उसके पश्चात् चौंसठ खम्मे की इमारत मिली। फिर एक सुनसान क़ब्रस्तान पड़ा। पृथ्वीराज के क़िले से वर्तमान दिल्ली तक आते आते शिवाजी को मालूम हुआ कि भारतवर्ष का इतिहास इसी रास्ते में अङ्कित है। एक एक महल और क़ब्र उस इतिहास पुस्तक के एक एक पन्ने हैं और एक एक दीवाल उसके अक्षर हैं। नहीं मालूम विकराल काल ने ऐसा इतिहास और भी कहीं लिखा है कि नहीं।

शिवाजी और आगे बढ़ गये। रामसिंह ने शिवाजी को सम्बोधन करके कहा—महाराज, देखिए। यह हमारे पिताजी ने मन्दिर बनवाया है। राजन्! इस मन्दिर में ज्योतिष-गणना की जाती है और इसका नाम मान-मन्दिर है। रात के समय ज्योतिषी लोग ऊपर बैठकर नक्षत्रों की गणना करते हैं।

शिवाजी—आपके पिताजी जिस प्रकार वीर हैं उसी प्रकार बुद्धिमान् भी हैं। संसार में सर्व्वगुणसम्पन्न ऐसे मनुष्य विरले ही हैं।

दिल्ली की सीमा के भीतर प्रवेश करते ही शिवाजी का हृदय एक बार ही काँप उठा, तुरन्त उन्होंने घोड़े को थमा लिया। वे पीछे की ओर देखने लगे, और सोचने लगे कि अभी तक तो स्वाधीनता है परन्तु थोड़ी ही देर बाद बन्दी हो जाना भी सम्भव है। परन्तु उसी समय वह वाक्य स्मरण हो आया जो उन्होंने जयसिंह को दिया था और जयसिंह के पुत्र का उदार मुखमण्डल देखकर तथा अपनी कमर में "भवानी" नामक खड्ग का दर्शन कर दिल्ली में प्रवेश किया।

स्वाधीन महाराष्ट्र योद्धा उसी समय बन्दी हो गये।

चौबीसवाँ परिच्छेद

दिल्ली

नींद तज रे आत्मा टुक खोल चिन्ता-नैन।
देखु देखु विलम्ब को अब समय रंचहु है न॥
स्वत्व-सिन्धु-तरंग भेंटत हेतु व्याकुल होत।
लखहु कस निःशब्द धावत प्रखर जीवन-स्रोत॥

—लोचनप्रसाद।

दिल्ली आज मनोहर शोभा धारण किये हुए है। यद्यपि औरङ्गज़ेब स्वयम् तड़क-भड़क को पसन्द नहीं करता, परन्तु राज-काज के साधनार्थ चमक-दमक की आवश्यकता है। इसे वह ख़ूब जानता था। दरिद्र महाराष्ट्र देश से आज शिवाजी विपुल अर्थशाली मुग़लों की राजधानी में आया है। मुग़लों की क्षमता, सम्पत्ति और अर्थप्राचुर्य्य को देखकर शिवाजी अपनी हीनता को समझ जायगा। फिर वह मुग़लों के साथ लड़ाई करने का साहस न करेगा—औरङ्गज़ेब ने इन्हीं उद्देशों के साधनार्थ ऐसी नुमाइश बना रक्खी थी।

शिवाजी और रामसिंह साथ साथ राजमार्ग पर चलने लगे। रास्ते से होकर सैकड़ों अश्वारोही और पैदल सैनिक इधर-उधर चल रहे थे। सारा शहर मनुष्यों का जङ्गल मालूम होता था। सौदागरों और दूकानदारों ने अपनी अपनी दूकानों को अनेक

प्रकार की वस्तुओं से सुशोभित कर रक्खा था और बहुमूल्य वस्तुओं तथा चाँदी-सोने के पदार्थों को सबसे आगे कर रक्खा था। किसी किसी मकान पर निशान उड़ रहे थे। कहीं लोग अपनी छतों पर आ डटे थे। कुल-कामिनियाँ प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय योद्धा को झरोखों में से निहार रही थीं। रास्ते से होकर असंख्य पालकी, नालकी, हाथी, घोड़ा, राजा, मनसबदार, शेख़, अमीर और उमरा लोग हर समय चला करते थे। बड़े बड़े हाथी सुन्दर सुन्दर गहने पहने लाल वस्त्र की धूल धारण किये शुण्ड उठाये नाचते, मतवाली चाल से चले जा रहे थे। कहीं कहार "कङ्कड़ है---बच कर---हूँ हूँ" करते हुए डोली उठाये चले जा रहे थे। शिवाजी ने कभी ऐसा शहर नहीं देखा था। पूना और रायगढ़ की तो बात ही क्या थी।

चलते चलते रामसिंह ने तीन सुफ़ेद गुम्बजों को दिखाया और शिवाजी से कहा—देखिए, यही जुम्मा-मसजिद है। शाहजहाँ बादशाह ने संसार का धन एकत्रित करके इस मसजिद को बनवाया है। सुना है कि इसके जैसा संसार में कोई दूसरा भवन नहीं है।

शिवाजी विस्मित हो उधर देखने लगे कि मसजिद बड़ी लम्बी-चौड़ी । सुर्ख़ पत्थर की फ़सील बनी हुई है । गुम्बज उसके

इस अपूर्व मसजिद के सम्मुख ही राजभवन और क़िले की सुर्ख़ फ़सील देख पड़ती थी। दुर्ग के पीछे यमुना नदी बह रही थी। सामने शाहराह आदमियों से खचाखच भरा हुआ था। इसके समान उस समय भारतवर्ष में और कोई दूसरा स्थान नहीं था। संसार में कोई दूसरा था या नहीं, इसमें संदेह है।

क़िले की फ़सील पर सैकड़ों निशान हवा लगने से फहराते थे, जिससे मुग़ल-सम्राट् की क्षमता और उनका गौरव प्रकाशित होता था। दरवाज़े पर एक प्रधान मनसबदार की नौकरी थी। क़िले के बाहर सैनिकों का पहरा था। उनकी बन्दूकों और किरचों पर सूर्य्य की किरण पड़कर उन्हें चमका रही थीं। किरचों में लाल लाल निशान लगे हुए थे। क़िले के सामने हज़ारों लोग क्रय-विक्रय कर रहे थे। क़िले से मसजिद तक का स्थान आदमियों से खचाखच भरा हुआ था। हिन्दुस्तान के बड़े बड़े लोग हाथियों, घोड़ों, पालकियों पर सवार क़िले से बाहर-भीतर आया-जाया करते थे। उनके वस्त्रों की चमक-दमक से आँखें चौंधिया जाती थीं। लोगों के कोलाहल से कान के पर्दे फटे जाते थे। परन्तु प्राचीरों पर तोपों की आवाज़ इन सबको पार कर जाती थी और मानों ज़ोर ज़ोर से लोगों को कुछ अपनी सुना रही थी। इन सब स्थानों को बड़े विस्मय के साथ देखते देखते शिवाजी रामसिंह के साथ दुर्ग-द्वार लाँघ गये।

प्रवेश करते समय शिवाजी ने जो कुछ देखा उससे वे और भी विस्मित होगये। चारों ओर बड़े बड़े "कारख़ाने" हैं। सैकड़ों कारीगर बादशाह के लिए भाँति भाँति की चीज़ें बना रहे हैं। अपूर्व ज़रदोज़ी का काम बन रहा है, मलमल और छीटें तैयार की जा रही हैं। क़ीमती ग़लीचा, तम्बू, परदा और शाल-दुशाले भी बनाये जा रहे हैं। बेगमों के लिए सोने की चीज़ों की तो गणना नहीं किन्तु मणियों के आभूषण तैयार किये जा रहे हैं। खिलौने इत्यादि की कहाँ तक सूची दी जाय। जितने उत्तम शिल्पकार भारतवर्ष में थे वे सब शहंशाह से बड़ी बड़ी तनख़्वाह पाते और क़िले ही में काम करते थे।

शिवाजी को इन सभों के देखने का अवसर नहीं मिला और सीधे "दीवान आम" के पास पहुँच गये। बादशाह यहाँ अपने वज़ीरों के साथ दरबार किया करता था। परन्तु शिवाजी को अपना गौरव जताने के लिए आज का दरबार जगद्-विख्यात "दीवानख़ास" में लग रहा था। शिवाजी ने उसी जगह पहुँच कर देखा कि प्रासाद के भीतर लाल मणियों से विनिर्म्मित, सूर्य्यकिरणों के तुल्य "मोरसिंहासन" । तख़्तेताऊस । के ऊपर शाहंशाह औरङ्गज़ेब बैठा हुआ है। उसके चारों ओर चाँदी की चौकियों पर भारतवर्ष के अग्रगण्य राजा, मनसबदार, उमरा और सिपहसालार लोग चुपचाप बैठे हुए हैं। शिवाजी का परिचय देने के लिए रामसिंह राजसदन में पहले ही से पहुँच गये।

शिवाजी ने औरङ्गज़ेब के इस अभिप्राय को पहले ही से समझ लिया था कि आज शहर की शोभा क्यों बढ़ाई गई है। जिस समय वे राजसदन में पहुँचे, उन्हें और भी इसका निश्चय होगया। जिसने बीस वर्ष से बराबर लड़कर अपनी और स्वजातियों की स्वाधीनता की रक्षा की है वही आज सम्राट् की अधीनता स्वीकार करके बादशाह की मुलाक़ात के लिए दिल्ली चला आया है। देखना है कि औरङ्गज़ेब उसका किस प्रकार से आतिथ्य करता है। शिवाजी आज एक मामूली कर्मचारी की भाँति औरङ्गज़ेब के महलों में खड़े हैं! यद्यपि शिवाजी का रक्त उबल उठा परन्तु उन्हें सामान्य कर्मचारी की तरह "तस्लीम" करके "नज़र" देनी पड़ी। आज औरङ्गज़ेब का उद्देश सिद्ध हुआ। इसी उद्देश के साधनार्थ औरङ्गज़ेब ने आज शिवाजी से "नज़र" ग्रहण की है। परन्तु शोक है कि उसने शिवाजी का कुछ भी आदर न किया और "पञ्चहज़ारियों" की श्रेणी में बैठने

का उन्हें आदेश किया। शिवाजी के नेत्र अग्निवत् प्रज्वलित हो उठे, शरीर काँपने लगा। उन्होंने दाँतों से अपने होठ को दबा कर स्पष्ट रूप से कहा----ओफ़, शिवाजी पञ्च-हज़ारी! यदि सम्राट् महाराष्ट्र देश में चले तो देख सकता है कि शिवाजी के अधीन कितने पञ्चहज़ारी हैं और वे भी तलवार चलाने में दुर्बल नहीं हैं।

आवश्यक कार्य्य-सम्पादन हुआ। बादशाह उठकर पास ही ऊँचे सुफ़ेद संगमरमर से बने हुए ज़नानख़ाने में चला गया। उसी समय नदी के स्रोतों की भाँति क़िले से असंख्य लोक-स्रोत निर्गत होने लगा। जिसका जहाँ स्थान था वह वहीं चला गया। सागर की भाँति विस्तीर्ण दिल्ली-नगर में लोकस्रोत विलीन होगया।

शिवाजी के ठहरने के लिए एक मकान निर्दिष्ट हुआ था। रोष से भरे हुए शिवाजी सन्ध्या होते होते उस मकान में पहुँचे और चुपचाप अकेले बैठकर चिन्ता करने लगे।

थोड़ी देर के बाद राजसदन से यह संवाद आया कि "शिवाजी ने नाराज़ होकर जो कुछ कहा था वह सब बादशाह ने सुन लिया है। परन्तु वे शिवाजी को दण्ड देना नहीं चाहते किन्तु अब वे शिवाजी से भविष्य में कभी मिलना भी नहीं चाहते और न शिवाजी अब कभी दरबार में जाने पावेंगे।" शिवाजी ने समझ लिया कि भविष्यत् आकाश मेघाच्छन्न हो रहा है। व्याधा जिस प्रकार सिंह को फँसाने का जाल फैलाता है, क्रूर दुष्ट-बुद्धि औरङ्ग़ज़ेब भी धीरे धीरे उसी प्रकार शिवाजी को क़ैद करने के लिए मन्त्रणा-जाल फैला रहा है। शिवाजी मन ही मन विचारने लगे---क्या इस जाल को काट कर फिर स्वाधीन हो

सकूँगा ? हा सीतापति गोस्वामी ! चिरस्थायी युद्ध की तुम्हीं ने शिक्षा दी थी। वही बात अब याद आती है। औरंगज़ेब, सावधान ! शिवाजी तो तुम्हारे निकट सत्य का पालन करे और तुम उससे छल करो। याद रक्खो, शिवाजी भी इस विद्या में शिशु नहीं है। भवानी ! तुम साक्षी रहो। महाराष्ट्र देश में फिर समरानल प्रज्वलित करूँगा और सारा दिल्ली नगर और मुसलमान-साम्राज्य एकदम उसमें भस्मीभूत हो जायगा।

पच्चीसवाँ परिच्छेद

निशा का आगन्तुक

"विभूति-भूषिताङ्ग ! तुम कौन ?"

कुछ दिन में शिवाजी ने औरंगज़ेब के उद्देश को स्पष्ट रूप से समझ लिया। शिवाजी फिर स्वदेश को न लौट सके और चिरकाल के लिए बन्दी हो जाय, महाराष्ट्र लोग फिर स्वाधीनता लाभ न कर सकें—यही औरङ्ग़ज़ेब का उद्देश था। औरंगज़ेब के इस कपटाचार से शिवाजी यत्परो नास्ति रुष्ट हो गये, परन्तु क्रोध को छिपा कर दिल्ली से निकल जाने का उपाय ढूँढ़ने लगे।

शिवाजी के चिरविश्वस्त मन्त्री रघुनाथ पन्त न्यायशास्त्री सदा शिवाजी के साथ इस विषय में सोच-विचार किया करते। बहुत तर्क-वितर्क करने के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि पहले देश को लौटने के लिए सम्राट् से अनुमति ले ली जावे, जब अनुमति न मिले तब अन्य उपाय करके चल देना चाहिए।

पण्डितप्रवर रघुनाथ न्यायशास्त्री ने शिवाजी के इस उद्देश को राजमहलों में पहुँचाने का भार लिया।

आवेदन-पत्र में शिवाजी के दिल्ली आने का कारण स्पष्ट रीति से लिखा गया। शिवाजी ने दिल्ली की सेना का साथ देकर जो जो कार्य्य किया था और जिन्हें सम्राट् ने भी स्वीकार कर लिया था उन सबका उल्लेख किया गया और यह भी लिखा गया कि बादशाह ने दिल्ली में उन्हें किसलिए बुलाया था। इसके

पश्चात् शिवाजी की यह भी प्रार्थना थी कि हमने जिस कार्य्य-साधन के लिए कहा था उसके लिए अब भी प्रस्तुत हैं; विजयपुर और गोलकुण्डा के राज्य को सम्राट् की अधीनता में लाने के लिए यथासम्भव सहायता करेंगे। यदि सम्राट् हमारी सहायता नहीं चाहते तो हम उनकी दी हुई जागीर को वापस भी कर सकते हैं। इस प्रान्त का जल-वायु हमारे लिए और हमारे साथियों के लिए बड़ा अनिष्टकारक है। इस देश में हमारा रहना सम्भव नहीं।

रघुनाथ न्यायशास्त्री इसी प्रकार का आवेदन-पत्र लेकर बादशाह के सम्मुख उपस्थित हुए। बादशाह ने उसका जो उत्तर दिया उसमें पचासों तरह की बातें थीं, परन्तु शिवाजी को चले जाने देने की कोई बात न थी। अब शिवाजी ने और भी निश्चय कर लिया कि बादशाह का अभिप्राय मुझे सदैव बन्दीगृह में रखने का है। इसलिए इस पाश से निकलने का सुदृढ़ उपाय करना चाहिए।

उल्लिखित घटना के कई दिन बाद, एक दिन, शिवाजी जँगले में बैठे कुछ विचार रहे थे। सन्ध्या होगई थी, सूर्य्यदेव अस्ताचल को प्रस्थानित हो रहे थे, परन्तु अभी अन्धकार नहीं हुआ था। राजमार्ग से होकर अभी तक लोगों का आना-जाना बन्द नहीं हुआ था। देश देश के मनुष्य अपनी निराली निराली सजधज में अपने कार्य्य-सम्पादन के निमित्त इधर-उधर घूम रहे थे। कहीं कहीं श्वेताङ्ग मुग़ल तेज़ी से चले जा रहे थे और कहीं पर दो चार काले हबशी भी घूमते फिरते दीख पड़ते थे। फ़ारस, अरब, तातार और तुरकिस्तान के सौदागर और मुसाफ़िर लोग इस समृद्धिशाली नगर में व्यापार के लिए आये हुए

थे। हिन्दू और मुसलमान सैनिक, राजा, मनसबदार और अमीर उमरा इधर उधर टहल रहे थे।

धीरे धीरे आदमियों की भीड़ कम होने लगी, और दिल्ली के असंख्य दुकानदार अपनी अपनी दुकान बन्द करने लगे। शहर का शोर-गुल बन्द होने लगा और एक-आध घर में चिराग़ भी जलने लगे। दूर की अट्टालिकायें धीरे धीरे नज़रों से ओझल होने लगीं। आकाश में दो एक तारे भी दीख पड़ने लगे। अब पश्चिम दिशा से रक्तिमच्छटा भी लुप्त हो चली। शिवाजी पूर्व की ओर देख रहे थे। देखते क्या हैं कि शान्त, विस्तीर्ण, दिगन्तप्रवाहिनी यमुना नदी शान्त भाव से अनन्त सागर की ओर बही चली जाती है।

उसी निस्तब्धावस्था में जुम्मा मसजिद से "अज़ाँ" का उच्च शब्द होने लगा, और इस शब्द की प्रतिध्वनि चारों ओर से आने लगी। शिवाजी भी चुपचाप उसी गम्भीर स्वर को सुनने लगे। कुछ देर के पश्चात् उन्होंने फिर अन्धकार की ओर लौट कर देखा तो केवल सुफ़ेद सुफ़ेद जुम्मा मसजिद के मीनार कुछ कुछ दीख पड़ने लगे; हाँ, और राजमहलों की लाल दीवारें पर्वत-श्रेणियों की भाँति मालूम होने लगीं।

रजनी गम्भीर हुई, परन्तु शिवाजी का चिन्तासूत्र अभी तक छिन्न नहीं हुआ, क्योंकि उनको पहली सब बातें एक एक करके आज याद आ रही हैं। जैसे---बाल्यकाल के सुहृद्वर्ग, बाल्यकाल की आशायें और उद्यम, साहसी और उन्नत-चरित्र पिता शाहजी, पितृतुल्य अभिभावक दादाजी कोंड़देव, गरीयसी माता जीजी---जिसने वीरमाता के समान शिशु शिवाजी को महाराष्ट्र की जय-कथा सुनाई थी, विपद् में धैर्य्य दिया था और लड़ाई में उत्साहित किया था।

इसके पश्चात् यौवनावस्था की उन्नत आशायें, उन्नत कार्य्य-परम्परा, दुर्गविजय, देशविजय, राज्यविजय, विपद् पर विपद्, लड़ाई पर लड़ाई, अपूर्व्व जय-लाभ, दोर्दण्डप्रताप, दुर्दमनीय उच्चाभिलाषा----इसी प्रकार शिवाजी ने अपने बीस वर्ष के सारे कार्य्यों का पर्य्यालोचन कर डाला और देखा कि प्रत्येक वत्सर अपूर्व विजय अथवा असम साहसी कार्य्यों से अङ्कित और समुज्ज्वल है।

क्या यह सब व्यर्थ है? क्या यह आशा मायाविनी है? नहीं, अब भी भविष्यत् आकाश गौरव-नक्षत्र से हीन नहीं हुआ है। अब भी भारतवर्ष मुसलमान-राज्य से छुटकारा पावेगा और हिन्दूराज्य चक्रवर्ती राजा के सिर पर राजच्छत्र सुशोभित करेगा।

शिवाजी इसी प्रकार की चिन्ता करते थे कि प्रहर रात व्यतीत हो जाने का घंटा बजा। राजमहलों के नक्कारखाने से नौबत बजकर सारे शहर को सूचित करने लगी। अभी नौबत का शब्द आकाश में लीन नहीं हुआ था कि शिवाजी को अपने गवाक्ष के सामने एक दीर्घ मनुष्यमूर्त्ति दीख पड़ी।

विस्मित होकर शिवाजी खड़े होगये, और उसी आकृति की ओर तीव्रदृष्टि से देखने लगे। उन्होंने चुपचाप कमर से तलवार निकाल ली। अपरिचित आगन्तुक, शिवाजी की सम्मति लिये बिना ही, सीधे शिवाजी के पास चला आया और फिर धीरे धीरे ललाट और भ्रूयुगल पोंछने लगा।

शिवाजी ने तीक्ष्ण दृष्टि से देखा कि आगन्तुक के सिर पर जटाजूट है, और सारे शरीर पर भस्म रमा हुआ है। हाथ में किसी प्रकार का अस्त्र भी नहीं है। आगन्तुक व्यक्ति शिवाजी के

वध करने को भेजा हुआ बादशाह का गुप्तचर भी नहीं है। तो फिर यह है कौन ?

उस अँधेरी रात में आगन्तुक ने शिवाजी की ओर देखकर कहा—महाराज की जय हो !

अन्धकार के कारण शिवाजी उसे पहचान नहीं सके, परन्तु उसके स्वर को सुनते ही समझ गये। जगत् में प्रकृत-मित्र विरले ही हैं ! विपदावस्था में ऐसे मित्र को पाकर हृदय पुलकित हो जाता है। शिवाजी ने सीतापति गोस्वामी को प्रणाम कर के सानन्द आलिङ्गन किया, और सादर पास बैठाया। थोड़ी देर के बाद दीपक जला कर शिवाजी ने कहा—मित्रवर ! रायगढ़ की क्या दशा है ? आप वहाँ से कब और किस प्रकार यहाँ आये हैं ? इतनी दूर आने का क्या प्रयोजन था ? ऐसी अँधेरी रात में, गलियों में होकर, आने का कारण क्या है ?

सीतापति—महाराज ! रायगढ़ में सब कुशल है। आपने जिन मन्त्रियों को राज्यभार सौंपा है वे बड़ी बुद्धिमानी से कार्य्य कर रहे हैं। उनके प्रबन्ध में अमङ्गल होने की कोई सम्भावना नहीं। परन्तु हम इस विषय को अच्छी तरह नहीं जानते, क्योंकि आपके चले आने के पश्चात् हम भी चले आये थे। मैंने पहले ही कहा था कि व्रत के साधनार्थ मुझे देश देश का पर्य्यटन करना पड़ता है। इस अवस्था में जभी आपका साक्षात् हो जाय तभी मेरा सौभाग्य है।

शिवाजी—परन्तु फिर भी बिना कारण आप झरोखों में हो कर कभी नहीं आ सकते। कृपया कारण बताइए।

सीतापति—अच्छा, निवेदन करता हूँ। परन्तु पहले आप यह बता दें कि जब से आप यहाँ आये हैं तब से सकुशल तो हैं ?

शिवाजी—शरीर से तो सकुशल हूँ, परन्तु मन की कुशलता कहाँ ?

सीतापति—जब आपसे और बादशाह से सन्धि होगई तब फिर शत्रुता कैसी ?

शिवाजी—भला मेढक और सर्प की मित्रता कब तक रह सकती है ? सीतापति ! आप सब कुछ जानते हैं और अधिक मुझे मत लजाइए। यदि रायगढ़ में आपका परामर्श मान लेता तो कोकण देश अथवा पर्वत-कन्दराओं में भी निवास करके इस समय स्वाधीन रहता और आज खल बादशाह की बातों में पड़ कर दिल्ली में बन्दी न होता।

सीतापति—प्रभु ! आत्म-तिरस्कार मत कीजिए। मनुष्य-मात्र भ्रान्ति में पड़ सकते हैं। यह जगत् ही भ्रान्ति से परिपूर्ण है। आपका दोष नहीं। आपने सन्धि के वाक्यों पर विश्वास करके सदाचार का व्यवहार किया और वहाँ से यहाँ चले आये, परन्तु बादशाह कपटाचारी है। यदि ईश्वर ने चाहा तो उसे इसका फल चखाया जायगा। प्रभो ! छलियों की कुशल नहीं। आज उसने बुरी नीयत से आपको बन्दी किया है इसका फल यह होगा कि वह सवंश नष्ट होगा। महाराज ! आपने रायगढ़ में जो बात कही थी वह बात महाराष्ट्र को भूली नहीं है। "औरंगज़ेब यदि कपटाचरण करेगा तो समस्त महाराष्ट्र देश में इस प्रकार युद्धानल प्रज्वलित हो जायगा कि सारा मुग़ल-साम्राज्य उसमें जल कर भस्म हो जायगा।" यह सुनते ही उत्साह और उल्लास से शिवाजी के नयन जलने लगे। उन्होंने कहा—सीतापति ! यह आशा कभी लोप नहीं हुई है। अब भी औरंगज़ेब यह देखेगा कि महाराष्ट्र देश जीवित है। परन्तु शोक

है कि हमारे वीराग्रगण्य सेनापति तो मुग़लों से संग्राम करें और मैं दिल्ली में पड़ा रहूँ !

सीतापति—औरंगज़ेब जब गगनसञ्चारी वायु को जाल से रोक लेगा तब तो यह सम्भव है कि वह आपको बन्दी रख सके, अन्यथा नहीं ।

शिवाजी ने हँस कर कहा----ज़रा धीरे धीरे बोलिए । इससे तो यह निश्चय होता है कि आपने यहाँ से निकलने का कोई उपाय कर लिया है तभी तो आधी रात के समय आप यहाँ आये हैं ।

सीतापति—आप तीक्ष्ण-बुद्धि हैं । आपसे कोई बात छिपी नहीं रह सकती ।

शिवाजी—अच्छा वह उपाय क्या है ?

सीतापति—अँधेरी रात में तो आप योंही छद्मवेश धारण करके यहाँ से निकल सकते हैं । यद्यपि दिल्ली के चारों ओर शहर-पनाह है परन्तु पूर्व की ओर एक लौहशलाका के स्थापित होने के कारण फ़सील का कुछ भाग ख़ाली है, जिसे कूद जाना महाराष्ट्रों के लिए कठिन नहीं है; और दूसरी ओर नदी के पास आठ मल्लाह तैनात हैं, वह तुरन्त ही नाव पर सवार कराके मथुरा पहुँचा देंगे । वहाँ आपके सैकड़ों मित्र और बन्धु हैं । सैकड़ों देवालयों में अनेक धर्म्मात्मा पुजारी हैं । उनके द्वारा आप अनायास ही स्वदेश लौट सकते हैं ।

शिवाजी—मैं आपके उद्योग से बड़ा सन्तुष्ट हुआ । आपके समान मित्र दूसरा कोई नहीं । परन्तु यदि फ़सील कूदते समय किसी ने देख लिया तो भागना कठिन होगा, फिर तो औरंग-ज़ेब के हाथ से मारा जाना निश्चय है ।

सीतापति—जहाँ लोहशलाकायें हैं वहीं आपके दस सिपाहियों का पहरा है। जो कोई आपको रोके-टोकेगा वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होगा।

शिवाजी—यदि नौका चलने पर तीरस्थ कोई प्रहरी सन्देह-वश नौका को रोक दे तो?

सीतापति—आठों मल्लाह आपही के छद्मवेशी योद्धा हैं। उनका शरीर वर्म्माच्छादित है। वे सभी तरह से सुसज्जित हैं। भला किसके मुँह में बत्तीस दाँत हैं जो सहसा नौका रोक लेगा?

शिवाजी—मथुरा पहुँचने पर यदि कोई सच्चा हितैषी न मिले?

सीतापति—आपके पेशवाजी के बहनोई मथुरा ही में हैं। वे आपके चिरपरिचित और विश्वस्त हैं—यह आप भी जानते हैं। मैं आज उन्हीं के पास से आता हूँ। लीजिए, यह उनका पत्र पढ़िए।

सीतापति ने अपने वस्त्रों में से निकाल कर एक पत्र शिवाजी के हाथ में रख दिया। शिवाजी ने ज़ोर से हँस कर कहा—लो, पत्र तुम्हीं पढ़ो।

सीतापति लज्जित होगये। अब उन्हें स्मरण हुआ कि शिवाजी तो अपना नाम भी नहीं लिख सकते—लिखना-पढ़ना तो उन्होंने सीखा ही नहीं।

सीतापति ने पत्र पढ़ कर सुनाया। जिस जिस वस्तु की आवश्यकता थी, मोरेश्वर ने सब कुछ ठीक कर रक्खा है। ख़त में इसका विस्तार भली भाँति था।

शिवाजी ने कहा—गोस्वामिन्! आपका सारा जीवन याग-यज्ञ ही में व्यतीत नहीं हुआ है। आपके समान तो शिवाजी का

मन्त्री भी कार्य्यसम्पादन नहीं कर सकता। किन्तु फिर भी एक बात है। हम चले जायँगे तो हमारा पुत्र कहाँ रहेगा? हमारे विश्वस्त मन्त्री रघुनाथ पन्त और प्रिय सुहृद् तानाजी मालश्री कहाँ जायँगे? भला हमारे सैनिक किस प्रकार औरंग-ज़ेव के कोपसागर से तर सकेंगे?

सीतापति—आपका पुत्र, प्रिय सुहृद् और मन्त्री सभी आपके साथ आज रात को जा सकते हैं। आपकी सेना यदि दिल्ली में पड़ी भी रहे तो कोई हानि नहीं। औरंगज़ेव उनका क्या कर सकता है। अन्त में उसे छोड़ते ही बनेगा।

शिवाजी—सीतापति! आप औरंगज़ेव को नहीं जानते। वह अपने भाइयों को मार कर सिंहासन पर बैठा है।

सीतापति—यदि औरंगज़ेव आपके सैनिकों पर कोई कठोर वर्ताव किये जाने की आज्ञा देगा तो लोग आपको निरापद समझ कर मरने-मारने को प्रस्तुत हो जायँगे।

शिवाजी थोड़ी देर तक चुपचाप कुछ विचारने लगे। फिर प्रकट रूप में उन्होंने कहा—गोस्वामिन्! मैं आपके उद्योग और परिश्रम के लिए चिरबाधित हूँ, परन्तु शिवाजी अपने भृत्यों और आत्मीयों को आपत्ति में छोड़कर मुक्त होना नहीं चाहता। यह भीरुता का कार्य मेरे किये न होगा। सीतापति! कोई दूसरा उपाय सोचो, नहीं तो इस उपाय को छोड़ दो!

सीतापति—और कोई उपाय नहीं है।

शिवाजी—तब समय दो। शिवाजी को यह पहली आपदा नहीं है। शिवाजी उपाय सोचने में कच्चा नहीं है।

सीतापति—समय नहीं है। आज ही की रात आप निकल चलें, नहीं तो कल आपका निकलना कठिन हो जायगा।

शिवाजी—क्या आपने किसी योग-बल से यह जान लिया है? हम तो नहीं जानते। यदि आपका कथन वास्तव में यथार्थ निकले तो भी शिवाजी का दूसरा कोई वक्तव्य नहीं है। आश्रित और प्रतिपालित लोगों को विपत्ति में छोड़कर शिवाजी आत्म-परित्राण नहीं किया चाहता। गोस्वामिन्! यह क्षत्रिय-धर्म नहीं है।

सीतापति—प्रभो! विश्वासघातकों को प्राणदण्ड देना क्षत्रियों का परम कर्त्तव्य है। अतः औरंगज़ेब को यही दण्ड देना उचित है। इसलिए आप सुदूर महाराष्ट्र देश को वापस चलें। फिर वहीं से सागर-तरङ्गवत् समर-तरङ्ग प्रवाहित कीजिए, जिसमें औरंगज़ेब का सुख-स्वप्न भङ्ग हो जाय और उसकी साम्राज्यरूपी नौका—जो पाप के पत्थरों से भारी हो रही है—अतुल रण-सागर में मग्न हो जाय।

शिवाजी—सीतापति! जो ब्रह्माण्ड के राजा हैं वही औरंगज़ेब को दण्ड देंगे। मेरी बात मानो, इसमें अधिक विलम्ब नहीं है। शिवाजी आश्रितों को छोड़ नहीं सकता।

सीतापति—प्रभो! अब भी आप अपनी प्रतिज्ञा को त्याग दीजिए। ज़रा ध्यान से विचारिए। कल सोचने का अवसर नहीं मिलेगा। आप कल क़ैद हो जायँगे।

शिवाजी—कुछ भी हो। आश्रितों को छोड़ नहीं सकता,—शिवाजी की यह प्रतिज्ञा अटल है।

सीतापति चुप हो रहे। शिवाजी ने देखा कि उनकी आँखों से आँसू निकल रहे हैं। तब उन्होंने तुरन्त सीतापति का हाथ पकड़ कर कहा—गोस्वामिन्! रञ्ज न कीजिए। आपके यत्न, आपकी चेष्टा, हमारे हृदय से आजन्म मिटने की नहीं। रायगढ़ में आपका वीर-परामर्श और दिल्ली में मेरे उद्धारार्थ आपका यह

उद्योग मेरे हृदय में अंकित हो गया है। आप कृपा करें, आप ही के परामर्श द्वारा शीघ्र ही सबका उद्धार होगा।

सीतापति—प्रभो! आपके मिष्टभाषण से मैं यथोचित पुरस्कृत होगया। मैं ईश्वर को साक्षी देकर कहता हूँ कि आपके साथ रहने के अतिरिक्त मेरी कोई और कामना नहीं , परन्तु मेरा अलङ्घनीय व्रत नाना स्थानों पर भ्रमण करने को वाध्य करता है।

शिवाजी—यह कौन असाधारण व्रत है, हम तो नहीं जानते। सीतापति! यह कठोर व्रत क्यों धारण किया है?

सीतापति—सारी बातें इस समय किस प्रकार समझा सकता हूँ?

शिवाजी—अच्छा, इस व्रत को किसलिए धारण किया है?

थोड़ी देर के विचार के बाद सीतापति ने कहा—हमारे भाग्य में एक अमङ्गल लिखा हुआ था। हम अपने जिस इष्टदेवता की वाल्यकाल से पूजा करते थे और जिसका नाम जप कर जीवन धारण कर रक्खा है, वही देव—ईश्वर की अनिच्छा से—हमसे विमुख हो गये। उसी अमङ्गल के खण्डनार्थ व्रत धारण किया है।

शिवाजी—यह अमङ्गल आपको किसने बताया? क्या किसी ने उसके खण्डनार्थ आपको व्रत धारण करने का परामर्श दिया है?

सीतापति—कार्य्यवश हमने स्वयम् जान लिया। ईशानी के मन्दिर में एक महात्मा ने हमें इस व्रत के साधनार्थ उपदेश किया है। यदि मनोरथ सफल होगया तो सब आपसे निवेदन करूँगा। यदि अकृतार्थ हुआ तो इस अकिञ्चन जीवन का त्याग करूँगा। जिसकी पूजा करने को यह जीवन धारण कर रक्खा है उसी के विमुख रहने पर जीवित रहने की क्या आवश्यकता?

शिवाजी—सीतापति ! आपने जो कुछ कहा है वह यथार्थ है। जिसके लिए प्राणपण किया जाय, जिसके लिए आत्म-समर्पण कर निज जीवन तुच्छ समझा जाय, उसी के असन्तुष्ट रहने पर तो इस दुःख की तुलना नरक से भी नहीं की जा सकती।

सीतापति—प्रभो ! क्या आपने कभी ऐसी यातना भोगी है ?

शिवाजी—ईश्वर हमें क्षमा करें। हमने एक निर्दोषी वीर पुरुष को ऐसी यातना दी है। उस बालक का जब हमें स्मरण हो आता है, हृदय कम्पायमान हो जाता है।

सीतापति—उस अभागे का नाम क्या था ?

शिवाजी ने कहा—रघुनाथ हवलदार।

घर का दीप सहसा बुझ गया। शिवाजी दीपक जलाने लगे। उसी समय सीतापति ने कहा—दीपक की आवश्यकता नहीं है। कहिए, मैं योंही सुनता जाता हूँ।

शिवाजी—और क्या कहूँ, तीन वर्ष हुए कि वह वीर बालक हमारे निकट आकर सेना में भर्ती होगया था। उसका वदन-मण्डल बड़ा उदार था। सीतापति ! आप ही की भाँति उसका उन्नत ललाट था और आप ही के जैसे उज्ज्वल नयन थे। हाँ, उसकी अवस्था आपसे कुछ कम तो थी, परन्तु उसका हृदय आप ही की भाँति दुर्दमनीय वीरत्व और साहस से सर्वदा परि-पूर्ण रहता था। आपका बलिष्ठ उन्नत देह जब देखता हूँ, आपका स्पष्ट कण्ठस्वर जब सुनता हूँ और जब आपके वीरोचित विक्रम की आलोचना करता हूँ तभी उस बालक का स्मरण हो जाता है।

सीतापति—फिर ?

शिवाजी—उस बालक को जब मैंने पहले ही दिन देखा था तभी समझ लिया था कि यह वास्तविक वीर होगा और उसी

दिन उसे अपनी एक तलवार दे दी थी। रघुनाथ ने उस असि का कभी अपमान नहीं किया। विपत्ति के समय सर्वदा हमारे साथ छाया की भाँति फिरा करता था। लड़ाई के समय दुर्दमनीय तेज प्रकट करके शत्रुओं का भेदन करता था। मुझे ऐसा विश्वास है कि अब उसके घुँघराले कृष्णकेश और उज्ज्वल नयन कदापि देखने को न मिलेंगे।

सीतापति—फिर?

शिवाजी—उस बालक ने लड़ाई में मेरी जीवन-रक्षा की है। एक लड़ाई में उसी के विक्रम से दुर्ग जय हुआ था। अनेकों लड़ाइयों में उसने असाधारण पराक्रम प्रकट किया था।

सीतापति—उसके बाद?

शिवाजी—आप और क्या पूछते हैं? एक दिन धोखा हो जाने से हमने उस चिरविश्वासी अनुचर का अपमान किया था और उसे अपने कार्य्य से पृथक् कर दिया, परन्तु उस वीर ने अन्त तक कोई कड़ी बात भी नहीं कही। चलते समय वह सिर नवा कर चला गया।

शिवाजी का कण्ठ रुद्ध होगया और आँखों से आँसू निकल आये। कुछ समय तक कुछ कहा नहीं गया।

फिर कुछ ठहर कर सीतापति ने कहा—इसमें आपका दोष क्या था? दोषी को दण्ड देना ही चाहिए।

शिवाजी—दोषी! रघुनाथ उन्नत-चरित्र का मनुष्य था। उसमें दोष का स्पर्श भी नहीं था। न मालूम किस कुक्षण में मुझे भ्रम हुआ था। रघुनाथ को एक चढ़ाई पर पहुँचने में कुछ देरी होगई थी, और हमने उसी में उसको विद्रोही समझ लिया; परन्तु महानुभाव जयसिंह ने पता लगा लिया था कि वह एक पुरोहित से आशीर्वाद लेने गया था और यही विलम्ब का कारण

था। निर्दोषी का मैंने अपमान किया है, सुना है कि उसी अप-मान के कारण रघुनाथ ने प्राण त्याग दिये हैं। युद्ध में जिसने हमारे प्राणों की रक्षा की थी—शोक है कि हमने उसी के प्राण लिये।

शिवाजी की बात समाप्त होगई। उनसे बोला नहीं गया। वह अनेक क्षण तक नीचे देखते रहे। फिर कहने लगे—सीतापति ! सीतापति !!

किसी ने उत्तर नहीं दिया। कुछ विस्मित होकर शिवाजी ने दीपक जला लिया। देखते हैं तो वहाँ कोई नहीं। सीतापति न मालूम कहाँ चले गये।

छब्बीसवाँ परिच्छेद

औरंगज़ेब

"मुख में राम, बग़ल में छुरी। चतुर करें आगोशपुरी ॥"
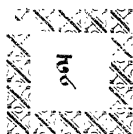
दूसरे दिन, एक पहर दिन चढ़े, शिवाजी की निद्रा भङ्ग हुई। वे जागते ही राजमार्ग पर गोलमाल सुनकर गवाक्ष से देखने लगे। देखते क्या हैं कि उन्हीं का स्थान पहरेदारों से घिरा हुआ है। बिना जाने-पहचाने कोई अब भीतर नहीं जा सकता। उन्होंने यह भी देखा कि उनके मकान के चारों ओर शस्त्रधारी पहरेदारों की चौकसी है। जब तक अच्छी तरह परिचय नहीं पा लेते, किसी को भीतर आने नहीं देते। अब शिवाजी को गोस्वामी की बात याद पड़ गई। कल तो शिवाजी निकल सकते थे, परन्तु आज वे औरंगज़ेब के बन्दी हैं!

अब शिवाजी विचार करने लगे कि इसका कारण क्या है। बहुत सोचने पर मालूम हुआ कि प्रार्थना-पत्र से औरंगज़ेब को सन्देह हुआ है और इसी कारण उसने शहर के कोतवाल को आज्ञा दे दी है कि शिवाजी के मकान के चारों ओर दिन-रात पहरा बिठा दो, जिसमें वे कहीं भी जायँ तो उनके साथ डिटेक्टिव लगे रहें। अब शिवाजी को निश्चय हुआ कि सीतापति ने औरंगज़ेब की इच्छा जान ली थी, इसी कारण उस इच्छा के कार्य्यरूप में परिणत होने से पहले ही मेरे चले जाने का प्रबन्ध करके कल रात को वह मेरे पास आये थे। शिवाजी मन ही मन गोस्वामी को धन्यवाद देने लगे।

औरंगज़ेब की कपट-लीला अब स्पष्ट रूप से प्रकट हुई। बादशाह ने पहले बड़े सम्मान-सूचक शब्दों में पत्र लिखकर शिवाजी को बुला भेजा था। जब शिवाजी आगये तब भरी सभा में उनका अपमान किया। स्वदेश वापिस जाने देने में आपत्ति मचाई गई और अब वह नज़रबन्द भी कर लिये गये। कोई कोई अजगर, भक्षण करने के प्रथम, अपने भक्ष्य पदार्थ को चारों ओर से अपने दीर्घ शरीर से लपेट लेते हैं और उसे वशीभूत करके निगलने लगते हैं। क्रूर औरंगज़ेब ने भी इसी प्रकार अपने कपटजाल में शिवाजी को फँसाकर उनके विनाश का संकल्प कर लिया है। साधारण मनुष्य के लिए जो बात समझने के अयोग्य थी शत्रु के उस गुप्त षड्यन्त्र को शिवाजी ने पलमात्र में समझ लिया। अब उनका अधर काँपने लगा, आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। बहुत देर के पश्चात् शिवाजी होंठ चबाकर कहने लगे---औरंगज़ेब! शिवाजी को तूने अभी तक नहीं जाना। चतुरता में तू अपने को अद्वितीय समझता है, किन्तु शिवाजी भी इस विद्या में बालक नहीं है। यह ऋण एक दिन चुका दूँगा। दक्षिण से लेकर सारे भारतवर्ष में समरानल प्रज्वलित हो जायगा।

बहुत देर तक शिवाजी ने सोच विचार किया। पश्चात् अपने विश्वस्त मन्त्री रघुनाथ पन्त को बुलाया। प्राचीन न्याय-शास्त्री उपस्थित हुए और चुपचाप सामने खड़े होगये। शिवाजी ने कहा,—पण्डितवर! आप औरंगज़ेब के खेल को देख रहे हैं न? आपके प्रसाद से शिवाजी भी इस खेल में कच्चा नहीं है। बन्दी तो मैं आज हुआ हूँ परन्तु इसका समाचार मुझे कल ही मिल गया था—किन्तु अपने अनुचरों आदि को दुःख में छोड़कर स्वयं निकल जाने की इच्छा मुझे नहीं। क्यों?

न्यायशास्त्री ने बहुत सोच विचार के बाद कहा—आप बादशाह से प्रार्थना करें कि अनुचरों को स्वदेश लौट जाने दीजिए। जब उसने आपको बन्दी कर लिया है तब तो वह इस बात से और भी प्रसन्न होगा कि आपके नौकर-चाकर जितने ही कम हों उतना ही बेहतर। मेरा विचार है कि यह अनुमति आपके माँगते ही मिल जायगी।

शिवाजी—मन्त्रिवर, आपका परामर्श बहुत उत्तम है। हमारी भी समझ में यह बात आती है कि धूर्त्त औरंगज़ेब इस विषय में आपत्ति नहीं करेगा।

इसी आशय का एक प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया गया। शिवाजी ने जो कुछ सोच रक्खा था वही हुआ। शिवाजी के अनुचर दिल्ली से चले जायँगे इस बात को सुनकर औरंगज़ेब बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने तुरन्त ही आज्ञा दे दी। शिवाजी कई दिन बाद इस अनुमति को सुन कर मन में विचारने लगे कि मूर्ख! शिवाजी को बन्दी रक्खेगा? यदि अभी एक अनुचर का वेश बनाकर और एक अनुमति-पत्र लेकर यहाँ से चला जाऊँ तो तू मेरा क्या करेगा? यही होगा; अनुचर निरापद निकल जायँ फिर शिवाजी अपने निकलने का उपाय स्वयम् कर लेगा।

पाठक! जिसने असाधारण चातुर्य, बुद्धि-कौशल और रण-नैपुण्य द्वारा अपने भाइयों को परास्त करके अपने बाप को बन्दी कर लिया और जो दिल्ली के तख़्तेताऊस पर विराजमान हुआ तथा बङ्गदेश से कश्मीरपर्य्यन्त समस्त आर्य्यावर्त्त का अधिपति होकर भी फिर दक्षिण देश को जीतकर जिसने सारे भारतवर्ष में एकाधीश्वर होने का सङ्कल्प किया था, चलो एक बार उस क्रूर कपटाचारी अथवा साहसी औरंगज़ेब के राज-भवन में प्रवेश कर उसके मन के भावों का निरीक्षण करें।

राजकार्य्य समाप्त हो गया है। औरंगज़ेब एक महल में बैठा हुआ है। यह मन्त्रियों के साथ गुप्त परामर्श करने का स्थान है। परन्तु आज यहाँ औरंगज़ेब अकेला ही बैठा हुआ विचार कर रहा है। कभी उसके ललाट पर गम्भीर चिन्ता की लकीरें पड़ जाती हैं, कभी उसके उज्ज्वल नयन रोष, अभिमान और दृढ़ प्रतिज्ञा से आच्छादित हो जाते हैं और कभी मन्त्रणा की सफलता की आशा से उसके होठों में हँसी दीख पड़ती है। बादशाह क्या कर रहा है? यह चिन्ता तो नहीं कर रहा है कि मैं अपने बुद्धिबल से आज सारे भारतवर्ष का शाहनशाह हो गया? वह यह तो नहीं विचार रहा है कि अब हिन्दुओं का अच्छा अपमान हुआ; उनके सत्यानाश होने में अधिक विलम्ब नहीं? हम नहीं जान सकते कि वह क्या क्या विचार कर रहा है, क्योंकि वह भारतवर्ष के किसी मनुष्य, किसी सेनापति और किसी मन्त्री का पूरा विश्वास नहीं करता और न कभी अपने मन का विषय खोलकर किसी से कहता था। अपनी बुद्धि की दूर-दर्शिता के बल पर वह सभों को कठपुतली की भाँति नचाता था, और सारे देश में शासन करता था। जिस प्रकार शेष भगवान् पृथ्वी के धारण करने में विश्राम अथवा किसी की सहायता नहीं लेते इसी प्रकार औरंगज़ेब अपने मानसिक बल द्वारा सारे साम्राज्य के शासनकार्य्य में किसी की सहायता नहीं चाहता था।

औरंगज़ेब बहुत देर से बैठा है। इतने में एक सैनिक ने आकर "तसलीम" के बाद कहा—जहाँपनाह! आक़िल दानिश-मन्द आपका न्याज़ हासिल किया चाहता है।

बादशाह ने दानिशमन्द को अन्दर बुलाने का हुक्म दि और स्वयम् चिन्तावस्था को त्यागकर हँसमुख बन गया।

दानिशमन्द न तो औरंगज़ेब का मन्त्री था और न राजकार्य में परामर्श देने का साहस करता था; वह फ़ारसी और अरबी का असाधारण पण्डित था। इसलिए सम्राट् उसकी बड़ी इज़्ज़त करता था और बातचीत के सिलसिले में कुछ पूछ भी लेता था। उदारचेता दानिशमन्द प्रायः उदार ही परामर्श दिया करता था। जब औरंगज़ेब ने अपने बड़े भाई दारा को क़ैद कर लिया था तब दानिशमन्द ने उसके प्राणों की रक्षा ही का परामर्श दिया था। परन्तु यह बात औरंगज़ेब के मन को अच्छी नहीं लगी थी और दानिशमन्द को "कमअक़्ल" का ख़िताब दिया था, परन्तु उसकी विद्या की सदैव प्रशंसा किया करता था। आज भी सरल स्वभाव दानिशमन्द (औरंगज़ेब के कमअक़्ल) बादशाह को एक ज़रूरी बात बताने आये हैं।

दानिशमन्द—इस वक़्त यहाँ आने की जो मैंने गुस्ताख़ी की है उसे जहाँपनाह मुआफ़ करेंगे, क्योंकि यह वक़्त हुज़ूर आला के आराम करने का है। मगर आपकी इनायत की उम्मीद पर यहाँ चला ही आया हूँ।

बादशाह ने हँसकर कहा—दानिशमन्द! दीगरों के नज़दीक ख़ाह यह रास्त हो वले आप इज़्ज़त के क़ाबिल हैं।

कुछ समय तक इसी प्रकार की मीठी मीठी बातें होती रहीं। अन्त में दानिशमन्द ने दूसरी बात छेड़कर कहा—जहाँपनाह! आपने "आलमगीर" नाम को बामानी कर दिया। वाक़ई हिन्दुस्तान अब आपके ताबा है। उसकी तसख़ीर में अब तवुक्कुफ़ नहीं!

ज़रा खिलखिला कर औरंगज़ेब ने कहा—क्यों, आपने किस ख़ास उमूर पर निगाह डाली है?

दानिशमन्द—जुनूबी बाग़ी अब तो आपके ताबे

औरंगज़ेब—क्या शिवाजी की बात कहते हो ? अब तो हिन्दू फँस गये।

दानिशमन्द को अपने मन के भाव न समझने देने के लिए औरंगज़ेब ने बात को बदल कर कहा—दानिशमन्द ! आप तो मेरे मक़सद को जानते ही होंगे कि मुल्क के बड़े बड़े सरदारों की इज़्ज़त करना मैं अपना उसूल समझता हूँ। शिवाजी चालाक और बाग़ी है लेकिन जवाँमर्द भी है इसीलिए उसे दिल्ली में बुलाया है। फिर एक दिन उसे दरबार में बुलाकर बड़ी इज़्ज़त के साथ वापस करूँगा परन्तु वह ऐसा बेवक़ूफ़ है कि दरबार ही में उसने गुस्ताख़ी की, गो उसको मैंने क़ैद कर लिया है मगर उसके क़त्ल करने के मैं बिलकुल ख़िलाफ़ हूँ। इसीलिए दूसरी कोई सख़्त सज़ा न देकर सिर्फ़ उसे दरबार में आने से रोक दिया है। अब भी सुन रहा हूँ कि वह दिल्ली के संन्यासियों और बाग़ियों से मशविरा कर रहा है। जिसमें कोई नुक़सान न हो, इसीलिए शहर के कोतवाल को हिदायत कर दी है कि वह उसकी ख़ास निगरानी रक्खें। कुछ दिनों के बाद मैं उसे इज़्ज़त के साथ रुख़सत कर दूँगा।

बादशाह की इन बातों को सुनकर दानिशमन्द बड़ा ख़ुश हो गया।

औरंगज़ेब—क्यों ?

उदारचेता दानिशमन्द ने कहा—मैं बादशाह को सलाह देने के लायक़ कहाँ, मगर जहाँपनाह ! अगर शिवाजी के साथ रहम न किया गया और वह हमेशा के लिए क़ैद रक्खा गया तो लोगों को कहने का बड़ा मौक़ा होगा कि शिवाजी को बुलाकर बेइन्साफ़ी के साथ उसे क़ैद कर लिया।

औरंगज़ेब ने हँसी में अपने .गुस्से को छिपा लिया और कहा—दानिशमन्द! ख़राब लोगों के कहने से औरंगज़ेब का कोई हर्ज नहीं है। उनकी अच्छी बातों की बदौलत मैंने तख़्त नहीं हासिल किया। हाँ, ब नज़र इन्साफ़ उसे तम्बीह करूँगा। फिर उसकी इज्ज़त की जायगी।

दानिशमन्द—.खुदावन्द के जद्द अमजद शाहंशाह अकबर इसी खुशखुल्की की बदौलत मुल्कों पर हुकूमत करते रहे और इसी हिकमत अमली से आपका भी नाम आलमगीर होगा।

औरंगज़ेब—भला किस प्रकार?

दानिशमन्द—बादशाह से कोई बात छिपी नहीं है। देखिए न, अकबरशाह ने जब दिल्ली के तख़्त को हासिल किया था उस ज़माने में सारी सलतनत बाग़ियों से पुर थी; राजपूताना, बिहार, दकन और सभी मुक़ामों पर बाग़ियों का ज़ोर था। हालाँ कि दिल्ली का कुर्बजवार भी बाग़ियों से मुबर्रा न था। लेकिन उनके आख़िरी ज़माने में सारी बादशाहत बाग़ियों से पाक होगई थी। हालाँ कि जो अवायल में सख़्त दुश्मन था वही राजपूत, बादशाह का, फ़रमाबर्दार बन गया और काबुल से लेकर बङ्गाल तक का मुल्क दिल्ली के बादशाह के अमल के नीचे कर दिया। क्या फ़तह ताक़ते-बाज़ू ही पर मुनहसिर है या सिर्फ़ हिम्मत पर? तैमूर के ख़ानदान में कोई शख़्स ताक़ते-बाज़ू और हिम्मत से ख़ाली नहीं था, मगर किसी ने इस तरह की नुसरत हासिल क्यों नहीं की? .खुदावन्द! यह सिर्फ़ शराफ़त का समरा था। अकबर ने दुश्मनों के साथ रहम किया, ताबे हिन्दुओं पर इनायात कीं और उनका एतबार किया; इस तहर हिन्दुओं ने भी अपने को फ़मावरदार ज़ाहिरकरने की कोशिशें कीं। मानसहिं, टोडरमल, बीरबल वग़ैरह ने हिन्दू होकर भी

मुसलमानी सलतनत को वसअत दी। अच्छे आदमियों पर भी इत्मीनान न रखने से वह ख़राब हो जाता है। ख़राब काफ़िर के साथ नेक वर्ताव करने से वह आहिस्ता आहिस्ता नेक बन जाता है। यह .कुद्रती .कवानीन हैं। हमारे दकन के मुहिम्म में शिवाजी ने बड़ी मदद दी है। जहाँपनाह! इसलिए उसकी इज़्ज़त करने से वह ज़िन्दगी भर मुग़ल सलतनत का एक रुक्न बना रहेगा।

पाठकगण समझ गये होंगे कि दानिशमन्द किस प्रयोजन को लेकर औरंगज़ेब से मिलने आया था। शिवाजी को बुलाकर दिल्ली में क़ैद करने से सभी ज्ञानी और सदाचारी मुसलमान सभासद् लज्जित हो गये थे। औरंगज़ेब दानिशमन्द की इज़्ज़त करता था, इसी लिए उसने बातचीत में ही बादशाह का मन्द उद्देश उसको जता देने का साहस किया था और उसकी यह आन्तरिक इच्छा थी कि बादशाह शिवाजी का समादर करके उसे छोड़ दे। मगर दानिशमन्द को इसकी कहाँ ख़बर थी कि चाहे हाथ से पहाड़ उठा लिया जाय परन्तु औरंगज़ेब को अपने गम्भीर उद्देशों से विचलित करना असम्भव है।

दानिशमन्द की उदार और सारगर्भित बातें औरंगज़ेब के मनोगत न हुईं। उसने ज़ोर से हँस कर कहा—हाँ, दानिशमन्द, क्या कहना है। तुम बड़े अक़्लमन्द हो। दखिन में तो शिवाजी रुक्न रहे। राजपूताने में बाग़ियों ने पहिले ही से मीनार खड़ी कर रक्खी है। कश्मीर फिर .खुदमुख़्तार कर दिया जाय, और बङ्गाल में पठानों को इज़्ज़त के साथ फिर बुला लिया जाय। बस, फिर इन्हीं चार रुक्नों पर मुग़ल सलतनत .खूब मज़बूत हो जायगी! क्यों न?

दानिशमन्द का चेहरा सुर्ख़ होगया । उसने धीरे धीरे कहा—आपके वालिद मेरी इज्ज़त करते थे । आप भी मेहरबानी रखते हैं । इसी लिए कभी कभी मन की बात कह देता हूँ, वरना मुझमें जहाँपनाह को सलाह देने की क़ाबलियत कहाँ !

औरंगज़ेब ने दानिशमन्द को निर्वोध, सरल-व्यक्ति जानकर भी उसकी इस सरलता को बुरा नहीं समझा । जब उसको यह मालूम हुआ कि दानिशमन्द को दुःख हुआ है तब उसने कहा—दानिशमन्द ! हमारी बातों से नाराज़ न होना । अकबरशाह अक़्लमन्द थे, इसमें कोई शक नहीं, लेकिन उन्होंने काफ़िरों और मुसलमानों को एक ही नज़र से देखा जिससे मज़हब की तौहीन हुई । एक और बात है जिसको हम रोज़ रोज़ देखते हैं कि जिस तरह अपने हाथ से काम अच्छा बनता है उस तरह दूसरों से कराने से बेहतर नहीं होता । जब ख़ुद सारी बादशाहत का इन्तिज़ाम कर सकता हूँ तो फिर काफ़िरों से मदद लेने की क्या ज़रूरत ? औरंगज़ेब लड़कपन ही से अपनी तलवार पर भरोसा करता है और उसी की बदौलत तख़्त हासिल किया है । अब उसी के ज़रिये ज़ब्त क़ायम रक्खूँगा । हम किसी की मदद नहीं चाहते और न किसी का एतबार ही करते हैं ।

दानिशमन्द—जहाँपनाह, अपने हाथ से रोज़ाना काम किया जा सकता है, लेकिन इतनी बड़ी बादशाहत का इन्तिज़ाम करना बिला मदद लिये मुशकिल है । क्या बङ्गाल, दक्खिन और काबुल हर जगह आप मौजूद रहेंगे ? बिला किसी के मुक़र्रर किये कैसे मुमकिन है ?

औरंगज़ेब—ज़रूर किसी दोस्त को मुक़र्रर करना पड़ेगा, मगर ऐसे नौकर नौकर की भाँति रहेंगे, न कि मालिक बनकर । आज हम जिसको ज़्यादा अख़्तियार दे दें कल वही अगर

बरख़िलाफ़ हो जाय; या आज जिसका ज़्यादा अख़्तियार है वही कल फ़िला अंगेज़ी कर सकता है—इसलिए ताक़त और एतबार दूसरे के हाथ में न देकर ख़ुद उसका अहल होना चाहिए। दानिशमन्द ! जिस तरह तुम घोड़े पर चढ़कर उसकी लगाम अपने हाथ में लेते ही मनमाना जिधर चाहो घुमा सकते हो—यही हालत सलतनत की है और बादशाह को इसी तरह अपना इन्तज़ाम करना चाहिए। न तो किसी को ज़्यादा अख़्तियार देना चाहिए और न किसी सिपहसालार के क़ाबू में रहना चाहिए।

दानिशमन्द—ख़ुदावन्द ! आदमी घोड़ा नहीं है। अल्लाह ने उसको अक़्ल दी है। वे अपने फरायज़ से वाक़फ़ियत रखते हैं।

औरंगज़ेब—यह मैं भी जानता हूँ कि आदमी घोड़ा नहीं है; नहीं तो चाबुक से न काम लिया जाता। इसी लिए तो वह अक़्ल से चलाया जाता है। जो अच्छा काम करता है उसे इन-आम दिया जाता है और बुरा काम करनेवाला सज़ा पाता है। इसी लिए आदमी इनआम की ख़ाहिश और सज़ा के डर से तमाम काम करता है। औरंगज़ेब इन सबको इसलिए अपने हाथ में रक्खेगा।

दानिशमन्द—हुज़ूर ! इनआम और सज़ा का असर लोगों के दिलों पर मुख़्तलिफ़ तौर पर होता है। आदमियों में सिफ़त है, कोई हौसलामंद होता है, और वह अपनी इज़्ज़त चाहता है; लेकिन जो शख़्स महज़ सज़ा के डर से काम करता है वह ठीक नहीं। हाँ, जिसकी आप इज़्ज़त करते हैं, एतबार करते हैं, वह आपके ताबा होकर अपने मालिक का काम सच्चे मन से करता है। इसकी सैकड़ों मिसालें मौजूद हैं।

औरंगज़ेब—दानिशमन्द ! हम तुम्हारी तरह आलिम नहीं हैं। शाइरी में जो कुछ बयान है हम उसका यक़ीन नहीं करते।

हाँ, आदमियों की ख़सलत ही हमारा शास्तर है। हमने उनकी ख़सलतों को ख़ूब देखा है। बदमाशी, धूर्तता, शरारत, एहसान फ़रामोशी को ख़ूब समझ लिया है। इसी लिए काफ़िरों के ऊपर जिज़िया लगा दिया है। बाग़ी राजपूतों को सख़्ती के साथ नज़र में रक्खा है। मराठों को दुश्मनी का मज़ा चखा देंगे। विजयपुर और गोलकुण्डा को अपनी सलतनत में मिला लेंगे। फिर हिमालय से रासकुमारी तक बिला शिरकते ग़ैरी बादशाहत करके 'आलमगीर' को इस्म बा मुसम्मा कर देंगे।

मारे उत्साह के बादशाह की आँखें चमक गईं। उसने अभी तक अपने मन के गम्भीर भाव को किसी पर प्रकाशित नहीं किया था, परन्तु आज बात ही बात में हठात् बहुत सी बातें प्रकट होगईं। वह दानिशमन्द के उदार चरित्र को जानता था इसी लिए उसने उससे दो-एक बातें बता देने में कोई हानि नहीं समझी।

थोड़ी देर के बाद औरंगज़ेब ने ज़ोर से हँसकर कहा—ऐ सादालौह भाई! आज आपने हमारे मक़सद और ख़यालात को कुछ कुछ समझ लिया है।

इसी प्रकार कथनोपकथन हो रहा था कि एक सैनिक ने आकर संवाद दिया—रामसिंह जहाँपनाह से मुलाक़ात किया चाहते हैं। दरवाज़े पर खड़े हैं।

बादशाह ने कहा—आने दो।

थोड़ी देर के पश्चात् राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह औरंगज़ेब के सामने आकर खड़े होगये।

रामसिंह—यद्यपि इस समय आपसे साक्षात् करना उचित नहीं था, परन्तु पिताजी के निकट से बहुत बड़ी ख़बर आई है। उसी को सुनाने आया हूँ।

औरंगज़ेब—आपके पिता के पास से आज ही हमको भी एक ख़त मिला है, जिससे सब बातें मालूम हुई हैं।

रामसिंह—फिर आप जानते ही हैं कि पिताजी ने समस्त शत्रुओं को पराजित करके उनकी राजधानी विजयपुर पर आक्रमण किया है, परन्तु अपने पास सेना के कम होने से नगर तक प्रवेश करना असम्भव है, क्योंकि गोलकुण्डे के सुलतान ने विजयपुर की सहायता की है और उसका नेकनामख़ाँ सेनापति अपनी बहुसंख्यक सेना लेकर पहुँच गया है।

औरंगज़ेब—सब मालूम है।

रामसिंह—चारों ओर शत्रुओं से घिरे रहने पर भी पिताजी ने आपके आदेशानुसार अभी तक लड़ाई बन्द नहीं की है। परन्तु युद्ध में जीत होना असम्भव है इसी लिए आपसे थोड़ी सी सेना की सहायता माँग भेजी है।

औरंगज़ेब—आपके पिता बड़े वीर हैं। क्या वे अपनी फ़ौज से विजयपुर नहीं जीत सकते?

रामसिंह—मनुष्य के लिए जो कुछ साध्य है, पिताजी ने भी वही किया। शिवाजी अभी तक किसी से परास्त नहीं हुए थे। विजयपुर पर अभी तक किसी ने आक्रमण नहीं किया था। यह सब पिताजी के बाहुबल का फल है। वे आपसे सैन्य की थोड़ी सी सहायता चाहते हैं। सारे दक्षिण में मुग़लों का साम्राज्य स्थापित करने की उनकी प्रबल इच्छा है। वह पूर्ण करनी चाहिए।

ऐसी अवस्था में यदि कोई दूसरा बादशाह होता तो अवश्य सहायता पहुँचाकर दाक्षिणात्य के विजय-कार्य्य को सिद्ध करता। परन्तु औरंगज़ेब अपने को बड़ा दूरदर्शी और तीक्ष्णबुद्धि समझता था इसी लिए उसने सहायता नहीं पहुँचाई। वह

कहने लगा—रामसिंह! आपके पिता हमारे दोस्त हैं। उनकी दिक्क़तों का हाल सुनकर हमें बड़ा दुःख हुआ। हम उनको ख़त में लिख रहे हैं कि आप अपने असाधारण बाहुबल से अवश्य जयलाभ करेंगे। शोक है कि दिल्ली में सेना की तादाद इस वक़्त कम है। हम मदद देने से लाचार हैं।

रामसिंह ने कातर स्वर में कहा—जहाँपनाह! हमारे पिता दिल्ली के पुराने सहायक हैं। आपके सामने और आपके पिता की ओर से उन्होंने सैकड़ों लड़ाइयों में जी-जान खपाया है। आज उन पर सङ्कट पड़ा है। आपको अवश्य सहायता देनी चाहिए। यदि आप सहायता न देंगे तो उनके ससैन्य बच कर लौट आने की आशा नहीं।

बालक रामसिंह को इस बात की कहाँ ख़बर थी कि औरंगज़ेब इस कातर स्वर को सुनकर अपने गम्भीर उद्देश्य और गूढ़ मन्त्रणा से विचलित नहीं हो सकता? राजा जयसिंह अत्यन्त क्षमताशाली प्रतापान्वित सेनापति थे। उन्होंने अपनी असंख्य सेना, विस्तीर्ण यश और अनन्त प्रताप द्वारा आजीवन दिल्लीश्वर का कार्य्य किया। परन्तु इतनी क्षमता किसी दूसरे सेनापति को प्राप्त नहीं थी, इसी कारण औरंगज़ेब जयसिंह का विश्वास नहीं करता था। अतः उसने निश्चय कर लिया था कि यदि वह इस युद्ध में यशोलाभ न कर सके तो उनके प्रताप और यश में कुछ बट्टा लग जायगा और यदि ससैन्य विजयपुर की लड़ाई में मारे जायँगे तो मानों एक पाप कटा। जिस प्रकार व्याधों के जाल से पक्षियों का बचना दुस्तर हो जाता है उसी प्रकार आज औरंगज़ेब के कपट और अविश्वास के जाल में महाराजा जयसिंह फँसे हैं। बचना कठिन है।

जयसिंह ने बहुत समय से दिल्लीश्वर का कार्य्य प्राण-पण से किया है इसलिए उनका सूक्ष्ममन्त्रणा-जाल से बचकर निकलना आज व्यर्थ है।

जयसिंह का उदारचित्त पुत्र सम्मुख खड़ा रो रहा है। परन्तु क्या दूरदर्शी औरंगज़ेब अपना उद्देश्य त्याग सकता है? माया, सुकुमारता, और शोलता के लिए औरंगज़ेब के हृदय में स्थान नहीं। आत्मपथ के साफ़ करने के लिए आज एक कंटक को फेंक बहाया है। कल ही अपने एक सहोदर का वध किया है। एक दिन पिता, भ्राता, भतीजे और अन्य आत्मीय उस पथ में पड़ गये थे। धीरे धीरे उन सभों को साफ़ कियो था। पिता को कुछ मोहवश जीवित नहीं रक्खा था और न भाई की क्रोधवश हत्या की थी। यह सब लड़कों का खेल भी नहीं था। पिता के जीवित रहने में भविष्य में विपद् की सम्भावना नहीं थी, क्योंकि अपने उद्देश्य-साधन में कोई बाधा न पड़े तो कोई भी जीवित रहो, हानि ही क्या है? बड़े भाई के जीवित रहने से उद्देश्य-साधन में बाधा पड़ती, इसलिए आलिमों से फ़तवा लेकर उसे जल्लाद के हवाले कर दिया था।

आज मन्त्रणा-साधनार्थ जयसिंह के ससैन्य हत होने की आवश्यकता है। इसलिए चाहे वे बुरे हों या भले, विश्वस्त हों अथवा अविश्वासी, इसके अनुसन्धान की आवश्यकता नहीं। उन्हें ससैन्य मरना ही चाहिए। इस परिच्छेद की घटना के केवल दो ही तीन मास व्यतीत होने पर यह संवाद मिला कि जयसिंह ने प्राण त्याग दिये। इसलिए किसी किसी इतिहास-लेखक को इस विषय पर सन्देह होता है कि हो न हो औरंगज़ेब ही के आदेश से कहीं जयसिंह को विष न दे दिया गया हो।

अनेक क्षण पश्चात् रामसिंह ने दीर्घ निःश्वास त्याग करके कहा —प्रभु ! हमारी एक प्रार्थना है।

औरंगज़ेब —बयान करो।

रामसिंह—शिवाजी जब दिल्ली आये थे तब पिताजी ने उन्हें वचन दिया था कि दिल्ली में उन्हें किसी प्रकार की आपदा न भुगतनी पड़ेगी।

औरंगज़ेब—आपके पिता ने हमको इत्तिला दे दी है।

रामसिंह—राजपूतों के लिए अपने वचन से फिर जाना बड़ा निन्दनीय विषय है। पिताजी की और हमारी भी यही प्रार्थना है कि यदि शिवाजी ने कोई दोष भी किया हो तो प्रभु उसे क्षमा करके लौटा दीजिए।

औरंगज़ेब ने क्रोध को सँभाल कर धीरे से कहा—बादशाह वही काम करेगा जो उसे ठीक जँचेगा। आप इसकी फ़िक्र न करें।

आज शिवाजी रूपी एक दूसरा पक्षी बादशाह के उस मन्त्रणा-जाल में फँसा है। दानिशमन्द और रामसिंह उस जाल से शिवाजी का उद्धार नहीं कर सकते।

जयसिंह और शिवाजी दोनों का एक ही प्रकार का दोष था। शिवाजी ने सन्धिस्थापनकाल से प्राण-पण से सम्राट् का कार्य्य किया था और उनके पास असीम साहसी सेना थी इसी लिए शिवाजी की क्षमता औरंगज़ेब को खटकती थी।

जिस पर बराबर अविश्वास किया जाता है वह धीरे धीरे अविश्वास का पात्र हो हो जाता है। औरंगज़ेब के जीवित-काल ही में महाराष्ट्रवीरों और दिल्ली के चिरविश्वासी राजपूतों ने जो भयङ्कर समरानल जलाया था उसमें मुग़ल-साम्राज्य जलकर भस्म होगया।

सँभाल कर क्षीण स्वर में कहा—"आइए हकीमजी! विराजिए। आपको बड़ा कष्ट हुआ।" हकीमजी शय्या के पास बैठ गये।

आकृति देखने से हकीमजी पर किसी प्रकार का सन्देह नहीं होता था। आयु अधिक होने के कारण बाल सब सुफ़ेद हो गये थे, दाढ़ी बढ़ कर घुटने तक पहुँच गई थी, सिर पर लम्बी पगड़ी थी। हकीमजी का स्वर गम्भीर और धीर था।

हकीमजी ने कहा—महाशय! भृत्य को आपने जो आदेश दिया था उसे हमने सुना है। आप हमारी दवा नहीं किया चाहते, तथापि मानव-जीवन की रक्षा करना हमारा कर्तव्य है,—मैं इसे अवश्यमेव सिद्ध करूँगा।

शिवाजी मन ही मन और भी क्रोधित हो गये और विचारने लगे कि यह विपत्ति कहाँ से फट पड़ी। परन्तु प्रकट में उन्होंने कुछ कहा नहीं।

हकीमजी—आपको कैसी पीड़ा है?

कातर स्वर में शिवाजी ने कहा—जानता नहीं कि यह किस प्रकार की भीषण पीड़ा है! सारा शरीर जल रहा है, हृदय में बड़ी पीड़ा है और सारे शरीर में दर्द है।

हकीमजी ने गम्भीर स्वर में कहा—"पीड़ा की अपेक्षा चिन्ता से शरीर अधिक जलता है और मानसिक क्लेश से हृदय में पीड़ा भी उत्पन्न होती है। आपको यही पीड़ा तो नहीं है?" विस्मित और भीतावस्था में शिवाजी ने हकीमजी की ओर देखा, मुख उसी प्रकार गम्भीर है, और किसी प्रकार के विलक्षण भाव लक्षित नहीं होते। शिवाजी निरुत्तर हो चुप रहे। अब हकीमजी ने उनका शरीर और उनकी नाड़ी देखनी चाही। इससे शिवाजी और भी डर गये, परन्तु शरीर और हाथ दिखा दिया।

बहुत देर तक सोच विचार कर हकीमजी ने कहा—आपकी बोली जिस प्रकार क्षीण है, नाड़ी वैसी दुर्बल नहीं। धमनी में रक्त का संचार हो रहा है, पेशियाँ पूर्ववत् सुदृढ़ हैं। यह सब आपका बहाना तो नहीं है?

फिर शिवाजी विस्मित होकर इस विलक्षण हकीम को देखने लगे। चिकित्सक का मुखमण्डल उसी प्रकार गम्भीर और अकम्पित है। किसी प्रकार का कपट-भाव प्रकाशित नहीं होता। शिवाजी का शरीर अब गरम होने लगा, किन्तु क्रोध को रोक कर उन्होंने फिर क्षीण स्वर में कहा--आपने जो कहा है यही और भी कई चिकित्सकों ने बताया था। इस कठिन पीड़ा के बाह्य लक्षण तो कोई हैं नहीं, किन्तु शरीर दिन प्रति दिन क्षीण होता जाता है और मृत्यु समीप आई हुई प्रतीत होती है।

हकीमज ने फिर सोच विचार कर कहा—अल्फलैला बला-ऊन नामक हमारे यहाँ चिकित्सा के दो शास्त्र हैं। उनमें १००१ पीड़ाओं की दशा लिखी हुई है जिसमें कि "असीर इशारतकर्द" भी एक पीड़ा है। क़ैदी लोग काम से जी चुराकर इसी पीड़ा का बहाना किया करते हैं। इसकी सज़ा क़तल है। एक और दर्द का नाम "दीगराँदोज़ख़ अख़्तियार कुनंद" है। इस पीड़ा के बहाने युवक नरकगामी होते हैं। इसकी दवा जूते से मारना है। तीसरी एक बाह्य लक्षण-शून्य पीड़ा है। उसका नाम "ऐबहा·बरगिरफ़्ज़ेर बग़ल" है। दोषी लोग अपना दोष छिपाने के लिए इसी पीड़ा का सहारा लेते हैं। उसकी भी दवा है। वही दव आज हम आपको देंगे।

शिवाजी ने इन बातों को अच्छी तरह समझा नहीं, परन्तु तीक्ष्ण-बुद्धि हकीम ने उनके दिल की बातें समझ लीं। प

शिवाजी यह भी नहीं समझ पाये। चुपचाप इति-कर्तव्य-विमूढ़ हो कहने लगे—वह कौन सी दवा है ?

हकीम ने कहा – वह उत्कृष्ट औषधि है और उसका परिणाम भी उत्कृष्ट ही है। 'रब्बुलआलमीन' का नाम लेकर यह दवा आपको दी जायगी। यदि यथार्थ में रोग होगा तो वह जाता रहेगा, परन्तु यदि बहाना होगा तो प्राणनाश होगा।

शिवाजी का हृदय कम्पायमान हो गया। मस्तक से दो एक बूँद पसीना गिरने लगा। यदि औषध खाने से इनकार किया जाता है तो भेद खुल जायगा और उसे खा लेने पर तो मृत्यु निश्चय ही है।

हकीम ने दवा तैयार की। शिवाजी ने कहा –"मुसलमान का छुआ हुआ पानी हम नहीं पीते।" शिवाजी ने इतना कहकर ज़ोर से दवा का बर्त्तन फेंक दिया—परन्तु हकीमजी इससे नाराज़ नहीं हुए, बल्कि धीरे धीरे कहने लगे—इस प्रकार ज़ोर से हाथ चलाना क्षीणता का लक्षण नहीं कहा जाता।

शिवाजी ने बहुत देर से क्रोध को सँभाल रक्खा था परन्तु अब और न सँभाल सके, ज़ोर में आकर उठ खड़े हुए और यह कहते हुए कि "रोगी को चिढ़ाने का यह मज़ा है" धड़ाम से एक चपत हकीमजी की रसीद की और सुफ़ेद दाढ़ी पकड़ कर ज़ोर से अपनी ओर खींच ली। अब देखते क्या हैं कि नक़ली दाढ़ी हकीमजी के मुँह से गिर पड़ी और साफ़ चिकना सिर निकल आया। ओहो! यह तो बाल्य-सुहृद् तानाजी मालश्री खिल-खिला कर हँस रहे हैं।

थोड़ी देर बाद तानाजी ने हँसी को रोक कर घर का दरवाज़ा बन्द कर लिया और शिवाजी के पास आकर कहने लगे—प्रभो! क्या सर्वदा चिकित्सकों को आप इसी प्रकार का

पारितोषिक दिया करते हैं ? इससे तो रोगी के पहले चिकित्सक ही मर जायगा ! वज्र के समान आपकी चपत से मेरा सिर घूम रहा है ।

शिवाजी ने हँसकर कहा—भाई ! व्याघ्र के साथ खिलवाड़ करने से कभी कभी घायल भी होना पड़ता है । यहीं हुआ भी । परन्तु आपको देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ । कई दिन से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था । कहिए, क्या समाचार हैं ?

तानाजी—प्रभु के समस्त आदेशों का पालन कर लिया । सभों की यही इच्छा है कि स्वामी अब निरापद दिल्ली से स्वदेश को लौट आवें ।

शिवाजी—ईश्वर को धन्यवाद है । आज आपने मुझे शान्ति-प्रदान की । मैं आपके कथनानुसार भागना तो नहीं चाहता परन्तु गगनविहारी पक्षी को कौन रोक सकता है ?

तानाजी—आपके समस्त अनुचर दिल्ली से निकल कर मथुरावृन्दावन में गोस्वामियों के वेष में स्थित हैं । मथुरा के बहुत से चौबे आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं । हमने दिल्ली से मथुरा तक के मार्ग की अच्छी तरह जाँच कर ली है । जहाँ जहाँ जिनके रहने की आवश्यकता थी वहाँ वहाँ वे आगये हैं ।

शिवाजी—चिरबन्धु ! जैसे आप कार्य्यदक्ष हैं उससे हमें आशा है कि अवश्य ही हम यहाँ से स्वदेश लौट जायँगे ।

तानाजी—आपने दिल्ली के फ़सील के बाहर एक शीघ्रगामी घोड़ा रखने को कहा था, उसका हमने प्रबन्ध कर दिया है और जिस दिन के लिए आप स्थिर करें उस दिन सब ठीक कर दिया जायगा ।

शिवाजी—बहुत अच्छा ।

तानाजी—राजा जयसिंह के पुत्र राजा रामसिंह के पास मैं गया था। उनको उनके पिता के वाक्य-दान का स्मरण करा दिया है। रामसिंह अपने पिता के तुल्य सत्यप्रिय और उदार-चेता हैं। मैंने सुना है कि उन्होंने स्वयम् बादशाह के पास जाकर आपके स्वदेश लौट जाने के लिए निवेदन किया था।

शिवाजी—बादशाह ने क्या कहा?

तानाजी—उन्होंने कहा था कि बादशाह को जो उचित प्रतीत होगा वही करेगा।

शिवाजी—विश्वासघातक, कपटाचारी! अब तुम्हें इसका बदला दिया जायगा।

तानाजी—रामसिंह का वह उद्योग यद्यपि निष्फल हुआ है तथापि रोष के साथ उन्होंने कहा है कि राजपूतों के वाक्य झूठे नहीं होते। अर्थद्वारा, सैन्यद्वारा, चाहे जिस प्रकार से हो, आपकी सहायता करूँगा। इसमें प्राण तक देने को उपस्थित हूँ।

शिवाजी—वे योग्य पिता के उपयुक्त पुत्र हैं। परन्तु उन्हें हम विपद्-ग्रस्त नहीं करना चाहते। हमने जिस प्रकार निकलने का विचार किया है वह विषय उन्हें आपने समझा नहीं दिया?

तानाजी—जी हाँ, बता दिया है। उसे जान कर वे बड़े सन्तुष्ट हुए हैं और कहा है कि हम आपके सब कार्य्यों में सहायक रहेंगे।

शिवाजी—बहुत अच्छा।

तानाजी—उन्होंने दानिशमन्द प्रभृति औरंगज़ेब के ख़ास ख़ास सभासदों को भी अर्थद्वारा अपने पक्ष में कर लिया है। दिल्ली का क्या हिन्दू क्या मुसलमान, ऐसा कोई भी बड़ा आदमी नहीं जो आपके पक्ष का समर्थन न करता हो, परन्तु औरंगज़ेब किसी के परामर्श को नहीं मानता।

शिवाजी—तो सब ठीक है न? हम आरोग्य लाभ कर सकते हैं न?

तानाजी ने सहास्य कहा—जब हमारे जैसे चतुर हकीम ने आपकी पीड़ा की चिकित्सा करना प्रारम्भ किया है तब आरोग्यलाभ करने में क्या सन्देह? परन्तु आपके पीने के लिए जो सुन्दर मिष्ट शरबत बनाया गया था उसे तो आपने नष्ट कर डाला।

शिवाजी—"भाई फिर उसी पात्र में बना लो।" तानाजी ने उसी बर्तन को उठाकर फिर शरबत तैयार किया। शिवाजी ने उसे पी कर कहा—"चिकित्सक! आपकी औषधि जिस प्रकार मीठी है उसी प्रकार गुणकारी भी है। हमारी पीड़ा तो एक बार ही जाती रही!

शिवाजी को सस्नेह आलिङ्गन करके फिर उसी नक़ली पगड़ी और दाढ़ी को लगा तानाजी वहाँ से बाहर निकल आये।

द्वार पर खड़े हुए प्रहरी ने पूछा—तबीअत का क्या हाल है?

हकीमजी ने उत्तर दिया—पीड़ा बड़ी कष्टकारक थी, परन्तु हमारी अव्यर्थ औषध ने बहुत कुछ लाभ पहुँचाया है। ऐसा मालूम होता है कि शिवाजी इस क्लेश से शीघ्र ही आरोग्य लाभ करेंगे।

हकीमजी शिविका में बैठ कर चलते बने। एक प्रहरी ने दूसरे प्रहरी से कहा—हकीम बड़ा बुद्धिमान् प्रतीत होता है। आज तक जिस पीड़ा को किसी दूसरे ने समझा भी नहीं, हकीमजी ने उसे एक ही दिन में किस प्रकार ठीक कर लिया!

दूसरे प्रहरी ने कहा—भला क्यों न हो, ये तो बादशाही महलों के हकीमजी हैं न!

अट्ठाईसवाँ परिच्छेद

आरोग्य-लाभ

नहीं भविष्यत् पर पतियाओ, मृतक भूत को जानो भूत।
काम करो सब वर्तमान में सिर प्रभु, मन दृढ़ यह करतूत ॥
चरण-चिह्न वे देख कदाचित् उत्साहित होवें भाई—
कर्मक्षेत्र की चट्टानों पर गाड़ी जिनकी टकराई ॥
—पुरोहित लक्ष्मीनारायण।

ऊपर की घटना के कई दिन बाद दिल्ली शहर में यह संवाद फैल गया कि शिवाजी की पीड़ा कुछ कम हो गई है। शहर में फिर धूम-धाम मच गई और सब के मुँह से यही बात सुनी जाने लगी। हिन्दू-मात्र को इस बात के सुनने से आनन्द प्राप्त होता और सज्जन मुसलमानों को भी सुख प्राप्त हुआ। लोग चलते, फिरते, दूकान, हाट, बाट अर्थात् सभी स्थानों पर इसी की बातचीत करते। औरंगज़ेब ने भी इस समाचार को सुनकर प्रकाश रूप में सन्तोष प्रकट किया।

शिवाजी ने आराम होते ही ब्राह्मणों को दान देना प्रारम्भ कर दिया और देवालय में पूजा-पत्र भेजना आरम्भ कर दिया। चिकित्सकों को अर्थदान से प्रसन्न कर लिया। शिवाजी ने इतनी अधिकता से मिठाइयाँ बँटवाई कि सारे दिल्ली शहर में मिष्टान्न का अभाव सा हो गया। जितने जान-पहचान के भद्र लोग थे सभी का मिठाइयों से सत्कार किया गया। मसजिद में और

फ़क़ीरों के घरों में भी मिठाइयाँ बँटवाई गईं। बादशाह के दिल में चाहे जो बात रही हो, परन्तु दिल्ली के समस्त सज्जन शिवाजी के इस आचरण की प्रशंसा किये बिना न रह सके। सारांश यह कि दिल्ली में लड्डुओं की वर्षा हो गई। हम नहीं कह सकते कि इस वर्षा से किसी की कुछ हानि भी हुई या नहीं; परन्तु औरंगज़ेब के मनोगत भवन की नींव हिल गई और उसे पछताना पड़ा।

शिवाजी केवल मिठाइयाँ बँटवा कर ही सन्तुष्ट न हुए, किन्तु मिठाइयाँ ख़रीद ख़रीद कर वे बड़े बड़े झाबों में ख़ुद ही सजाते और उसे बँटवाते थे। कभी कभी इन झाबों की ऊँचाई ३ या ४ हाथ की हुआ करती और ८ या १० कहार उसे उठा कर बाहर ले जाते। कई दिनों तक इसी प्रकार मिठाइयाँ बँटती रहीं।

सन्ध्या हो गई है। आज भी मिठाइयों के दो झाबे—जिनको दस दस कहार उठाये हुए हैं—शिवाजी के प्रासाद से बाहर निकाले गये हैं। पहरेदारों ने इतने बड़े झाबों को देखकर पूछा—"ये किसके घर जायँगे?" लेजानेवालों ने उत्तर दिया—राजा जयसिंह के महल में।

पहरेदार—तुम्हारे प्रभु और कब तक इस प्रकार मिष्टान्न बाँटते रहेंगे?

वाहकगण—बस, आज ही भर।

झाबों को उठाये हुए कहार चले गये।

बहुत दूर चलने के पश्चात् एक गुप्त स्थान में कहारों ने दोनों झाबों को उतारा। सन्ध्या की अँधियारी अच्छी तरह छा गई है। कहार चारों ओर देखने लगे। कहीं कोई चिड़िया का पूत भी दीख नहीं पड़ता। हाँ, रह रह कर वायु अलबत्ता चल रहा है। कहारों ने झाबों को खोल डाला। एक में से

शिवाजी और दूसरे में से शम्भुजी बाहर निकल आये। दोनों ने जगदीश्वर की वन्दना की।

बहुत ही शीघ्र दोनों छद्मवेश धारण कर दिल्ली की प्राचीर की ओर बढ़ने लगे। सन्ध्या हो जाने के कारण राजपथ पर भीड़ नहीं है, फिर भी एक दो मनुष्यों का आना-जाना लगा हुआ है। शम्भुजी जब किसी पथिक को अपने पास से निकलते हुए देखते हैं, उनका हृदय धक् धक् करने लगता है। शिवाजी तो ऐसी आपदाओं को कई बार भुगत चुके हैं। अतः उनके लिए यह विपत्ति कुछ चीज़ नहीं है; परन्तु उनका हृदय भी उद्वेग-शून्य न था।

दोनों ने कम्पित हृदयावस्था में प्राचीर को पार किया। हाँ, एक पहरेदार ने पूछा भी—कौन जाता है?

शिवाजी ने उत्तर दिया—गोस्वामी। हरेर्नाम हरेर्नाम हरे-र्नामैव केवलम्।

पहरेदार—कहाँ जाओगे?

शिवाजी—तीर्थस्थान श्रीमथुरा-वृन्दावन। कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।

दोनों प्राचीर से पार हो गये।

प्राचीर के बाहर भी अनेक धनाढ्य और उच्च पदाधिका-रियों की कोठियाँ बनी हुई थीं और वे लोग उनमें रहते थे। इसलिए शिवाजी और शम्भुजी दोनों ने किनारे से होकर आगे बढ़ना आरम्भ किया।

दूर ही से एक पेड़ के नीचे घोड़े को बँधा हुआ देख कर शिवाजी बड़ी सतर्कता के साथ उसी ओर बढ़ने लगे। वहाँ पर पहुँच कर देखते क्या हैं कि तानाजी ने जैसा बताया था वही

घोड़ा बँधा हुआ है। पास पहुँचकर शिवाजी ने पूछा—भाई अश्वरक्षक! तुम्हारा नाम क्या है?

रक्षक—जानकीनाथ।

शिवाजी—जाओगे कहाँ?

रक्षक—मथुरा जी।

शिवाजी ने कहा—हाँ, यही अश्व है।

शिवाजी घोड़े पर चढ़ गये और पीछे से शम्भुजी को बैठा लिया, फिर मथुरा की ओर चल खड़े हुए। पीछे पीछे अश्व-रक्षक भी भागता हुआ चलने लगा।

अँधेरी रात में शिवाजी गाँवों को छोड़ते चुपचाप चले जाते हैं। आकाश में तारे डबडबा रहे हैं। मेघ कभी कभी गगन को एक बार ही छा लेते हैं। भादों की रात है। यमुनाजी उमड़ी हुई बह रही हैं। मार्ग, घाट, कीचड़ और जल से भर रहे हैं। शिवाजी उद्वेगपूर्ण अवस्था में चले जा रहे हैं।

दूर से कुछ घोड़ों की टाप सुन पड़ी। शिवाजी छिपने की चेष्टा करने लगे, परन्तु वहाँ वृक्ष अथवा कुटी नहीं है। अतः पूर्ववत् आगे बढ़ना ही ठीक किया।

तीन सवार दिल्ली की ओर घोड़ा बढ़ाये चले आ रहे हैं। उनके पास लड़ाई के सब सामान ठीक हैं। जब उन्होंने दूर ही से शिवाजी के घोड़े को देखा तब उसी ओर आप भी बढ़ने लगे। अब शिवाजी के हृदय पर कुछ उद्वेग का प्रकाश होने लगा। परन्तु सवार अब निकट ही पहुँच गये और एक ने पूछा भी—कौन जाता है?

शिवाजी—गोस्वामी।

अश्वारोही—कहाँ से आते हो?

शिवाजी—दिल्ली नगरी से।

अश्वारोही—हम भी दिल्ली जायँगे, परन्तु मार्ग भूल गये हैं। अतः हमारे साथ चलकर रास्ता दिखा आओ, फिर तुम मथुरा चले जाना।

शिवाजी के मस्तक पर मानों वज्र टूट पड़ा। दिल्ली जाने से अस्वीकार करने में अश्वारोही ज़बर्दस्ती करेंगे, और विवाद करने से पहचाने जाने का भय है, क्योंकि दिल्ली का कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जो शिवाजी को पहचानता न हो। दिल्ली लौटने में तो हज़ार बखेड़े हैं। शिवाजी इसी विषय में इतिकर्त्तव्य-विमूढ़ हो चिन्ता करने लगे।

केवल एक ही अश्वारोही ने सामने आकर वार्त्तालाप किया था। शेष दो स्पष्ट स्वर में परामर्श करते थे। वह परामर्श क्या था?

एक ने कहा—इस सवार को मैं जानता हूँ। एक दिन मैं जब शाइस्ताखाँ की मातहती में लड़ाई कर रहा था, इसे देखा था। मैं ठीक ठीक कहता हूँ। यह गोस्वामी नहीं है।

दूसरे ने कहा—फिर कौन है?

पहला—मेरा ऐसा विश्वास है कि यह स्वयम् शिवाजी है। क्योंकि दो मनुष्यों का कंठ-स्वर ठीक एक सा नहीं होता।

दूसरा—धत् मूर्ख! शिवाजी तो दिल्ली में क़ैद है।

पहला—यही मैंने भी विचार किया था कि शिवाजी सिंहगढ़ दुर्ग में छिपा है, परन्तु सहसा उसने एक ही रात में पूना को ध्वंस कर डाला।

दूसरा—अच्छा, इसके सिर के कपड़े को हटाकर देखने ही से पता चल जायगा।

सहसा एक अश्वारोही ने पास पहुँच कर शिवाजी की पगड़ी अलग फेंक दी। शिवाजी ने उसे पहचान लिया कि यह तो शाइस्ताखाँ का एक प्रधान सैनिक है।

यदि हाथ में कोई अस्त्र होता तो शिवाजी अकेले तीनों को मारने की चेष्टा करते परन्तु शस्त्रहीन होते हुए भी शिवाजी ने एक सवार को मुक्के से अचेत कर डाला। अब दोनों अश्वारोहियों ने तलवार निकालकर शिवाजी को भूमि पर पटक दिया।

शिवाजी इष्टदेव का स्मरण करने लगे। वे मन में सोचने लगे कि अब फिर बन्दी होकर विदेश में औरंगज़ेब के हाथों मारा जाऊँगा। वे यही विचार कर रहे थे कि शम्भुजी की ओर देख कर आँखों में जल भर आया।

सहसा एक शब्द हुआ। शिवाजी ने देखा कि एक अश्वारोही तीर से बिँधकर भूतलशायी हो गया है। फिर एक तीर, और एक दूसरा तीर, क्रमशः तीनों अश्वारोही-शत्रु भूतलशायी होकर मर गये।

शिवाजी परमेश्वर को धन्यवाद देकर उठ खड़े हुए। देखते क्या हैं कि पीछे से उसी अश्वरक्षक जानकीनाथ ने तीर चलाये थे। विस्मित होकर शिवाजी जीवन-रक्षार्थ उसको सैकड़ों धन्यवाद देने लगे। जब अश्वरक्षक पास पहुँच गया, तब शिवाजी को और भी विस्मय हुआ कि यह तो सीतापति गोस्वामी हैं।

अब सहस्र बार क्षमा की प्रार्थना करके शिवाजी ने कहा---सीतापति! आपके अतिरिक्त असली बन्धु शिवाजी का और कोई नहीं है। आपको अश्वरक्षक समझ कर मैंने आपका विशेष आदर नहीं किया था। क्षमा कीजिए। क्या मैं आपके इस उपयुक्त कार्य्य का पुरस्कार दे सकता हूँ?

सीतापति ने शिवाजी के सम्मुख घुटने टेक हाथ जोड़कर कहा—राजन्! इस छद्मवेश धारण करने के लिए मुझे आप क्षमा करें। मैं न तो अश्वरक्षक हूँ और न गोस्वामी; मैं तो आपका पुराना भृत्य रघुनाथ हवलदार हूँ। आप जानते हैं कि मैंने आपकी

सेवा की है और आजन्म आपकी सेवा में तत्पर रहूँगा। इसके सिवा मेरी और कोई कामना नहीं है और न इसके अतिरिक्त कोई पुरस्कार ही चाहता हूँ। यदि भूल-चूक में कोई दोष हो गया हो तो इस निराश्रय को आश्रय दीजिए और क्षमा कीजिए।

शिवाजी चकित होकर बालक रघुनाथ को देखने लगे। वे अपने हृदय के उद्वेग को रोक न सके। उन्होंने सजल नयन होकर रघुनाथ को हृदय से लगा लिया। गद्‌गद स्वर में शिवाजी कहने लगे—रघुनाथ! रघुनाथ! शिवाजी तुम्हारे निकट सैकड़ों दोषों का अपराधी है, परन्तु तुम्हारे महत् आचरण ने ही मुझे दण्ड दिया है। तुम्हारे ऊपर जो मैंने सन्देह किया था उसे स्मरण करके मेरा हृदय विदीर्ण हो जाता है। शिवाजी जब तक जीवित रहेगा, तुम्हारे गुण कभी न भूलेगा।

शान्त निस्तब्ध रजनी में दोनों परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर आनन्दमग्न हो गये। रघुनाथ का व्रत आज समाप्त हुआ। शिवाजी की हृदय-वेदना आज दूर हुई। बालकों की भाँति दोनों मिलकर आज रो रहे हैं।

उन्तीसवाँ परिच्छेद

प्रासाद में

अलि ! तज करके तू गँजना धैर्य्य द्वारा ।
कुछ समय सुनेगा बात मेरी व्यथा की ॥
तब अवगत होगा बालिका एक भू में ।
विचलित कितनी है प्रेम से वंचिता हो ॥

—अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

रात में सीतापति गोस्वामी से बिदा होकर राजपूत-बाला अपने घर लौट आई । परन्तु घर लौटकर उसने देखा कि हृदय शून्य है । जिस स्वदेशी योद्धा के प्रथम दर्शन मात्र ही से सरयू चकित और आनन्दित हो गई थी, उसके कई महीने बाद जिसे उसने हृदयेश्वर समझा था, जिससे वृद्ध जनार्दन ने विवाह करने का वाक्यदान दे दिया था, उसी रघुनाथ के अदर्शन से आज सरयू का हृदय शून्य हो रहा है ।

वह दिन गया । सप्ताह गया । महीना भी बीत चला । परन्तु सरयू के प्राणाधार अभी तक लौटे नहीं । कभी कभी अँधेरी रात में बालिका अपनी खिड़की में बैठकर सन्ध्या से आधी रात बिता देती, कभी आधी रात से बैठकर दिन निकाल देती,—उसी रघुनाथ की चिन्ता में निमग्न रहती । उसे यह आशा लगी रहती कि इसी मार्ग से होकर वे आते होंगे ।

कभी वह अकेली दोपहर के समय आमों के बाग़ में निकल जाती। वहाँ टहलती और उसी दशा में उसे, तोरण-दुर्ग की कथा, कण्ठमाला का प्रेम, रायगढ़-आगमन और वहाँ से बिदा होने की बातें याद पड़ जातीं। तब बेचारी कुहनियों पर गाल रख धीरे धीरे सिसका करती। कभी सोती सोती चौंक पड़ती और भादों में बढ़ी हुई नदी के बन्द टूट जाने की भाँति प्रेमनद में निमग्न हो जाती। अहो! कोई देखता तो उसे पता चलता कि सरयू के नयनों से श्रावण मास की वारि-वर्षा होती है। रात व्यतीत हो जाती, प्रातःकालीन रक्तिमच्छटा पूर्व दिशा में शोभायमान हो जाती तब भी बालिका की शोक-निशा दूर नहीं होती।

प्रातःकाल फूल तोड़ने जाती। उद्यान फूलों से चैन करता हुआ मिलता, प्रफुल्ल पुष्पलता एक एक शोभायमान दीख पड़ती। उन्हें अब क्या चिन्ता है—यह कौन जान सकता है? सरयू फिर शोकाकुल हो जाती। फिर फूलों की ओर देखती और प्रातःकालीन पुष्पदलस्थ शिशिरबिन्दु की भाँति अपने कमल-दल-नयनों में नीर भर लाती। सायंकाल होते ही हाथों में वीणा ले लेती और कभी कभी कुछ गाने भी लगती। अहा! इस शोक-रससिञ्चित स्वर को सुनकर सुनने वालों के नयनों में प्रेम का सागर उमड़ आता।

इस प्रकार चिन्ता-क्रम से सरयू का शरीर शुष्क होने लगा। मुखमण्डल ने पाण्डुवर्ण धारण कर लिया और आँखें कालिमा-वेष्टित हो गईं। परन्तु सरल-स्वभाव जनार्दन ने अभी तक सरयू के हृदय की बात नहीं समझी। हाँ, उसकी शारीरिक अवस्था देखकर उन्हें बड़ी चिंता हुई और कारण का अनुसन्धान करने लगे।

स्त्रियों के निकट स्त्रियों की बात छिपी नहीं रहती। यद्यपि सरयू अनेक यत्नों द्वारा अपने शोक को छिपाये हुए थी, तथापि उसकी सखियों और दासियों को कुछ कुछ मालूम हो गया था। अतः उन्होंने बात बनाकर वृद्ध जनार्दन से कहा—"सरयू सयानी होगई। अब उसका विवाह स्थिर करना चाहिए।" सरयू ने भी इस बात को सुन लिया। इसलिए उसने कहला भेजा—पिताजी से कहना कि मुझे विवाह करने की इच्छा नहीं है। मैं तो चिरकाल तक अविवाहित रह कर उनके चरणों की सेवा करूँगी।

जनार्दन ने इस बात को नहीं माना। वे विवाह के लिए पात्र ढूँढ़ने लगे। राजपुरोहित द्वारा पालित भद्र क्षत्रिय-कन्या के लिए पात्र का अभाव नहीं था। अन्त में राजा जयसिंह के एक सेना-पति से विवाह होना स्थिर हो गया। सरयू को जब यह बात मालूम हुई तब उसका सारा शरीर काँपने लगा। लज्जा को हटा कर उसने पिता से कहला भेजा—पिताजी से कहना, उन्होंने एक सैनिक को वाक्यदान कर दिया है। वही हमारे वाग्दत्त पति हैं। अन्य किसी से विवाह करने में व्यभिचार-दोष होगा।

जनार्दन इस बात को सुनकर रुष्ट हो गये और उन्होंने सरयू का बड़ा तिरस्कार किया। कन्या की अनुमति न होते हुए भी विवाह का दिन स्थिर किया गया। सरयू इस बात को सुनकर अपने बाप के चरणों पर गिर पड़ी और ज़ोर ज़ोर से रो कर कहने लगी—"पिताजी! क्षमा कीजिए, नहीं तो आपको इस चिरपालिता अभागिनी कन्या के मरने का दुःख होगा।" परन्तु जनार्दन कन्या को डाँटने लगे।

कन्या की बात कौन सुनता है। पाँच भलेमानुष जो कुछ कह दें वही समाज का परामर्श है। उसी के अनुसार कार्य्य

होगा। विवाह का दिन निकट आने लगा। जनार्दन ने बहुत कुछ समझाया; डाँटा भी और बहुत तिरस्कार भी किया, परन्तु इसका प्रभाव अच्छा न पड़ा।

अन्त में विवाह के दिन उन्होंने कन्या से कहा—अरे पापिनी! क्या तेरे लिए मुझे इस वृद्धावस्था में अपमानित होना पड़ेगा? क्या तू अपने निष्कलङ्क पिता के कुल को कलङ्कित करेगी?

धीरे धीरे भीगी आँखों से सरयू ने उत्तर दिया—पिताजी! मैं अबोध हूँ। यदि आप के निकट मैंने कोई दोष किया हो तो क्षमा कीजिए। जगदीश्वर मेरी सहायता करें। मुझसे आपका अपमान न होगा।

उस समय इस बात का अर्थ जनार्दन ने नहीं समझा, परन्तु दूसरे दिन वे समझ गये, जब विवाह के दिन कन्या दीख न पड़ी।

तीसवाँ परिच्छेद

कुटी

फ़नाये बाग़ आलम में बफ़ा गुल ख़ुशबूर तुम हो ।
तुम्हीं हो हौसला उम्मीद हमारी ज़ीस्त जां तुम हो ॥

शरद् ऋतु के प्रातःकालीन प्रकाश में वेगवती नदी बही चली जा रही है, और सूर्य्य की किरणों की आभा से जल की तरङ्गें, उछलती-कूदती, भाँति भाँति के रङ्गों को धारण कर रही हैं। नदी के दोनों ओर धान के खेत लहलहा रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कृषकों के तप से मेदिनी ने प्रसन्न होकर हरा वस्त्र धारण कर लिया है। उत्तर और पूर्व दिशा में भी उसी प्रकार के खेत दीख पड़ते हैं परन्तु बहुत निगाह जमाने पर कुछ गाँव का भी दृश्य दिखाई पड़ता है। दक्षिण दिशा में पर्वत-शिखर बालसूर्य्य की किरणों से और ही प्रकार की शोभा दिखा रहे हैं।

उसी नदी के तट पर एक स्थान श्यामल क्षेत्रों से घिरा हुआ एक छोटे से गाँव के स्वरूप में शोभायमान था। उसी गाँव में एक किसान की कुटी थी। कुटी के पास ही एक बालिका, नदी के तीर पर, खेल रही थी और पास ही एक दासी खड़ी थी परन्तु किसान की स्त्री अपने काम-धन्धे में लगी हुई थी।

घर के देखने से किसान कुछ धनी मालूम होता है। पास ही दो एक ग्वालों के घर हैं और चार पाँच गायें भी बँधी हैं। घर के भीतर वाले खण्ड में दो-चार कोठरियाँ भी हैं और बाहर

एक वड़ी सी बैठक बनी हुई है। इससे यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि किसान गाँव का प्रधान व्यक्ति है और कुछ लेन-देन का भी कार्य्य करता है।

लड़की की अवस्था अभी सात वर्ष की है परन्तु रङ्ग उसका साँवला है और देखने में चञ्चल और प्रफुल्लचित्ता प्रतीत होती है। बालिका कभी तो दौड़कर नदी के किनारे पहुँच जाती है और कभी वहाँ से सीधी अपनी माँ के पास रसोईघर में जा बैठती है और कभी, मन होता है तो, दासी का हाथ पकड़ कर उससे दो चार बातें कर लेती है।

बालिका बोली—जीजी, चलो न आज भी कल की तरह नदी में स्नान कर आवें?

दासी—नहीं बहिन, अम्मा ने कह दिया है कि अब से घाट पर न जाया करना।

बालिका—चलो, माँ को ख़बर भी न होगी।

दासी—नहीं, जिस बात को माँ ने मना किया है हम उसे क्यों करेंगी?

बालिका—अच्छा दीदी, क्या मेरी माँ तुम्हारी भी अम्मा हैं?

दासी—हाँ।

बालिका—नहीं, दीदी ठीक ठीक कह।

दासी—हाँ, सचमुच माँ है।

बालिका—नहीं दीदी, तुम तो राजपूत-स्त्री हो, मैं तो राजपूतनी नहीं हूँ।

दासी ने बालिका का मुख चूम लिया और कहने लगी—फिर क्यों जानकर पूछती है?

बालिका—पूछने का मतलब यही कि फिर तू मेरी अम्मा को "माँ" कैसे कहती है?

दासी—जिसने हमें खाने-पीने को दिया है, जिसने रहने के लिए हमको घर दिया है, और जो अपनी कन्या के समान हमारा लालन-पालन करती है उसे माँ न कहूँगी तो और किस को कहूँ ? इस संसार में मेरा और कहीं ठिकाना नहीं है। केवल माँ ने ही मुझे स्थान दिया है।

बालिका—दीदी ! तेरी आँखों में आँसू क्यों भर आये ? बातों ही बातों में रोने क्यों लगी ?

दासी—नहीं बहिनी, रोऊँगी क्यों ?

बालिका—तेरी आँखों में जल देखकर मेरी आँखें भी भर आईं।

दासी ने बालिका को फिर चूम कर कहा—तू मुझे बड़ी प्यारी लगती है।

बालिका—और तू भी तो मुझे बड़ी प्यारी मालूम होती है।

दासी—अच्छा है।

बालिका—अच्छा सदा प्यार करोगी ? कभी भूलोगी तो नहीं ?

दासी—हाँ, परन्तु तुम एक दिन मुझे भूल जाओगी।

बालिका—यह भला कब ?

दासी—जब तुम्हारे दुलहा आवेंगे तब।

बालिका—वे कब आवेंगे ?

दासी—बस, दो ही चार वर्ष के बीच में।

बालिका—नहीं दीदी, मैं तुझे कभी नहीं भूलूँगी। दुलहे से भी मैं तुमको अधिक प्रेम करूँगी। परन्तु जब तेरा दुलहा आ जायगा तब तू तो न भूल जायगी ?

दासी की आँखों में फिर आँसू भर आये। उसने कहा—नहीं, कभी नहीं भूलूँगी।

बालिका—अपने दूलह से मुझ पर अधिक प्रेम करोगी न ?

दासी ने हँसकर कहा—ज़रूर, ज़रूर।

बालिका—तुम्हारे दुलहा कब आवेंगे दीदी?

दासी—भगवान् जाने। छोड़, अब रसोई का समय हो गया; मैं जाऊँ।

पाठकगण! आपको यह बताना अनावश्यक है कि सरयू को जब संसार में कोई स्थान निरापद प्रतीत नहीं हुआ तब उसने दासी बनकर एक कृषक के घर दासी-वृत्ति करना अङ्गीकार कर लिया था। किसान का नाम गोकरणनाथ था। वह कुछ सम्पत्ति-शाली था और महाजनी का भी काम करता था। गोकरण का अन्तःकरण सरल और स्नेहपूर्ण था इसीलिए उसने राजपूत-कन्या को अपने घर में आश्रय दे दिया था। गोकरण की स्त्री भी बड़ी भलीमानस थी। उसने राजपूत-बाला को अपनी कन्या के समान समझा। सरयू कृतज्ञ होकर गोकरण और उसकी स्त्री का यथोचित आदर करती और उनकी बालिका की देख-भाल भी रखती। इस प्रकार किसान की स्त्री का कामकाज बहुत कुछ सरयू ने बाँट लिया था। इसलिए वह दिन दिन सरयू के ऊपर अधिक प्रसन्न होती गई।

रघुनाथ के न रहने पर यदि सरयू को कहीं सुख की सम्भावना होती तो वह स्थान उदार-स्वभाव गोकरणनाथ और उनकी सरला सुहृदया गृहिणी के भवन-सदृश होता। गोकरण की अवस्था लगभग ४५ वर्ष की थी परन्तु सदैव नियमित परिश्रम करने से अब भी उसका शरीर सुदृढ़ और बलिष्ठ था। गोकरण का एक लड़का शिवाजी का सिपाही था और बहुत दिनों से घर नहीं आया था। उसके अतिरिक्त यही एक कन्या हुई थी। पिता-माता दोनों उसको अधिक प्यार करते थे। प्रातःकाल उठकर गोकरण अपनी खेती के, अथवा अन्य किसी

काम-धन्धे पर चला जाता और सरयू घर का सब काम सँभाल लेती। गोकरण की स्त्री कभी कभी कहा करती—"अरी सरयू! तू बड़े घर की लड़की है। इस प्रकार काम करने से तेरा शरीर थक नहीं जाता। इतना मत किया कर। मैं कर लिया करूँगी।" सरयू स्नेह के साथ उत्तर देती—माँ, तुम मेरी इतनी ख़ातिर करती हो। तुम्हारा काम करने में मुझे थकावट नहीं मालूम होती। मैं जन्म जन्म तुम्हारी सेवा करूँगी।

इन स्नेहमयी बातों को सुनकर सरलस्वभावा वृद्धा किसानी की आँखों में जल भर आता और वह आँसू पोंछकर कहती—सरयू! मैंने तेरे समान लड़की अब तक नहीं देखी। यदि तेरे समान मेरी जाति में कोई लड़की मिलती तो मैं अपने लड़के का उसके संग विवाह कर लेती। बहुत दिन हुए, मेरे बेटे ने घर छोड़ दिया है।

इसी प्रकार कई महीने व्यतीत होगये। एक दिन सन्ध्या के समय गोकरण अपनी स्त्री के पास बैठा हुआ था और दूसरी ओर सरयू और उसकी लड़की खेल रही थी, कि उसी समय गोकरणनाथ ने कहा—ज़रा चुप हो जाओ, एक और सुसंवाद सुन लो।

गृहिणी—अहा, तुम्हारे मुख में घी बताशे पड़ें। भीमजी का क्या संवाद मिला है?

गोकरण—शीघ्र ही आता है। वह शिवाजी के साथ दिल्ली गया हुआ था। आज मैंने सुना है कि दुष्ट बादशाह के हाथ से निकलकर शिवाजी यहाँ लौट आये हैं। इसलिए हमारा भीमजी अवश्य ही उनके साथ साथ होगा।

गृहिणी—अहा, भगवान् यही करें। कोई एक वर्ष होगया कि बेटे को नहीं देखा। नहीं मालूम वह कैसे है। भगवान् ही जानें।

गोकरण—भीमजी अवश्य ही लौटेगा। वह रघुनाथजी हवलदार के अधीन कार्य्य करता है, क्योंकि रघुनाथजी का भी संवाद मिला है।

सरयू का हृदय खिल गया। उसने उद्वेग की साँस को रोक कर गोकरण की बात सुनने में चित्त लगाया। गोकरण कहने लगा—जिस दिन रघुनाथ विद्रोही प्रसिद्ध होकर शिवाजी से अपमानित हुए थे उसी दिन हमारे पुत्र ने क्या कहा था—तुम्हें याद है?

गृहिणी—नहीं, मैं भूल गई।

गोकरण—उसने कहा था, 'पिताजी! हम हवलदार को पहचानते हैं। उनके समान वीर शिवाजी के सैन्य में दूसरा कोई नहीं है। नहीं मालूम किस भ्रम में पड़कर राजा उन्हें अपमानित कर रहे हैं। पीछे ज्ञात होगा और रघुनाथ के गुण स्मरण होंगे।' इतने दिनों के पश्चात् पुत्र की बात ठीक निकली।

सरयू का हृदय उल्लास और उद्वेग से फड़कने लगा। उसके माथे से पसीना टपकने लगा।

गोकरणनाथ कहने लगा—रघुनाथ छद्मवेश धारण करके शिवाजी के साथ ही साथ दिल्ली गये थे। उन्होंने अपने बुद्धि-कौशल द्वारा राजा को बचा लिया और सम्पूर्ण रूप से अपनी निर्दोषिता सिद्ध कर दी। सुना है कि शिवाजी ने रघुनाथ से क्षमा माँगी है और उनको भाई कहकर आलिङ्गन किया है। रघुनाथ को हवलदार से एकदम पञ्चहज़ारी बना

दिया है। शहर में और कोई चर्चा नहीं है, गाँव में भी कोई दूसरी बात नहीं है। जहाँ देखो, केवल रघुनाथ ही की वीर-कथा का वर्णन हो रहा है और लोग उनका जय-जयकार मना रहे हैं।

आनन्द और उल्लास से सरयू ज़ोर से चिल्ला उठी और मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ी।

इकतीसवाँ परिच्छेद

स्वप्न-दर्शन

किन कर्मों की जीवित छाया उस निद्रित विस्मृत के सङ्ग ।
आंख-मिचौनी खेल रही है, यह किस अभिनय का है ढङ्ग ॥
मुँदे नयन पलकों के भीतर किस रहस्य का सुखमय चित्र ।
गुप्त वञ्चना के मादक को खींच रहे हैं सजनि ! विचित्र ॥

—सुमित्रानन्दन पन्त ।

उसी दिन से सरयू की सूरत बदल गई। बहुत दिनों में आशा, आनन्द और उल्लास का भाव उसके हृदय में प्रविष्ट हुआ। अब उसकी आँखें प्रफुल्लित हुईं, होठों पर मधुरता को स्थान मिला और उसका कमलरूपी हृदय खिल गया। प्रातःकाल जब सुशीतल-सुमन्द-सुगन्धित समीर बहता और कोकिल-रव सरयू के कानों में प्रवेश करता तब उसका चित्त विह्वल हो जाता। दोपहर के समय घर का काम-काज करके वह नदी के तट पर जा बैठती और सूर्य्य की ओर देख कर नहीं मालूम क्या क्या विचारा करती। सन्ध्या के समय जब कभी दूर से वंशी की ध्वनि कानों में पड़ जाती तब मृगी की भाँति वह चौंक पड़ती।

गोकरण की कन्या ने सरयू के भावों में इस परिवर्त्तन को देखा। जब दोनों एक दिन नदी के किनारे बैठी हुई थीं तब कन्या ने पूछा—दीदी ! दिन दिन तुम तो निखरती जाती हो ! इसका क्या कारण है ?

सरयू—क्या कहती हो ?

बालिका—कहूँ क्या, क्या मैं देखती नहीं !

सरयू—नहीं, तुम्हारे देखने में भूल है।

बालिका—.खूब कही ! मैं भूलती हूँ न ? सिर में पहले भी कभी तुमने फूल खोंसा था ?

सरयू—पगली कहीं की।

बालिका—मैं पगली हूँ कि तुम ? कण्ठ में माला, हाथों में मोतियों की लड़ियाँ, क्या मैं नहीं देख रही हूँ ?

सरयू—चल, दूर हट।

बालिका—क्यों ? नदी के तीर पर बैठी हुई बहुत देर तक पानी में कौन मुँह देखा करती है ?

सरयू—बहन ! झूठी बातें मत बना।

बालिका—.खूब ! पेड़ों की आड़ में छिप कर मीठे मीठे स्वर में गाती कौन है ? क्या मैं इसे भी नहीं जानती !

सरयू से रहा न गया। हँसते हुए लपक कर बालिका का मुँह दबा लिया।

बालिका ने हँसते हँसते कहा—ठहरो, मैं यह सब बातें माँ से कहूँगी।

सरयू—नहीं बहन, तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, कहना मत।

बालिका—अच्छा, एक बात पूछती हूँ, बता।

सरयू—पूछो।

बालिका—इसका अर्थ क्या है ? इस पुष्प, इस कण्ठमाला और इस गीत का कारण क्या है ? तुम्हारी आँखें सदा हँसीली क्यों दीख पड़ती हैं और होठों पर ललाई क्यों फूटी पड़ती है ? तुम्हारा सारा शरीर लावण्यमय क्यों होगया ?

सरयू—तुम्हारी माँ जो तुम्हारा सिर गूँधकर तुम्हें गहना-कपड़ा पहनाती हैं, वह क्यों ?

बालिका इस बार कुछ लजा सी गई, परन्तु तुरन्त ही उसने उत्तर दिया—माँ कहती है कि अगले साल तुम्हारा विवाह होगा और तुम्हारा दुलहा आवेगा।

सरयू—हमारा भी दुलहा आनेवाला है।

बालिका—सचमुच ?

सरयू और बालिका में इसी प्रकार बातचीत हो रही थी कि उसी समय एक दीर्घकाय संन्यासी "हर हर महादेव" शब्द उच्चारण करता हुआ नदी के तट पर बैठ गया। सन्ध्या के मध्य-विकाश में संन्यासी का विभूति-भूषित शरीर बड़ा मनोहर प्रतीत हो रहा था। बालिका तो मारे डर के भाग गई, परन्तु सरयू तीक्ष्ण दृष्टि से उसी ओर देखने लगी। ओह! यह तो सीतापति गोस्वामी हैं।

सरयू का हृदय सहसा कम्पायमान होगया और मन के आवेश से सारा शरीर काँपने लगा। परन्तु लज्जा द्वारा कम्पन-वेग को रोक लिया और धीरे धीरे संन्यासी के पास जाकर कहने लगी—प्रभु, आपका दर्शन एक बार इस अभागिनी को जनार्दन के मन्दिर में हुआ था। उसके पश्चात् आज दासीवृत्ति में आपका दर्शन कर रही हूँ। पिता ने कलङ्किनी कह कर मुझे अलग कर दिया है। इसके अतिरिक्त मेरा और कोई दोष नहीं।

संन्यासी के नयन अश्रुपूर्ण होगये। धीरे धीरे उन्होंने कहा—रघुनाथ के लिए तुमने यह कष्ट सहा है।

सरयू—नारी जब तक पति का नाम जप सकती है तब तक इसे कष्ट नहीं कहा जा सकता।

संन्यासी का गला रुक गया और आँखों से जल की वर्षा होने लगी।

सरयू ने कहा—क्या प्रभु से उस देवपुरुष का साक्षात् हुआ था?

गोस्वामी—हाँ, हुआ था।

सरयू—फिर क्या कहा था?

गोस्वामी—आपको वे ज़रा भी नहीं भूले हैं। हमने उनसे कहा था—सरयू राजपूतबाला है। वह जीवन की अपेक्षा यश को अधिक चाहती है। सरयू जब तक जीवित रहेगी, रघुनाथ को कलङ्क-शून्य वीर कह कर उन्हीं का यश गावेगी।

सरयू—अच्छा।

गोस्वामी—हमने और भी उनसे कहा था कि सरयू तुम्हारे उन्नत उद्देश्य की बाधक नहीं है। रघुनाथ हाथ में तलवार लेकर मार्ग को साफ़ करें, ईश्वर उनकी सहायता करेंगे। यदि इस दशा में उनका शरीरान्त हो जायगा तो सरयू भी आनन्द-सहित प्राण त्याग देगी।

सरयू ने गद्गद स्वर में कहा—महाराज, फिर उन्होंने क्या कहा?

गोसाईंजी ने कहा—रघुनाथ ने उत्तर नहीं दिया। वे केवल आपकी बात को सुनकर असाध्य-साधन में तत्पर हो गये। अब तो सुना है कि उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा के मार्ग को स्वच्छ कर लिया है।

उस सन्ध्या के अन्धकार में गोसाईं के नयन धक् धक् जल रहे थे और उनकी ज्वलन्त ध्वनि वृक्षों से प्रतिध्वनित होती रही।

"जिस आदि-पुरुष ने जगत् को बनाया है उन्हें प्रणाम करती हूँ"—यह कहकर सरयूबाला आकाश की ओर देखकर प्रणाम

करने लगीं। गोस्वामी ने भी जगत् के आदिपुरुष को प्रणाम किया।

थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। उस समय सायंकालीन शीतल पवन वह रहा था इसलिए उनके शरीर शीतल होगये और आँखों के आँसू सूख गये।

कुछ देर के बाद गोस्वामी ने कहा—देवता के प्रसाद से जब कार्य्य सिद्ध होगया था तब रघुनाथ ने एक बात कही थी और मुझसे अनुरोध किया था कि इसे सरयू को अवश्य सुना दीजिएगा।

सरयू ने उत्कण्ठित स्वर में कहा—महाराज, वह कौन-सी बात है?

गोस्वामी—उन्होंने कहा था कि इतने दिन तक सरयू जिसे मन में रक्खे है क्या उसके आने पर उसे पहिचान भी सकेगी?

सरयू—भला इस जीवन में उन्हें भूल सकती हूँ?

गोस्वामी—आपको वे भली भाँति जानते हैं, परन्तु स्त्रियों का हृदय सर्वदा स्थिर नहीं रहता। सम्भव है कि भूल जाय।

गोस्वामी की चपलता और ज़ोर से हँसना देखकर सरयू को कुछ विस्मय हुआ। उसने कहा—नारी का हृदय चपल होता है, मैं तो ऐसा नहीं जानती।

गोस्वामी—मैं भी तो नहीं जानता था परन्तु आज देख रहा हूँ।

सरयू—किसको देखा है?

गोस्वामी—जो हमारी वाग्दत्ता वधू है वही हमें आज भूल गई है। देखकर भी पहचान नहीं सकती।

सरयू—वह कौन भाग्यवती है?

गोस्वामी—"यह वह भाग्यवती है, जिसको तोरण-दुर्ग में जनार्दन के घर देखा था और भोजन लाते समय उसका साक्षात् हुआ था। उसी समय हमने उसे अपना तन, मन और धन सौंप दिया था। यह वही सौभाग्यवती है जिसे मुक्तामाला पहना कर अपने जीवन का मनोरथ सफल समझा था। यह वही सुस्वरूपा है जिसे राजा जयसिंह के शिविर में अपने नयनों का मणि बना रक्खा था। यह वही हृदयेश्वरी है जिसके शब्द हमारे कानों को संगीतवत् प्रतीत होते हैं और जिसके शरीर का स्पर्श हमें चन्दन से भी अधिक सुवासित लगता है। वही हमारी जीवन-मूल है!

"यह वही अर्द्धाङ्गिनी है कि जिसके ज्वलन्त शब्दों को सुनकर मुझे दिल्ली जाना पड़ा था और उसी के उत्साह से उत्साहित होकर यश के मार्ग को साफ़ किया है और अनन्त विपत्ति-सागर से पार हुआ हूँ। बहुत दिनों के पश्चात् आज उसी भाग्यवती के चरणों के समीप खड़ा हूँ। क्या वह आज मुझे पहचान सकी है?"

इन्हीं कोकिलविनिन्दित शब्दों ने सरयू के हृदय को मन्थन कर डाला। अब जाकर उसने गोसाईं को पहचाना। सरयू अपने हृदय के वेग को सँभाल न सकी। उसका सिर घूम रहा था, नेत्र बन्द थे। "हवलदार जी! क्षमा कीजिए"—इतना कहकर सरयू ने रघुनाथ की ओर हाथ बढ़ाया। लड़खड़ाती हुई सरयू को रघुनाथ ने अपने हाथों में सँभाल लिया और अपने उद्वेगी हृदय को उसके हृदय से लगा लिया।

कुछ देर के पश्चात् सरयू सचेत हुई। अपनी आँखों को खोलकर क्या देखती है कि हृदयनाथ रघुनाथ उसे धारण किये हुए हैं। चिर-प्रार्थित पति ने आज सरयूबाला का गाढ़ आलिङ्गन किया है।

अहा! बहुत दिनों के पश्चात् आज सरयू का तप्त हृदय रघुनाथ के शान्त हृदय से लग कर शीतल हुआ है। सरयू के घनश्वास रघुनाथ के निःश्वास से मिश्रित हुए हैं। सरयू के कम्पित अधरों को आज ही जीवन भर में रघुनाथ के अधरों ने छुआ है।

ओह! शरीर का स्पर्श करने से बालिका सहम गई! इस प्रगाढ़ आलिङ्गन से, इस बारंबार चुम्बन से बालिका काँपने लगी। यह घटना सत्य है अथवा स्वप्न?

वायुताड़ित पत्र की भाँति सरयू काँपती हुई मन ही मन कहने लगी—जगदीश्वर! यदि यह स्वप्न है तो इस सुख-निद्रा से कभी मत जगाइए।

बत्तीसवाँ परिच्छेद

जीवन-निर्वाण

शावास्यमिदम् सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।"

हाराष्ट्र देश में महासमारोह आरम्भ होगया। गाँव गाँव में यही चर्चा फैल गई कि शिवाजी स्वदेश लौट आये हैं। वह फिर औरंगज़ेब से लड़ाई करेंगे और म्लेच्छों को देश से निकाल देंगे। फिर हिन्दूराज्य संस्थापित होगा।

इधर राजा जयसिंह ने विजयपुर पर स्वयं चढ़ाई कर दी परन्तु उसे हस्तगत नहीं कर सके। बार बार उन्होंने बादशाह से सेना की सहायता माँग भेजी परन्तु औरंगज़ेब के निकट उनका सब आवेदन निष्फल गया। अतः महाराजा जयसिंह ने समझ लिया था कि मुझे ससैन्य विनष्ट कराने के अतिरिक्त औरंगज़ेब का कोई उद्देश नहीं है। परन्तु फिर भी उन्होंने विजय-पुर को छोड़ औरंगाबाद की ओर लश्कर डाल दिया।

मृत्युपर्य्यंत औरंगज़ेब के विश्वस्त अनुचर ने वीरोचित कार्य्य किया; औरंगज़ेब के अभद्र आचरण करने अथवा हिन्दुओं की देव-मूर्त्तियाँ नष्ट-भ्रष्ट करने पर भी महाराज जयसिंह ने उदासीनता प्रकाशित न की। जब उन्हें यह निश्चय होगया कि मुग़लों के पंजे से महाराष्ट्र देश निकलना चाहता है तब उन्होंने यथासाध्य बादशाह की रक्षा की। लोहगढ़, सिंहगढ़ और

पुरन्दर इत्यादि दुर्गों का विजय करना मुसलमानी सेना की शक्ति के बाहर था। इन्हें हस्तगत करना जयसिंह का ही काम था।

परन्तु इस जगत् में इस प्रकार के विश्वस्त कार्य्यों का पुरस्कार नहीं है। जब औरंगज़ेब ने सुना कि महाराजा जयसिंह अपने कार्य्य में फलीभूत नहीं हो सकते तब उसे बड़ा सन्तोष हुआ और उन्हें अपमानित करने के लिए दक्षिणदेशस्थ सेनापति के पद से हटा करके दिल्ली बुला भेजा, और उनके स्थान पर यशवन्तसिंह को भेज दिया।

वृद्ध सेनापति ने आजीवन यथासाध्य दिल्ली का कार्य्य-साधन किया परन्तु अन्तिम दिनों में अपमानित होने से उनका हृदय विदीर्ण होगया और मृत्युशय्या पर पड़ गये।

अपमानित, पीड़ित, वृद्ध महाराजा जयसिंह मृत्युशय्या पर पड़े हुए थे कि एक दूत ने आकर समाचार दिया—महाराज! एक महाराष्ट्रीय सैनिक आपका दर्शन किया चाहता है। उसने कहा है कि महाराज के चरणों में पड़कर एक दिन उपदेश ग्रहण किया था; आज फिर शिक्षा ग्रहण करने के लिए उपस्थित हूँ।

राजा ने कहा—सम्मानपूर्वक ले आओ। जो महाशय आये हैं उन्हें हम भली भाँति जानते हैं। उन्हें आने दो। उनके लिए कोई रोक-टोक नहीं है।

थोड़ी देर के बाद एक छद्मवेशी महाराष्ट्र योद्धा वहाँ आ गया। राजा उनकी ओर देखकर कहने लगे—सुहृद्वर शिवाजी! मृत्यु के पूर्व एक बार फिर तुम्हें देखकर मुझे बड़ा सन्तोष प्राप्त हुआ। उठकर तुम्हारा सत्कार करने की शक्ति नहीं है। क्षमा करना वत्स!

गद्गद वाणी में शिवाजी ने उत्तर दिया—पिताजी ! आपसे विदा लेकर मैं जब यहाँ से दिल्ली को प्रस्थानित हुआ था तब मुझे इस बात की शंका भी न हुई थी कि आपको इतना शीघ्र इस दशा में देखूँगा।

जयसिंह—राजन् ! मनुष्य-देह क्षणभङ्गुर है। इसमें विस्मय किस बात का है ? शिवाजी ! मुझे जब तुम्हारा अन्तिम दर्शन हुआ तब के और अब के मुग़लराज्य में कितना अन्तर दीख पड़ता है।

शिवाजी—महाराज, आप उस समय साम्राज्य के स्तम्भ थे। जब आपही की यह दशा है तब मुग़लराज्य की और आशा कहाँ ?

जयसिंह—वत्स ! यह बात नहीं है। राजपूतभूमि वीर-प्रसविनी है। जयसिंह की मृत्यु पर कोई दूसरा जयसिंह निकल आवेगा। अब भी जयसिंह के समान सैकड़ों योद्धा वर्तमान हैं। इसलिए मेरे जैसे एक सैनिक के मर जाने से मुग़लराज्य की कुछ हानि न होगी।

शिवाजी आपके अमङ्गल से अधिक मुग़ल-साम्राज्य का और क्या अनिष्ट होगा ?

जयसिंह—शिवाजी ! एक योद्धा के जाने से दूसरा योद्धा आ जाता है, परन्तु पाप से जो क्षति होती है उसकी पूर्णता कदापि नहीं की जा सकती। मैंने पहले ही कह दिया है कि जहाँ पाप और कपटाचार है वहीं अवनति और मृत्यु के डेरे पड़े हुए हैं। अब उस बात को प्रत्यक्ष देख लो।

शिवाजी—वह क्या बात है ?

जयसिंह—जब मैंने आपको दिल्ली भेजा था तभी आपका हृदय बादशाह की ओर से निश्चिन्त नहीं था, परन्तु आप दृढ़-प्रतिज्ञ थे। जब तक बादशाह आपका विश्वास करता, आप उससे विश्वासघात नहीं करते। आपके साथ बादशाह सदाचरण करके दक्षिण देश में अपना एक प्रबल मित्र बना लेता; परन्तु अपने कपटाचरण की बदौलत उसने उसी स्थान पर अपना एक दुर्द्दमनीय शत्रु बना लिया।

शिवाजी—महाराज! आप बहुदर्शी हैं, आपकी बुद्धि असाधारण है। सारा संसार यथार्थ में आपको विज्ञ कहता है।

जयसिंह—हम औरंगज़ेब के बाप के समय से दिल्ली का कार्य्य करते हैं। कष्ट सह कर, जहाँ तक सम्भव था, बादशाह का उपकार ही किया है। स्वजाति-विजाति की कुछ विवेचना नहीं की। जिस कार्य्य का संकल्प किया था, आजन्म उसी को निभाने का प्रयत्न किया है। परन्तु वृद्धावस्था में बादशाह ने मेरा अपमान ही कर डाला। तथापि ईश्वरेच्छा है कि हमने जिन जिन दुर्गों को जीता है वहाँ वहाँ प्रबन्ध के लिए अपने सैनिकों को छोड़ रक्खा है। अतः शिवाजी! बिना युद्ध किये उन्हें अपने अधिकार में करना असम्भव है। किन्तु इस आचरण से औरंगज़ेब को स्वयम् क्षति भोगनी पड़ेगी। अम्बर के राजा लोग दिल्ली के विश्वासी और सहायक होते आये हैं परन्तु अब आगे से वे भी शत्रु बन जायँगे।

शिवाजी—आपने ठीक कहा है। औरंगज़ेब ने अपने दुष्टाचरण से अम्बर और महाराष्ट्र दोनों देशों को अपना शत्रु बना लिया।

जयसिंह—हमने तो अम्बर और महाराष्ट्र इन्हीं दो देशों का उदाहरण दिया है परन्तु असल में सारे भारतवर्ष की यही दशा है। शिवाजी ! औरंगज़ेब भारतवर्ष के सभी विश्वस्त अनुचरों का अपमान करेगा। इससे उसके सारे मित्र शत्रु हो जायँगे। हिन्दुओं के लिए क्या यह कम चिढ़ाना है कि उसने काशीधाम में विश्वेश्वर के स्थान पर मसजिद बनवाई है; राजपूतों का अपमान किया है और सारे हिन्दुओं पर जज़िया लगाया है।

थोड़ी देर के बाद जयसिंह आँखें मूँद कर गम्भीर स्वर में फिर कहने लगे—मानों मृत्यु-शय्या पर महात्मा के दिव्य नेत्र खुल गये हैं और उन्हीं नेत्रों से भविष्यत् देख कर वह राजर्षि के समान बोले—शिवाजी ! हम देख रहे हैं कि इस कपटाचरण के कारण भारतवर्ष में चारों ओर युद्धानल प्रज्वलित होगा। यह दावानल, महाराष्ट्र देश में, राजस्थान में और बंगाल में प्रज्वलित किया जायगा, परन्तु औरंगज़ेब बीस वर्ष भी प्रयत्न करके इस अग्नि को बुझा न सकेगा। उसकी तीक्ष्ण बुद्धि, असामान्य कौशल, और उसका असाधारण साहस सब व्यर्थ जायँगे और बुढ़ापे में, दिल्ली में बैठ कर उसको पश्चात्ताप करना पड़ेगा। युद्धानल प्रबल वेग से जलेगा और चारों ओर धायँ धायँ शब्द सुनाई पड़ेगा। सारा मुग़ल-साम्राज्य उसी में भस्म हो जायगा। उसके पश्चात् महाराष्ट्र-जाति का नक्षत्र बली होगा। महाराष्ट्रगण आगे बढ़कर दिल्ली के सूने सिंहासन पर विराजमान होंगे।

राजा का गला रुक गया। उनसे और अधिक नहीं बोला गया। वैद्य लोग, जो पास ही बैठे हुए थे वे, भाँति भाँति का

संदेह करने लगे और कभी स्पष्ट रूप में तथा कभी गुप्त रीति से रोग की दशा का अनुभव करने लगे।

कुछ देर बाद जयसिंह ने मृदुस्वर में कहा—"कपटाचारी! अपने आप ही अपना नाश करेगा। सत्यमेव जयति।" इतना कहते ही जयसिंह का श्वास रुक गया और शरीर से प्राण निकल गये।

तेंतीसवाँ परिच्छेद

महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात

अनन्त अन्तरिक्ष में अनन्त देव हैं खड़े।
समक्ष ही स्वबाहु जो बढ़ा रहे बड़े बड़े ॥
परस्परावलम्ब से उठो तथा बढ़ो सभी।
अभी अमर्त्य-अंक में अपङ्क हो चढ़ो सभी।

—मैथिलीशरण गुप्त।

केवल पहर रात और शेष थी कि शिवाजी राजपूतों के शिविर से बाहर चले आये। प्रातः-काल होने के पूर्व ही प्रधान प्रधान सेनापतियों और अमात्यों को उन्होंने एकत्रित कर लिया। थोड़ी देर तक वे उनसे परामर्श करते रहे फिर शिविर से बाहर निकल कर अपनी सारी सेना को बुला लिया और उनसे कहने लगे—"बन्धुगण! कोई एक वर्ष हुआ कि हमने औरंगज़ेब से सन्धि की थी परन्तु उसने अपने कपटाचार से सन्धि को तोड़ डाला है। आज हम उन कपटाचरणों का प्रतिशोध किया चाहते हैं। मुसलमानों के साथ फिर लड़ाई होनी चाहिए।

"औरंगज़ेब के जो प्रधान सेनापति थे, और जिनसे लड़ने के लिए ईशानी देवी ने निषेध किया था—जिनसे कि बिना लड़े ही शिवाजी परास्त होगया था—उन्हीं महात्मा राजा जयसिंह ने कल रात को औरंगज़ेब के कपटाचरण से दुःखित

हो प्राण त्याग दिये। सैन्यगण ! दिल्ली हमारे लिए कारावास बनी थी और हिन्दूप्रवर जयसिंह की मृत्यु ने तो और भी जले पर नमक छिड़क दिया। इन सबका परिशोध करना हमारा कर्त्तव्य है।

"मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए महाराज जयसिंह के दिव्य चक्षु खुल गये थे। उन्होंने देखा था, औरंगज़ेब और मुग़लों के भाग्य-नक्षत्र अवनति की ओर झुक रहे हैं। दिल्ली का सिंहासन उनसे छिन जायगा। बन्धुगण ! अग्रसर हो, और पृथ्वीराज के सिंहासन को अधिकार में कर लो।

"पूर्व की ओर रक्तिमच्छटा देख पड़ने लगी है। यह प्रभात की लालिमा है। परन्तु यह हमारे लिए सामान्य प्रभात नहीं है। महाराष्ट्रगण ! आज हमारा जीवन-प्रभात है।"

सारी सेना और सैनिकगण इस महावाक्य को सुनकर गर्ज उठे—"आज हमारा जीवन-प्रभात है"। "आज महाराष्ट्र-जीवन-प्रभात है।"

चौंतीसवाँ परिच्छेद

विचार

सत्यमेव जयति नानृतम्

उसी दिन सन्ध्याकाल को अकेला रघुनाथ नदी के तट पर घूमता था। अपनी ख्याति, सरयू का पुनर्म्मिलन, मुसलमानों से फिर युद्ध, हिन्दुओं की भावी स्वाधीनता—ऐसे ही ऐसे नूतन विचारों से रघुनाथ का हृदय भर रहा था कि सहसा पीछे से किसी ने पुकारा—"रघुनाथ" !

रघुनाथ ने पीछे फिर कर देखा तो चन्द्रराव जुमलेदार खड़ा है। रोष के मारे रघुनाथ का शरीर काँपने लगा, परन्तु ईशानी के मन्दिर की प्रतिज्ञा को स्मरण करके वह ठिठक गया।

चन्द्रराव ने कहा—रघुनाथ, इस जगत् में हम तुम दोनों साथ नहीं रह सकते। अतः एक को अवश्य मरना चाहिए।

रघुनाथ ने क्रोध को रोक कर धीरे से कहा—चन्द्रराव ! कपटाचारी मित्रहन्ता चन्द्रराव ! तुम्हारे इन आचरणों का दण्ड तो शिरश्छेदन है, परन्तु रघुनाथ तुम्हें क्षमा करता है और तुम ईश्वर से क्षमा माँगो।

चन्द्रराव—बालक की दी हुई क्षमा हम ग्रहण नहीं करते। तुम अब और अधिक जीवित नहीं रह सकते इसलिए जी लगा कर मेरी बातें सुन लो। जन्म ही से तुम हमारे शत्रु हो, और

हम भी तुम्हारे परमशत्रु हैं। हम तुम्हारी दशा लड़कपन से जानते हैं। हज़ारों दफ़ा तुम्हारा सिर काट लेने का संकल्प किया है, परन्तु वह न करके तुमको देश से निकलवाया, तुम्हें विद्रोही कहकर अपमानित कराया। तुमसे और कहाँ तक कहा जाय! तुम हमारे मन्त्रों से कब तक बच सकते हो? तुम्हारे भाग्य मन्द हैं। तुम फिर उन्नति करके सैन्य में सम्मिलित हुए हो, परन्तु चन्द्रराव भी अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हुआ। यह कभी सम्भव नहीं कि तुम्हारे सिर का छेदन बिना किये चन्द्रराव शान्त हो जाय। जब तक तुम्हारे हृदय का रुधिर पान न कर लूँगा तब तक जीवन शान्तिलाभ नहीं कर सकता।

रोष के मारे रघुनाथ की आँखें जलने लगीं। उसने कम्पित स्वर में कहा—पामर! सामने से हट जा, नहीं तो मैं अपनी पवित्र प्रतिज्ञा को भूल जाऊँगा और तुझे तेरे पापाचरणों का उचित दण्ड दूँगा।

चन्द्रराव—भीरु! अब भी युद्ध से हटता है! सुन ले, उज्जैन की लड़ाई में इसी तीर से तेरे पिता का हृदय विदीर्ण हुआ था। वह कोई दूसरा शत्रु नहीं था। चन्द्रराव तेरा पितृहन्ता है!

रघुनाथ से और नहीं देखा गया। ज्योंहीं उसने सुना, तुरन्त ही तलवार निकाल कर चन्द्रराव पर आक्रमण करने लगा। चन्द्रराव भी तलवार चलाने में अनाड़ी नहीं था। बहुत देर तक दोनों में युद्ध होता रहा। दोनों की तलवारों के वार से दोनों की ढालें नष्ट होगईं। दोनों के शरीर से रक्त बहने लगा। चन्द्रराव कुछ कमबली नहीं है परन्तु रघुनाथ ने दिल्ली में रहकर तलवार चलाना और भी उत्तम रीति से सीख लिया था। बहुत देर तक लड़ाई होती रही। अन्त में रघुनाथ ने

चन्द्रराव को परास्त कर लिया और उसे भूमि पर दे पटका और दोनों घुटनों से उसके वक्षःस्थल को दबा लिया। अब रघुनाथ ने कहा—पामर ! आज तेरी पापराशि का प्रायश्चित्त होगा, और पिता की मृत्यु का परिशोध किया जायगा।

मृत्यु के समय भी चन्द्रराव निर्भीक था। उसने विकट हास्य करके कहा—तब तो तुम्हारी बहन विधवा होगी। इसलिए मैं सुखपूर्वक प्राणविसर्जन कर सकता हूँ।

बिजली की तरह सब बातें रघुनाथ की आँखों के सामने फिरने लगीं। लक्ष्मी ने इसी लिए अपने स्वामी का नाम बार बार छिपाने की कोशिश की थी और चन्द्रराव का अनिष्ट न करने की प्रार्थना की थी। पितृहन्ता, नरपिशाच चन्द्रराव ने लक्ष्मी से बलपूर्वक विवाह किया है ! मारे क्रोध के रघुनाथ की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं परन्तु फिर भी उसके हाथ की उठी हुई तलवार चन्द्रराव के हृदय में न धँस सकी। रघुनाथ धीरे से उसे छोड़ कर अलग खड़ा होगया।

दोनों योद्धा एक दूसरे को रोष-भरी दृष्टि से घूरने लगे। मानों दो हुताशन लड़ाई से अभी अलग किये गये हैं और फिर लड़ना चाहते हैं। चन्द्रराव असि-युद्ध में परास्त हो चुका था इसलिए वह धूल में सने हुए रक्त से असुर के समान दीख पड़ता था और मारे क्रोध के जला जा रहा था। इधर रघु-नाथ, पिता की हत्या की बात और भगिनी के अपमान को याद करके, परिशोध के दावानल में जला जा रहा था। इसी बीच वृक्षों की ओट से सहसा एक योद्धा बाहर निकल आया। दोनों ने देखा—ये तो शिवाजी हैं।

शिवाजी ने कुछ भी न कहा। उन्होंने अपने चार सैनिकों को, जो छिपे हुए थे, बुलाने का संकेत किया। तुरन्त ही चारों

सैनिक बाहर आकर चन्द्रराव के निकट खड़े हो गये और उसके हाथों से ढाल-तलवार छीन ली। फिर उसे बन्दी कर लिया। शिवाजी तो फिर छिप गये, परन्तु रघुनाथ भौंचक्का होगया।

दूसरे दिन प्रातःकाल ही चन्द्रराव का मुक़द्दमा है। उसने रघुनाथ के पिता का हनन किया था, इसका विचार नहीं है। रघुनाथ के ऊपर कल आक्रमण किया था, इस दोष का भी आज विचार नहीं है। रुद्रमण्डल पर आक्रमण करने के पहले शत्रु रहमतख़ाँ को चन्द्रराव ने ही गुप्त संवाद दिया था, उसका प्रमाण अब मिल गया है। उसी का आज विचार है।

पहले ही कह आये हैं कि अफ़ग़ान-सेनापति रहमतख़ाँ रुद्रमण्डल से बन्दी करके लाया गया था, परन्तु शिवाजी ने भद्राचरणपूर्वक उसे मुक्त कर दिया था। रहमतख़ाँ स्वाधीन होकर फिर अपने प्रभु, विजयपुर के सुलतान, के निकट चला गया था। जयसिंह ने जब विजयपुर पर चढ़ाई की थी तब रहमतख़ाँ ने बड़ी बाहादुरी से उनका सामना किया था, परन्तु एक लड़ाई में आहत होकर फिर महाराजा जयसिंह का बन्दी होगया। जयसिंह ने उसे अपनी सेना में रखकर उसका बड़ा आदर-सत्कार किया और उसकी दवा कराई परन्तु रोग से उसे छुटकारा नहीं मिल सका। वह अन्त में मर ही गया।

रहमतख़ाँ की मृत्यु के एक दिन पहले ही जयसिंह ने कहा था—ख़ाँसाहिब! अब आप और अधिक जीवित नहीं रह सकते। सारी दवा-दारू वृथा होती जाती है। यदि आप कोई हानि न समझें तो कृपया एक बात बता दीजिए।

रहमतख़ाँ ने कहा—मुझे अब जीने की लालसा नहीं है। आपने जिस प्रकार मेरा आदर-सत्कार किया है उसके लिए

मैं कृतज्ञ हूँ। कहिए, आप क्या जानना चाहते हैं? मैं आपसे कोई बात छिपा नहीं सकता।

जयसिंह—रुद्रमण्डल के आक्रमण के पूर्व ही आपको हमारे यहाँ के एक सैनिक ने हमले का संवाद दिया था। वह कौन था, हम नहीं जान सके। उसके बदले में एक दूसरा तो अवश्यमेव दण्डित हुआ था।

रहमतखाँ—हमने उससे प्रतिज्ञा की है कि "आजन्म उसका नाम किसी को नहीं बताया जायगा।" राजपूत! मैं आपके भद्राचरण से बहुत सम्मानित हुआ हूँ। परन्तु पठान अपनी प्रतिज्ञा को भङ्ग नहीं कर सकता।

जयसिंह—पठान योद्धा! मैं आपकी प्रतिज्ञा भङ्ग कराना नहीं चाहता परन्तु हाँ, यदि कोई निदर्शन हो तो उसे मुझे देने में आप आपत्ति न करें।

रहमतखाँ—तो प्रतिज्ञा कीजिए कि यह निदर्शन मेरी मृत्यु के पहले न पढ़ा जायगा।

जयसिंह ने वही प्रतिज्ञा की। तब रहमतखाँ ने उन्हें कागज़ों का एक बण्डल दे दिया। रहमतखाँ की मृत्यु के पश्चात् जयसिंह ने उन पत्रों को पढ़कर यह निश्चय किया कि विद्रोही चन्द्रराव है।

चन्द्रराव ने रहमतखाँ को अपने हाथ से लिखकर पत्र भेजा था। उसी विषय से सम्बन्ध रखनेवाले यह सब पत्र थे। जयसिंह ने उसे पढ़कर यह भी ज्ञात कर लिया कि चन्द्रराव ने पठानों से पारितोषिक भी लिया था। जयसिंह की मृत्यु के दिन उनके मन्त्री ने यही सब कागज़ शिवाजी को दे दिये थे।

विचार करने में अधिक समय नहीं लगा। शिवाजी के चिरविश्वस्त मन्त्री रघुनाथ न्यायशास्त्री ने एक एक करके सब

पत्रों को पढ़ सुनाया। जब पढ़ना समाप्त हुआ तब सारी सेना ने गर्ज्ज कर रोष से कहा—चन्द्रराव ही विद्रोही है। उसी ने शत्रु को संवाद दिया है और उनसे पारितोषिक लिया है। शोक है कि इस दोष में निर्दोषी रघुनाथ फँस गया था।

उसी समय शिवाजी ने कहा—पापाचारी विद्रोही! तेरी मृत्यु निकट है। क्या तू कुछ कहना चाहता है?

मृत्यु के समय भी चन्द्रराव निर्भीक था। उसका दुर्दमनीय दर्प, साहस तथा अभिमान पूर्ववत् वर्त्तमान था। उसने कहा—मुझे और क्या कहना है? आपकी विचारक्षमता प्रसिद्ध है। एक दिन इसी दोष में रघुनाथ को दण्ड मिला था, आज मुझे दण्ड मिल रहा है। मेरे मरने पर फिर एक दिन दूसरे को दण्ड दीजिएगा, तब आप जानेंगे कि यह सबका सब जाल था। इसमें कुछ भी सत्य नहीं है।

इन शब्दों से शिवाजी का क्रोध और भी बढ़ आया। उन्होंने कहा—जल्लाद, चन्द्रराव के दोनों हाथों को काट डाल कि जिससे वह और घूँस न ले सके। फिर जलते लोहे से इसके सिर पर "विश्वासघातक" शब्द लिख दे जिससे फिर कोई इसका विश्वास न कर सके।

जल्लाद इस नृशंस आदेश का पालन करने चला। उसी समय रघुनाथ वहाँ आकर खड़ा होगया और कहने लगा—महाराज! मेरा एक निवेदन है।

शिवाजी—रघुनाथ! इस विषय में तुम्हारा निवेदन अवश्य सुना जायगा। क्या इसी पामर ने तुम्हारे पिता के प्राण लिये हैं? क्या उसकी प्रतिहिंसा लेना चाहते हो? निवेदन करो।

रघुनाथ—महाराज की आज्ञा अलंघ्य है; परन्तु मैं प्रति-हिंसा नहीं किया चाहता। हाँ, इस समय चन्द्रराव को कोई क्षति न पहुँचाई जाय—यही मेरी आकांक्षा है।

सारी सभा निस्तब्ध होगई।

शिवाजी क्रोध को सँभाल न सके। उन्होंने कड़क कर कहा—तुम्हारे ऊपर इसने अत्याचार किया है। इसी को तुम क्षमा कराना चाहते हो! राजविद्रोहाचरण की सज़ा मृत्यु है। हम इसे वही दण्ड दिलावेंगे। जल्लाद! तुम अपना कार्य्य करो।

रघुनाथ—महाराज का विचार अनिन्दनीय है, परन्तु यह दास प्रभु के निकट भिक्षा चाहता है। आप मुझे क्षमा करें। शिवाजी के आदेश पर आज तक किसी ने फिर कुछ नहीं कहा है, परन्तु मैं यही चाहता हूँ कि इसे बिना दण्ड दिये ही छोड़ दिया जाय।

शिवाजी—मैं ऐसी भिक्षा देने में असमर्थ हूँ। रघुनाथ, इस बार तो मैंने तुम्हें क्षमा किया, परन्तु मैं फिर ऐसा करने में असमर्थ हो जाऊँगा।

रघुनाथ—आपके दो एक कार्य्य करने में मुझे सफलता प्राप्त हुई थी और आपने उसके कारण इस दास को इच्छित पुरस्कार देने को कहा था। आज वही पुरस्कार चाहता हूँ कि चन्द्रराव को बिना दण्ड दिये ही छोड़ दिया जाय।

रोष में भरे हुए शिवाजी की आँखों से चिनगारियाँ निक-लने लगीं। उन्होंने गर्ज कर कहा—रघुनाथ! कभी कभी तुमने मुझ पर उपकार किये हैं अवश्य, परन्तु क्या आज उसी के द्वारा शिवाजी का न्याय अन्यथा किया चाहते हो? अब अन्यथा नहीं हो सकती। तुम अपनी वीरता अपने पास रक्खो।

इन तिरस्कृत वाक्यों को सुनकर रघुनाथ का मुख लाल होगया। उसने धीरे में, परन्तु कम्पित स्वर से, कहा—प्रभु! पुरस्कार माँगने का दास को अभ्यास नहीं है। आज जीवन भर में मैंने एक ही पुरस्कार माँगा है। प्रभु यदि इस पुरस्कार के देने में असमर्थ हैं तो दास फिर कभी न माँगेगा। दास की केवल यही भिक्षा है। अब मुझे सदा के लिए बिदा कीजिए। रघुनाथ सैनिक व्रत त्याग करके फिर गोस्वामी बनकर देश देश भिक्षा माँगता फिरेगा।

शिवाजी थोड़ी देर के लिए निस्तब्ध हो गये थे कि एक अमात्य ने शिवाजी के पास आकर उनके कान में कहा—चन्द्रराव रघुनाथ का बहनोई है। इसीलिए रघुनाथ उसके प्राणों की भिक्षा चाहता है।

शिवाजी ने अब विस्मित होकर चन्द्रराव को छोड़ देने का आदेश किया परन्तु वज्रनाद करके कहा—जाव चन्द्रराव, शिवाजी के राज्य से निकल जाव। दूसरे देश में जाकर मित्र का सर्वनाश करो, शत्रुओं से पारितोषिक लो, षड्यन्त्र और विद्रोहाचरण द्वारा उसका नाश करो और अपने पापजीवन के भाग्य को रोओ।

चन्द्रराव भीरु न था। वह धीरे धीरे क्रोध से जल रहा था। रघुनाथ के निकट आकर वह कहने लगा—"बालक! मैं तेरी दया नहीं चाहता और न तेरे दिये हुए जीवन को धारण करना चाहता हूँ!" इतना कहते ही उसने अपनी छुरी से अपना हृदय फाड़ डाला। अभिमानी, भीषणप्रतिज्ञ चन्द्रराव ने अपने चिरनिष्कृति-साधन को सिद्ध किया। उसका जीवन-शून्य शरीर धड़ाम से सभा में गिर पड़ा।

पैंतीसवाँ परिच्छेद

भाई-बहन

ए रे मलिन्द मन तू किस रंग में रँगा है ?
संसार घोर वन में, दुख-दैन्य के भवन में,
मकरन्द-मोद ढूँढ़े, हा मोह ने ठगा है।
सुख-शान्ति को स्वजन में, ज्यों फूल को गगन में,—
पाने को हर समय तू, उद्योग में लगा है॥

हमारा यह उपन्यास पूर्ण हुआ। इसलिए हम उपन्यास के समस्त नायकों और नायिकाओं का कुछ विशेष वृत्तान्त बताना आवश्यक समझते हैं।

वृद्ध जनार्दन की पालित कन्या जब से खो गई थी तब से वे पागल से हो गये थे, परन्तु कन्या के फिर मिल जाने से आनन्दाश्रु वर्षण करते हुए उसको उन्होंने पुलकित हृदय से लगा लिया और रघुनाथ को बुलाकर अच्छी घड़ी, उत्तम मुहूर्त में कन्यादान कर दिया। अब सरयू को जो सुख मिला उसका कौन वर्णन कर सकता है। आज चार वर्षों से सरयू जिस देवमूर्त्ति की उपासना करती थी, उसी ने आज उसको हृदय से लगाया है और सरयू के होठों को अपने होठों से दबा लिया है। अहा! क्या कहना है! वह तो उन्मादिनी सी हो गई है। और रघुनाथ? रघुनाथ ने तो तोरण-दुर्ग में जिस स्वप्न को देखा था आज वही सार्थक होगया है। आज उसी

कण्ठमाला को वह बार बार हिला रहा है। वही पुष्पविनिन्दित देह आज हृदय से लगी हुई है और उन्हीं स्नेहपूर्ण नयनों की ओर देख देख कर जगत् को रघुनाथ ने भुला दिया है।

सरयू ने अपनी सात वर्ष की "दीदी" को भुला नहीं दिया। रघुनाथ के अनुरोध से शिवाजी ने गोकरण को एक जागीर दे दी और उसके पुत्र भीमजी की पदवी बढ़ा कर उसे हवलदार बना दिया है।

सरयू अपनी "दीदी" को सदा अपने घर में रखती और अपने पति के साथ उसका भी आदर करती। इसी प्रकार कई वर्ष व्यतीत होगये। एक दिन स्वदेशीय पात्र को देखकर सरयू ने अपनी "दीदी" का उसके साथ विवाह कर दिया। विवाह के दिन सरयू और रघुनाथ दोनों उपस्थित थे। सरयू ने दुलहिन के कान में कहा—देख दीदी! यही मैंने कहा था। याद रखना,—दूलह से अधिक मेरी चाहना रखना।

रघुनाथ उस समय से १३ वर्ष तक सुख्याति और सम्मान के साथ शिवाजी के अधीन रहकर कार्य्य करता रहा। यशवन्त-सिंह ने जब यह सुना कि रघुनाथ उन्हीं के प्रिय अनुगृहीत गजपतिसिंह का पुत्र है तब उन्होंने रघुनाथ की सब पैतृक भूमि छोड़ दी, और अपनी ओर से भी कुछ और देकर उसे वहाँ भेजना चाहा, परन्तु शिवाजी ने उसे जाने नहीं दिया और जब तक वे जीवित रहे, रघुनाथ को अपने पास से अलग नहीं किया। परन्तु जब सन् १६८० ई० के चैत्र मास में शिवाजी का शरीरान्त हुआ और उनके अयोग्य पुत्र शम्भूजी का दौर-दौरा हुआ तब रघुनाथ वहाँ रहना उचित न समझकर सरयू और जनार्दन को ले, फिर अपने प्रपितामह तिलकसिंह के सूर्य्यमण्डल दुर्ग में प्रविष्ट हुआ।

पाठकगण ! इच्छा तो यह थी कि इसी स्थान पर आपसे विदा लेकर चुप हो जायँ, परन्तु अभी एक व्यक्ति की कथा बाक़ी है, चिरसहिष्णु लक्ष्मीरूपिणी लक्ष्मी का हाल और सुनाना है।

जिस दिन चन्द्रराव ने आत्महत्या कर ली थी उसी दिन रघुनाथ लक्ष्मी से मिलने चले गये। वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि लक्ष्मी, चन्द्रराव के मृतक शरीर के समीप, केश खोले विलाप-परिताप कर रही है। रघुनाथ का हृदय काँपने लगा। आर्य्य-कुल की ललनाओं को जिस भीषण दुःख और यातना का सामना करना पड़ता है उसे कौन वर्णन कर सकता है? आज लक्ष्मी के निकट सारा संसार प्रकाश-शून्य है। उसका हृदय शून्य होगया है। [हे ईश्वर! शोक, नैराश्य तथा वैधव्य की यातना से तुम्हीं इस बूड़ते भारत को पार लगाओ तो कुशल है, नहीं तो जिस देश में लाखों करोड़ों बालविधवायें हों वहाँ का क्या ठिकाना है!]

रघुनाथ ने उसको कुछ धैर्य्य देना चाहा, परन्तु धैर्य्य तो दूर रहा, लक्ष्मी ने अपने भ्राता को पहचाना तक नहीं। लाचार रघुनाथ रोता हुआ उसके घर से निकल आया।

सन्ध्या के समय रघुनाथ फिर लक्ष्मी को देखने आया। बहन की दशा परिवर्तित देखकर रघुनाथ को कुछ विस्मय हुआ। उसने देखा कि लक्ष्मी की आँखों में आँसू की एक बूँद नहीं है। वह धीरे धीरे अपने मृतक स्वामी के शरीर को सुगन्ध से सजा रही है। ऐसा प्रतीत होता था कि मानों बालिका पुतली को पुष्पों से सजा रही है। रघुनाथ घर में आ गया। लक्ष्मी भी धीरे धीरे रघुनाथ के पास आगई और

धीरे से कहने लगी—भाई रघुनाथ! तुमसे यह एक बार और अन्तिम साक्षात् है। मैं परम भाग्यवती हुई। मुझे अब कोई कष्ट नहीं है।

रोती हुई आँखों से रघुनाथ ने कहा—प्राणों से अधिक दुलारी बहन लक्ष्मी! यदि मैं इस समय भी तुम्हें न दीख सकता तो कब दीखता?

लक्ष्मी ने अपने अञ्चल से रघुनाथ के आँसू पोंछ कर कहा—भाई, सत्य है। तुमने तो बहुत दया की। राजा के निकट प्राणप्यारे के बचाने का तुमने बहुत प्रयत्न किया। हमने यह सब कुछ सुना है, परन्तु हमारे भाग्य में तो यही लिखा था। ईश्वर तुम्हें सुखी रक्खें।

रघुनाथ—लक्ष्मी! तुम बुद्धिमती हो। तुमने अपने असह्य शोक को किसी प्रकार से रोक लिया। मुझे इससे बड़ा संतोष हुआ। मनुष्य-जीवन ही शोकमय है। जो लिखा था वह हुआ। अब धैर्य धारण करो। चलो, मेरे घर चलो। यदि भाई के यत्न से, उसके स्नेह से, कुछ भी तुम्हारे शोक में न्यूनता हुई तो मुझे परम आनन्द होगा।

इस बात को सुनकर लक्ष्मी हँस पड़ी। इस हँसी को देख कर रघुनाथ के प्राण सूख गये। लक्ष्मी ने कहा—भाई! तुम दया की खान हो, परन्तु ईश्वर ने स्वयम् लक्ष्मी को सान्त्वना दे दी है और शान्तिपथ दिखा दिया है। दासी को जीते समय जो भले मालूम होते रहे वही प्राणप्यारे मरने पर भी परम-सुखराशि प्रतीत हो रहे हैं।

रघुनाथ के मस्तक पर मानों वज्र टूट पड़ा। उसने अभी तक लक्ष्मी के स्पष्ट भाव को नहीं समझा। वह अभी तक लक्ष्मी

की प्रतिज्ञा के भंग करने का यत्न करता ही रहा। भाँति भाँति के उदाहरण दिये, लाखों तरह से समझाया; यहाँ तक कि एक पहर लक्ष्मी से तर्क करते ही व्यतीत होगया। परन्तु धीर गम्भीर दृढ़-प्रतिज्ञ लक्ष्मी का यही उत्तर था—हृदयेश्वर हमें बड़े प्यारे हैं। हम उन्हें छोड़ नहीं सकतीं।

फिर रघुनाथ ने सजल-नयन हो कहा—लक्ष्मी! एक दिन मेरा भी जीवन नैराश्य-पूर्ण था। मैंने भी जीवन त्याग करने का संकल्प किया था। परन्तु बहन! केवल तुम्हारे ही उपदेशों, प्रबोधनों और तुम्हारे ही स्नेहमय शब्दों से मैंने उस संकल्प को त्याग दिया था और कार्य्यसाधन में तत्पर हुआ था। अब क्या तुम मेरी बात न मानोगी? क्या तुम्हें भाई का स्नेह नहीं है?

लक्ष्मी ने पूर्ववत् शान्तभाव से उत्तर दिया—भाई! मैं उस बात को भूली नहीं हूँ। तुम लक्ष्मी को प्यारे हो। परन्तु विचार कर देखो तो, जिससे मुझे अनेक आशायें थीं, जो मेरा जीवनाधार था, उसी भाँति की आशायें क्या तुम्हारी भी थीं? तुम पुरुष हो, अनेक आशायें तुम्हारी मन में उठेंगी और उनमें कुछ लुप्त हो जायँगी और कुछ सिद्ध होकर रहेंगी। भइया! उस दिन तुमने बहन की बात मानी थी। आज तुम्हारा कलंक दूर होगया; परन्तु क्या इसी भाँति तुम्हारी बात मानने से मैं संसार में अकलङ्कित रह सकती हूँ? क्या मेरे वह प्राणपति फिर संसार में दर्शन दे सकते हैं? भइया! तुम लक्ष्मी का लड़कपन से स्नेह करते हो। इसलिए तुम मेरे मार्ग में काँटे न बोओ। मुझे प्राणेश्वर के संग जाने दो।

रघुनाथ निरुत्तर होगया। स्नेहमयी भगिनी के अञ्चल में मुख छिपा कर वह लड़कों की भाँति रोने लगा। इस असार

कपटरूपी संसार में भाई-बहन के अखण्डनीय प्रेम के समान और कौन पवित्र निष्कलङ्क प्रेम है? स्नेहमयी भगिनी की भाँति अमूल्य रत्न इस विस्तीर्ण जगत् के अतिरिक्त और कहाँ मिल सकता है?

आधी रात के समय चिता तैयार हुई। चन्द्रराव का शव उस पर रक्खा गया। हास्यवदना लक्ष्मी ने सुन्दर वस्त्र, अलङ्कार और रत्न, मुक्ता इत्यादि दे देकर लोगों से विदा ली।

लक्ष्मी चिता के पास पहुँची। उसने दासियों के आँसुओं को अपने अञ्चल से पोंछा और उन्हें समझाया-बुझाया, धैर्य्य धारण कराया। जाति-कुटुम्बियों से बिदा ली, गुरु आदि की चरण-रज माथे में लगाई। सभी की आँखों में जल भर आया परन्तु लक्ष्मी ने मीठी बातों से सबको प्रबोधित किया।

अन्त में लक्ष्मी रघुनाथ के पास आई और कहने लगी— भाई! लड़कपन ही से तुम मुझ पर बड़ा प्यार करते हो। आज लक्ष्मी भाग्यवती होगी, चिरसुखिनी होगी। एक बार प्यार से बहन को बिदा दो, लक्ष्मी को बिदा करो।

अब रघुनाथ से नहीं सहा गया। वह लक्ष्मी का हाथ पकड़ कर बालकों की भाँति ज़ोर ज़ोर से रोने लगा। लक्ष्मी की आँखों में भी जल आगया।

सस्नेह भाई की आँखों का जल पोंछ कर लक्ष्मी ने कहा— छी, भाई! पिता की भाँति तुममें साहस है, फिर भी तुम्हारी आँखों में जल आगया! क्या शुभ कार्य्य में रोना चाहिए? जगदीश्वर तुम्हें और यशस्वी करे और भी संसार में तुम्हारी कीर्ति फैले। लक्ष्मी की बस यही आकांक्षा है। रघुनाथ, तुम

से रहो। भाई विदा दो। दासी के लिए स्वामी को
ता करनी पड़ती होगी।

'तुम्हारे बिना जगत् तुच्छ प्रतीत होता है। अब संसार
घुनाथ की क्या आवश्यकता है? प्राणमयी लक्ष्मी! तुम्हें
विदा दूँ। तुम्हें तजकर कैसे जीवन व्यतीत करूँगा?"—
तरह चिल्लाकर रघुनाथ भूमि पर गिर पड़े।

हुत यत्न करके लक्ष्मी ने रघुनाथ को उठाया। फिर
के आँसू पोंछे, बहुत समझा बुझा कर कहा—तुम वीर
हो, पुरुष का जो धर्म्म है उसका तुम पालन करो और
ी को नारीधर्म्म का पालन करने दो। देरी मत करो।
मत। यह देखो, पूर्व की ओर लालिमा दीख पड़ती है।
तो लक्ष्मी को जाने दो।

द्गद स्वर में रघुनाथ ने कहा—लक्ष्मी! प्राणमयी लक्ष्मी!
गत् से मैंने तुझे विदा दी, परन्तु इसी आकाश और
ुण्यधाम में फिर हमारा साक्षात् होगा। शोक! यह संसार
ए मृतवत् है।

ाई के चरणों की रज लेकर लक्ष्मी चिता के समीप चली
ार स्वामी के पैरों को मस्तक पर स्थापित करके कहा—
वर! जीवन में तुम बड़े प्यारे थे। अब भी अनुग्रह करो।
पैरों द्वारा फिर मैं तुम्हारे साथ आ रही हूँ। जन्म
तुम्हीं मेरे स्वामी बनो और लक्ष्मी तुम्हारी चरण-सेवा में

ीरे धीरे लक्ष्मी चिता पर आरोहण करके स्वामी के पैरों
समीप बैठ गई, दोनों पैरों को उसने भक्तिभाव से हृदय में
ा लिया। लक्ष्मी ने आँखें मूँद लीं। ऐसा प्रतीत हुआ मानों
के प्राण उसी समय स्वर्ग को प्रस्थान कर गये।

अग्नि जलने लगा। बड़े ज़ोर से आकाश में धायँ धायँ शब्द होने लगा। पहले अग्नि की जिह्वा लक्ष्मी के पवित्र शरीर को चाटने लगी। फिर शीघ्र ही तेज़ी के साथ उसके मस्तक के ऊपर से होकर लपट निकलने लगी। फिर आकाश में शब्द होने लगा। सती होते समय लक्ष्मी का एक केश भी कम्पायमान न हुआ।

शांतिः शांतिः शांतिः।

शांतिः शांतिः शांतिः